

संयुक्तांक

ISSN 2231-1351

PADCHINHA

पीअर रिव्यूड एंड रेफरीड जर्नल

पद्मचिन्ह

वर्ष -12 अंक-2 जुलाई -सितंबर, 2023

Multidisciplinary Peer Reviewed
& Refereed Journal

R.N.I. UPHIN/2011/37086

ISSN 2231-1351

संयुक्तांक

पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

पदचिन्ह

जुलाई-सितंबर, 2023 वर्ष - 12 अंक - 2

संपादक

डॉ. अजय परमार

B-30/239 नगवां, लंका, वाराणसी-221005

padchinhahindi@gmail.com

सह-संपादक

डॉ. पंकज कुमार सिंह

मुदित शिक्षा संस्था, त्रिमुर्ति नगर, उमरी

वर्धा (महाराष्ट्र) पिन 442001

मो. 9823696685 gandhikhadi@gmail.com

© पदचिन्ह में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

PADCHINHA

ISSN 2231-1351

PADCHINHA

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह

निदेशक

अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन-221005

डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
उत्तर प्रदेश, पिन-211002

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी

संस्कृति विद्यापीठ

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. परिमल प्रियदर्शी

अनुसंधान अधिकारी, शोध सहायता प्रकोष्ठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. मनोज कुमार राय

अध्यक्ष, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय

सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा

सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
बिहार पिन-845401

डॉ. आशीष कुमार

संपादक, सृजन समय
बहुदेशीय सामाजिक संस्था, वर्धा - 442001

डॉ. उमेश कुमार सिंह

म. गां. फ्यूजी गुरुजी सामाजिक विज्ञान अध्ययन केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. श्रीकांत जायसवाल

प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. रणजीत कुमार

सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहूरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) - 800001

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजधानी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली 110015

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन-737102

डॉ. निशीथ राय

सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या
आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रिता संपादक : अजय परमार

पदचिन्ह जुलाई-सितंबर, 2023 वर्ष-12 अंक- 2 2

पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

पदचिन्ह

जुलाई - सितंबर, 2023 वर्ष - 12 अंक - 2

अनुक्रम

Editorial		पृष्ठ संख्या
1.	डिंगल साहित्य की रूपरेखा	डॉ. मंजु लाल 05-09
2.	राजेन्द्र यादव की औपन्यासिक चेतना	डॉ. यदुवंश यादव 10-12
3.	मुक्तिबोध की कविताओं का विचार पक्ष	डॉ. बिनय कुमार सिन्हा 13-15
4.	स्वतंत्रता संग्राम में देशभक्ति गीतों का योगदान	डॉ. नितप्रिया प्रलय 16-19
5.	सहमति निर्माण एवं सामाजिक विघटन	डॉ. छविनाथ यादव & आशुतोष कुमार विश्वकर्मा 20-29
6.	पीएमजेडीवाई से मुंगेली विकासखंड के लोगों की आर्थिक स्थिति में बदलाव	30-43
	श्रीमती मीरा गुप्ता & डॉ. शुचि शर्मा	
7.	ढोलकी	डॉ. अनवर अहमद सिद्दीकी 44-49
8.	Interpreting Economic Philosophy of Pandit Deen Dayal Uppadhyay	50-60
	Mr. R. P. Dixit, Dr. P. Sharma & Dr. V. Srivastava	
9.	भारतीय किशोरों में हिंसात्मक व्यवहार और किशोर अपराध : एक समीक्षा	विकास वाजपेयी 61-71
10.	प्रेम और पौरुष जिनकी काव्यह-प्रज्ञा में प्रवाहमान है	डॉ. डी. एन. प्रसाद 72-78
11.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गजल में सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता	आशीष कुमार 79-86
12.	श्री नरेश मेहता : समकालीन कवि और मानवीय मूल्य	बाल मुकुन्द त्रिपाठी 87-90
13.	गांधी दृष्टि में आत्मनिर्भर ग्राम	गुलशन कुमार 91-97
14.	मेलघाट क्षेत्र की कोरकू जनजाति में लोक चिकित्सीय देशज्ञ ज्ञान	98-108
	महेंद्र कुमार जायसवाल & प्रो. फरहद मलिक	
15.	भारत छोड़ो आजादी के लिए एक ऐतिहासिक जन आंदोलन	प्रविण दामोदरराव कोल्हे 109-114
16.	Social implication of vedantic mahāvākyas	Dr. Pranay Deb 115-120
17.	Portrayal of women in NH 10 (2015)	Dr. Ashish Kumar 121-127
18.	Swami Vivekananda: Embodiment of Courage and..	Dr. Achhiya Begam 128-132
19.	नाटक आषाढ़ का एक दिन में स्त्री पात्र अंबिका और...	रोहित कुमार & डॉ. विवेक कुमार 133-140
20.	किस्से जो बहुत कुछ याद दिलाते हैं किस्सा किस्सा लखनउवा	दिप्ती कुमारी शर्मा 141-143
21.	भोजपुरी संस्कार गीतों में संप्रेषणीयता	पूजा पाठक 144-151
22.	असहयोग आंदोलन में बुंदेलखंड की भूमिका	विकाश 152-157
23.	सरायकेला छऊ की परंपरा एवं लोक संस्कृति	जितेंद्र कुमार 158-165
24.	विकलांग केंद्रित हिंदी उपन्यासों में विकलांगों की आर्थिक दशा	डॉ. शिप्रा शुक्ला 166-170
25.	उपन्यास मैला आँचल का नाट्य-मंचन स्वरूप	कंचन 171-175
26.	Who is not in my experience yet!!	Niraj Kumar 176
27.	तकनीकी हिंदी की विकास यात्रा	प्रो. सुधाकर शेंडगे 177-180

Editorial

Chandrayaan-3: India's Next Leap in Lunar Exploration

India's indelible mark on space exploration is poised to deepen with the imminent Chandrayaan-3 mission. Following the commendable strides of its predecessors, this mission encapsulates India's resolute pursuit of scientific excellence and technological innovation.

Chandrayaan-3's singular focus on soft-landing a rover on the lunar surface underscores India's ambition to refine its capabilities in precision landing. With this endeavor, the Indian Space Research Organisation (ISRO) not only aims to advance its lunar exploration techniques but also aims to contribute significantly to our understanding of the Moon's mysteries.

The mission arrives on the heels of Chandrayaan-2, which showcased India's ability to send an orbiter to the Moon and deploy a lander and rover, although the latter's landing was unfortunately not as planned. Chandrayaan-3 symbolizes a renewed determination to conquer the challenges of lunar exploration and to retrieve valuable scientific data.

The successful execution of Chandrayaan-3 would undoubtedly elevate India's stature in the global space community. Moreover, it has the potential to uncover vital insights into the Moon's geological and mineralogical composition, shedding light on the history and evolution of both our celestial neighbor and our own planet.

As we await Chandrayaan-3's launch, the anticipation is palpable. The mission exemplifies India's commitment to pushing boundaries, expanding knowledge, and nurturing its burgeoning space sector. With each mission, India propels itself further into the vanguard of spacefaring nations, serving as an inspiration for scientific enthusiasts and innovators worldwide.

डिंगल साहित्य की रूपरेखा

डॉ. मंजु लाल*

manjulal18@gmail.com

सारांश :-

डिंगल साहित्य राजस्थान के वीर साहित्य तथा शृंगारिक साहित्य को कहा जाता है। राजनैतिक परिस्थितियों में अंकुरित, पोषित और संवर्धित डिंगल कविता मुख्यतः वीर रस से पोषित है। यदि यह कहा जाय कि डिंगल भाषा का वीर साहित्य विश्वसाहित्य के लिए एक अपूर्व उपहार है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। विद्वानों ने राजस्थान के वीर साहित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

मूल शब्द :-

डिंगल भाषा, राजस्थानी साहित्य, वीर रस, पिंगल, हिन्दू राजा, राजपूताना, डिम-गल, डगल, हिन्दू धर्म, रौद्ररस, महादेव, अनगढ़, कविता, युद्ध-वर्णन, सौन्दर्य-वर्णन, रसात्मकता

डिंगल का नामकरण :-

डिंगल साहित्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय सर्वप्रथम डॉ० हरप्रसाद शास्त्री को है। उन्होंने ही राजस्थान के इस वीर रस की भाषा को डिंगल नाम दिया। शास्त्री जी के अनुसार 'प्रारंभ में इसका नाम 'डगल' अर्थात् मिट्टी का ठेला था परंतु बाद में पिंगल के नाम समानता पर इसका नाम डिंगल कर दिया गया।'¹

डिंगल साहित्य का जीर्णोद्धार करने का सक्रिय उद्योग इटली के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ० एल० पी० टेसीटरी का रहा है। उनके मतानुसार डिंगल केवल एक विशेषता सूचक शब्द है। जिसका अर्थ अपरिष्कृत है। चारणों तथा राजपूताना के पंडितों द्वारा प्रस्तावित 'डगल' अथवा अन्य किसी काल्पनिक व्युत्पत्ति से इसका कोई संबंध नहीं।²

तृतीय मत बीकानेर निवासी गजराज ओझा का है। ओझा जी का कथन है कि डिंगल 'ड' वर्ण प्रधान भाषा है। ड वर्ण के प्रधान्य को लेकर पिंगल के साम्य पर भाषा का नाम डिंगल रखा गया है।³

* विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, डोरण्डा, राँची

चतुर्थ मत बीकानेर को पुरुषोत्तम दास स्वामी का है। उन्होंने अपने निबंध 'राजस्थानी साहित्य और उसकी प्रगति' में डिम-गल नाम पर विचार करते हुए लिखा है कि डिंगल=डिम + गल से बना है। डिम का अर्थ डमरू की ध्वनि और गल, गले से तात्पर्य की रखती है। डमरू की ध्वनि रणचण्डी का आह्वान करती है तथा वीरों को उत्साह से भर देती है। डमरू वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से निकल कर जो कविता डिम-डिम की तरह वीरों के हृदय को उत्साह से भर दे उसी को डिंगल कहते हैं।

काल विभाजन :-

डिंगल साहित्य के विद्वानों ने डिंगल साहित्य का विभाजन अपने-अपने दृष्टिकोण से पृथक-पृथक किया है।

डॉ० एल० पी० टेसीटरी के अनुसार डिंगल की दो अवस्थाएँ हैं -

- (1) प्राचीन डिंगल सन् 1300 ई० से 1600 ई० तक
- (2) अर्वाचीन डिंगल सन् 1601 से आधुनिक समय तक।

गजराज ओझा ने डिंगल साहित्य को निम्नलिखित कालों में विभक्त किया है-

- (1) आरंभ काल - संवत् 1000 वि० से 1400 वि० तक
- (2) मध्यकाल संवत् 1401 वि० से 1800 वि० तक
- (3) उत्तरकाल संवत् 1801 वि० से आज तक

संक्षिप्त इतिहास :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जनता की परिवर्तनशील चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। अतएव डिंगल साहित्य का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते समय इस विशिष्ट दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखा जायेगा। जनता की मनोवृत्ति के प्रस्फुटन का आधार किसी देश की संस्कृति होती है और डिंगल साहित्य के अभ्युदय एवं विकास में भी तत्कालीन राजस्थान को सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा गौण रूप में दार्शनिक परिस्थितियों का अपना-अपना सहयोग था। समसामयिक विशेष वातावरण के अनुकूल ही वहाँ की रचनाओं का सृजन हुआ। जिन्हें हम सुविधा के लिए नीचे उल्लेख किये गये ढंग से विभाजित कर सकते हैं :-

1. प्रशंसात्मक काव्य
2. वीर काव्य
3. भक्ति काव्य
4. शृंगार काव्य
5. इतर काव्य

प्रशंसात्मक काव्य :-

डिंगल साहित्य का सृजन करने वाले चारण और भाट रहे हैं जिनका प्रमुख कार्य अपने आश्रय दाताओं की प्रशंसा करना रहा है। विशेष उत्सवों में पर्वो अथवा युद्ध के अवसरों में ये कवि राजा-महाराजाओं की विरुदावली का गान किया करते थे जिन्हें सुनकर राजा खुश होकर लेखक को भूमि तथा अश्व गज आदि पुरस्कार स्वरूप देते थे।

उदा० :- विभिषण कू वारिधि भेंटे वो एक रामा

अब मिलग्या अजमेर में, दुरसा कू बेरामा।⁷

इसके विपरीत निंदात्मक कविता के उदाहरण भी हैं जिसमें दुश्मन की निंदा है-

अकबर गरब न आण, हींदू सह चाकर हुआ।

दीठो कोई दिवोण, करतो लटका कटहड़ै।⁸

इस युग के प्रशंसात्मक काव्य रचयिताओं में समय क्रमानुसार चितौड़ का सौदा बारह बारू जी (रचना काल सन् 1374 ई०) बारह चौहथ या चौथ (सन् 1438-1504 ई०) हरिदास के सरिया (सन् 1504-1527 ई० के आस-पास) सौदा बारहठ जमणा जी, गोरधन की वोगसा, पीथा जी आसिया, महाराज पृथ्वीराज राठौर (सन् 1549-1600 ई०) जयपुर नरेश महाराज मानसिंह (सन् 1599-1614 ई०) दुरसा जी आढ़ा, हरिदास भाट आदि उल्लेखनीय हैं।

वीर काल :-

भारतवर्ष में सुल्तान साम्राज्य की स्थापना के बाद की परस्पर फूट और वैमनस्य का वातावरण था। विभिन्न जातियाँ मुसलमानों की अधीनता की बेड़ियाँ काटकर अपने को मुक्त करने के प्रयास में दत्तचित थीं। स्वाधीनता संग्राम की बलिवेदी पर न्योछावर होने वाली जातियों में राजपूत जाति को प्रमुख स्थान प्राप्त है।

राजनैतिक परिस्थितियों के कारण डिंगल कवितायें वीर साहित्य के रूप में विश्व साहित्य के लिए एक अपूर्व उपहार हैं। वीर रस के अंतर्गत मान्य युद्ध दान, दया और धर्म, चारों प्रकार के वीरों का सजीव, स्वाभाविक और सांगोपांग वर्णन काव्यकारों ने अंकित किये हैं। युद्ध तथा युद्ध स्थल का भयावह वातावरण रण के विरोधी, प्रतिद्वन्द्वियों का शौर्य, पराक्रम, आतंक, सेनानियों की बहुलता, अश्व गजों की प्रचुरता के वर्णन अत्युक्तियों एवं अतिशयोक्तियों से अनुरंजित और अनुप्राणित हैं तथापि प्रभावशाली और अनुपम हैं। वीर नर-नारियों का मनोविश्लेषण की वास्तविक और मार्मिक है।⁹

विद्वानों ने राजस्थान के वीर साहित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। डॉ० एस० टी० टेसीटरी के अनुसार यह वृहद् साहित्य समस्त राजपूताना तथा गुजरात में, जहाँ कहीं भी राजपूत ने अपनी भूमि के विजय हेतु रक्त का बलिदान किया, पल्लवित तथा पुष्पित हुआ¹⁰ डॉ० सुनीति कुमार चौटर्जी का मत है कि राजस्थानी साहित्य वीरत्व से ओत-प्रोत जीवन और वीर की झंझा-प्रवाह सदृश मृत्यु का संदेश है। ये राजस्थान के गीत थे जिनमें कि अथक शक्ति एवं अविजित लौह युक्त साहस का फेनिल स्रोत प्रवाहित होता था और जिन्होंने कि राजपूत योद्धा को व्यक्तिगत सुख तथा आकर्षण को विस्मृत कराकर, सत्य शिव एवं सुन्दर, के लिए लड़ने पर बाध्य किया¹¹ दाढ़ी बादर-रचना नीसाणी वीर माण, श्रीधर-रचना मंदोदरी संवाद, सप्तएसी रा छंद, शिवदास, ईसर दास आदि की रचनाएँ प्रारंभिक वीर काव्य है।

वीर काव्य :-

विषम परिस्थितियों से साक्षात्कार होने के कारण मनुष्य अलौकिक शक्तियों की ओर प्रेरित होता है। इसी प्रकार शृंगार की रचनाएँ भी डिंगल साहित्य में मिलती है। इससे इतर भी रचनाएँ दोहों और गीतों के रूप में प्राप्त है।

कुछ प्रमुख डिंगल रचनाएँ :-

ढोला मारत रा दूहा, बेलि किसनरूकमणी री, हाला झांला री कुडलिया, वीर सतसई, छंद राव जैतसी रउ, वीर विनोद, अजीह सिंह चरित, राजप्रकाश, सगत सिंह रासो, श्री दरबार रा कविता, महाराजा रतन सिंह जी, री रूपम, रतन विलास आदि।

डिंगल साहित्य में भक्तिपरक, नीतिपरक, शृंगारपरक और इतर विषयों के अनेक रचनाएँ हैं जिनके कवि और रचना की प्रमाणिता पर शोध जारी है।

हिन्दी के अन्तर्गत अनेक उपभाषाओं और बोलियों की गणना की जाती है जिनमें राजस्थानी, ब्रज, बुन्देली, पहाड़ी, खड़ी बोली, अवधी, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली आदि हैं। डिंगल राजस्थान की मौलिक साहित्यिक भाषा है। हिन्दी के समान ही राजस्थानी नाम भी भ्रामक है। क्योंकि राजस्थानी में भी मारवाड़ी, ढूँढाही, मालवी, मेवाती और बांगड़ी बोलियाँ हैं। डिंगल राजस्थानी का आदर्श स्वरूप है, जिसका मूल ढाँचा मारवाड़ी के अधिक सन्निष्ट है। इसे मरू भाषा तथा पश्चिमी राजस्थानी नामों से भी सम्बोधन किया गया है।

डिंगल को बहुत से विद्वानों ने राजस्थानी भाषा माना है और बहुत से विद्वानों ने अपभ्रंश हिन्दी में आयी राजस्थानी जिससे हिन्दी समृद्ध हुई है। डिंगल साहित्य वस्तुतः संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य से प्रभावित होते हुए भी बहुत कुछ मौलिकता लिये हुए हैं। यह मौलिकता डिंगल साहित्यकारों की अपनी देन है।

निष्कर्ष :-

डिंगल साहित्य हिन्दी साहित्य को विकसित करता है। इसमें वीर रस के श्रेष्ठ सजीव एवं मौलिक साहित्य का विस्तृत अध्ययन होता है। भक्ति एवं शृंगार विषयक उत्कृष्ट कवियों की कृतियों की शृंखला में अभिवृद्धि करता है, रीति ग्रंथों के समावेश से नवीन अलंकार छन्द तथा काव्य दोष आदि देखने को मिलते हैं। ऐतिहासिक गीतों, पीढ़ी-वंशावली राजाओं और उनके यश, वैभव तथा वीर परंपराओं का अद्भुत सौन्दर्य डिंगल साहित्य में संग्रहित है। यह एक ऐसा वीर संग्रह है जिसमें भक्ति, नीति के साथ भारत के एक वीर जाति जो अपनी धरती और स्वतंत्रता के लिए अपनी जीवन को हँसते-हँसते न्योछावर करते हैं उनका यशगान है। डिंगल साहित्य को हिन्दुओं विशेषतया राजपूतों के सांस्कृतिक जीवन का एक मूलस्रोत कहा जा सकता है। इस रचनाओं के द्वारा राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक आदि संस्कृति के विभिन्न अंगों पर प्रकाश पड़ता है।

संदर्भ :-

1. Shastri, Hara Prasad. (1913). *Preliminary Report on the operation in search of manuscript of Bardic chronicles.* the University of Wisconsin – Madison. p. 15
2. Journal and proceeding of Asiatic Society of Bengal- 1914 Vol-X, p. 376.
Retrieved from <https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.280399>
3. ना० प्र० प० भा० 14 अंक 1 वैशाख संवत्, 1990, पृ. 112-142.
4. वव रा० र० भ० भू०, पृ. 4.
5. ना० प्र० प० भा० 14 अंक-1, पृ. 18-19.
6. शुक्ल, आ० रामचन्द्र. (1929). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. काशी : नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 1.
7. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 135.
8. विरद छहत्तरी, पृ. 1.
9. *राजस्थानी भाषा साहित्य*. काशी : नागरी प्रचारिणी सभा.
10. राजस्थानी साहित्य का महत्व, पृ. 68, काशी : नागरी प्रचारिणी सभा. माघ, 2000 वि०, प्रथम संस्करण. Retrieved from https://archive.org/stream/in.ernet.dli.2015.493641/2015.493641.Dingal-Sahitya_djvu.txt
11. वही, पृ. 68

राजेन्द्र यादव की औपन्यासिक चेतना

डॉ. यदुवंश यादव*

yadav14yadu@gmail.com

आज उपन्यास हिंदी में एक ऐसी विधा के रूप में विद्यमान है जिसने वृहत्तर सामाजिक सरोकारों को अपने में समावेशित किया है। उपन्यास जैसा कि एक बड़े वितान को रचता है जिस कारण से उसे वर्तमान दौर की महाकाव्यात्मक विधा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। यह मानव-सभ्यता की महान लोक-कला है, यह मानव-जीवन का ऐसा गद्य है जिसने सम्पूर्ण मानवीय जगत को अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा की है। परिस्थितियों में संघर्षरत मानव और उसकी उपलब्धियों को बड़े ही साफ़गोई से प्रस्तुत करना इसकी विशेषता है। आज़ादी के बाद हिंदी उपन्यासों ने अपनी भूमिका महत्वपूर्ण रूप में दर्ज की। इसने उन तमाम सरोकारों को अपना विषय बनाया जो आज़ादी के बाद घटित हुए। इतने बड़े रचना फ़लक को परखने व दिशा देने के लिए आलोचना की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। उपन्यास में उसके रूप और कथ्य का जितना विस्तार होता है उसके लिए आलोचना को विभिन्न अनुशासनों से जुड़कर अपनी दृष्टि को पैनी करने की आवश्यकता पड़ती है। हिंदी के आरंभिक उपन्यास आलोचना में इसी दृष्टि का हास दिखाता है, लेकिन बाद के आलोचकों ने इसपर विशेष ध्यान दिया। ऐसे आलोचकों में राजेन्द्र यादव का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इन्होंने उपन्यास आलोचना की जो रूढ़ परंपरा थी उसको तोड़ा और अपने स्वभाव के अनुसार विभिन्न अनुशासनों से जुड़ते हुए बिना किसी लाग-लपेट के उपन्यासों की आलोचना की। इसलिए जब उपन्यासों की विभिन्न प्रवृत्तियों को लेकर बात की जाती है तब उनका मानना है कि किसी भी विचार के क्षेत्र में चेहरा या व्यक्ति सापेक्ष होकर जाति-पांति का निर्माण नहीं किया जाता है, क्योंकि कोई भी विचार अपने-आप में निरपेक्ष नहीं होता, वह अनेक विचारों का संश्लिष्ट रूप होता है। इसी आधार पर राजेन्द्र यादव का मानना है कि उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक नाम देना गलत है क्योंकि उपन्यास स्वयं में इतनी बड़ी संकल्पना है कि उसमें ये सारे सूत्र समाहित होते हैं। उपन्यास की व्यापकता व सफलता क लेकर वे लिखते हैं कि, “शायद सफल उपन्यास का सबसे बड़ा गुण भी यही हो सकता है कि वर्तमान को ऐसा सटीक बना दे कि ऐतिहासिक महत्व की चीज हो जाए, और इतिहास को ऐसा नया सजीव-सवाक बना दे कि वह वर्तमान जैसा लगे।”¹

उपन्यास आलोचना की नई संकल्पना इनमें बहुतायत मात्र में पाई जाती है। जैसा कि राजेन्द्र जी एक रचनाकार भी हैं तो इसका प्रभाव इनकी उपन्यास आलोचना में भी दिखता है। इस दृष्टि से इनका मानना है कि उपन्यास सोशल एक्शन है। उनमें हम किन्हीं लोगों की कहानी कहते हैं, एक विशेष समय में आपसी संबंधों और व्यक्तित्वों को समझना-समझाना चाहते हैं, उन्हें बनते-बिगड़ते, विकसित होना दिखाते हैं। इन्होंने उपन्यास

* सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, संताल परगना महाविद्यालय, दुमका

में आलोचना में विमर्श सैद्धांतिकी को समाहित किया। उपन्यासों को समकालीन सामाजिक परिवेश के आधार पर देखा। उपन्यासों को इन संदर्भों से जोड़कर देखते हुए वे इनके पुनर्मूल्यांकन की बात पर ज्यादा जोर देते हैं। उन्होंने उपन्यासों में आम-आदमी की पीड़ा, मध्यवर्गीय समाज का झुंझलाहट, वर्णव्यवस्था, स्त्री पक्ष आदि बातों को अपनी उपन्यास आलोचना के केंद्र में रखा। इसके साथ ही वे उपन्यास की पश्चिमी आलोचना सैद्धांतिकी के बहुत हिमायती नहीं हैं। वे मानते हैं कि अपने यहाँ के उपन्यासों की आलोचना के लिए भारतीय तत्वों को ही आधार बनाना चाहिए। हम पश्चिम की सैद्धांतिकी से प्रेरणा ले सकते हैं लेकिन उनको केंद्र में नहीं रख सकते।

राजेन्द्र यादव उपन्यास आलोचना के केंद्र में जिन उपन्यासों को आधार बनाते हैं उनमें कुछ ऐसे उपन्यास हैं जिनपर खूब चर्चाएं हुईं तो उनमें कुछ ऐसे भी हैं जो पर्याप्त बहस न होने के कारण ज्यादा चर्चित नहीं हो पाएँ। चंद्रकांता संतति से लेकर राग दरबारी तक के उपन्यासों पर विस्तार से उन्होंने लिखा है। चंद्रकांता संतति पर जब वे लिखते हैं तो वे उन पूरी बहसों को उसमें समाहित करते हैं, चाहे वह भाषा की हो, समाज की हो, रचना-निर्माण प्रक्रिया की हो या लोकप्रियता की हो। उनका मानना है कि इसको केवल शुद्ध साहित्यिक दृष्टियों से नहीं समझा जा सकता। वे कहते हैं कि, “इस उपन्यास की जांच केवल साहित्यिक औजारों से नहीं की जा सकती। उस पूरे माहौल को समझना होगा जिसमें इसे पढ़ा-लिखा गया था।”² वे इस रचना को 1857 की क्रांति से जोड़कर देखते हैं कि यह कैसे उस पराजय से लोगों में हताशा व पराजय का इकबाली बयान है।

राजेन्द्र यादव के उपन्यास आलोचना की एक खास शैली है कि वे आलोचना करते हुए स्वयं एक पात्र बन जाते हैं और अपनी बात रखते हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास ‘सुनीता’ की आलोचना में यह बहुत ही बेहतरी से देखा जा सकता है। वे सुनीता को वर्तमान परिदृश्य में देखने की कोशिश करते हैं। स्त्री को देखने की मर्दवादी दृष्टि से इतर वे इसकी स्वतंत्रता की बात करते हैं। वे इस उपन्यास को रचनाकार से भी जोड़कर देखते हैं। और बताते की कैसे इस पर जैनेन्द्र की स्वनिष्ठा ज्यादा हावी हो गई है, जिस कारण से वे अंतिम समय में कदम पीछे हटा लेते हैं और सुनीता को अकेले छोड़ देते हैं। इस कमजोरी को वे धर्मवीर भारती के उपन्यासों में भी देखते हैं। उनका मानना है कि नारी को सशक्त दिखाने के बजाय उसे नितांत भावुक दिखाना भारतीय नारी को कमजोर करता है।

राजेन्द्र जी की आलोचना में हमें तीखा प्रहार भी दिखता है, वे बातों को सीधे-सीधे कहते हैं। ‘बूंद और समुद्र’ को जहां वे एक तरफ गोदान के बाद दूसरा सबसे बड़ा उपन्यास मानते हैं, वहीं उसके पात्र बाबागमजी को लेकर परंपरा और इतिहास की उपयोगिता पर सवाल भी खड़ा करते हैं। वे कहते हैं कि, “अगर अपनी सांस्कृतिक विरासत का मोह और इतिहास का प्रेम इस नतीजे और स्तर पर लाकर खड़ा कर दे तो सचमुच हमें उस सबकी कोई आवश्यकता नहीं है।”³ राजेन्द्र जी का यही अकखड़पना उनकी पूरी आलोचना दृष्टि में दिखती है। उपन्यास आलोचना के लिए यह दृष्टि इसलिए आवश्यक थी कि यह उस दौर में विकासशील होती हुई विधा थी। इसमें सुधार और संभावनाओं का विस्तृत भविष्य था। इस दृष्टि के साथ-साथ

वे उन तमाम पूर्ववर्ती विचारों से असहमति भी प्रकट करते हैं जिनकी वर्तमान अर्थवत्ता गौण होती जा रही है। अशक के उपन्यास 'गर्म राख' पर बात करते हुए वे उसे दो कोणों से पकड़ते हैं, जो उसके वर्तमान और भविष्य को लेकर है। एक तरफ वे उसे कथ्य के रूप में बेहद कमजोर मानते हैं और कहते हैं कि एक बार का पढ़ लिया जाना ही बहुत है। लेकिन वह उसे दूसरी तरफ शैली और तकनीकी के रूप में नए मोड़ का प्रतीक मानते हैं। धर्मवीर भारती के दोनों उपन्यासों 'गुनाहों का देवता' व 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर उनके द्वारा लिखा गया लेख बहुत महत्वपूर्ण है। इसके पूर्ववर्ती आलोचकों से इतर उन्होंने कुछ नए प्रतिमानों के साथ लिखा। राजेन्द्र जी ने उपन्यास आलोचना बहुत कम की लेकिन जितनी भी की पूरी जिम्मेदारी व जवाबदेही के साथ। वे कहीं किसी चीज को बचाते या छुपाते नज़र नहीं आते और कहीं भी उनका स्वयं भी हावी होता नहीं दिखता। 'तमस' पर बात करते हुए वे बेबाकी से लिखते हैं कि विभाजन पर मुस्लिम लेखकों ने जैसा लिखा वैसा हिंदी के किसी भी लेखक में नहीं दिखता। इसके बाद वे इसके विकास को 'झूठा सच' तक लाते हैं और इसे एक एपीक परिकल्पना कहते हैं। राजेन्द्र जी अच्छाई-बुराई बताने के साथ-साथ ही अपनी आलोचना पर गुटबाजिता का प्रभाव नहीं पड़ने दिया। उस समय साहित्य के क्षेत्र में तमाम समितियों व संघों की स्थापना हो चुकी थी। रचना व आलोचना दोनों इससे प्रभावित भी थे। प्रभाव का स्तर कभी-कभी विचारपरक न होकर व्यक्तिपरक हो जाता था, लेकिन ऐसा कोई प्रभाव राजेन्द्र जी में नहीं दिखता। उन्होंने अपने उपन्यासों पर भी आलोचनात्मक लेख लिखे, जिसमें 'शह और मात' तथा 'सारा आकाश' पर उनके द्वारा लिखा गया लेख महत्वपूर्ण है। सारा आकाश पर बात करते हुए वे भारतीय युवा के पारंपरिक जकड़न, खासकरके पारिवारिक व वैवाहिक जकड़न पर बेहतरी से बात करते हैं। इसमें उनका लेखकीय प्रभाव बेहतरी से देखा जा सकता है।

राजेन्द्र यादव ने उपन्यासों को देखने की नई दृष्टि दी। इसमें सामाजिक न्याय, विमर्श व पूंजी आधारित समाज के बदलाव के उपरांत स्थितियों के आधार पर उनके द्वारा की गई व्याख्याएँ महत्वपूर्ण हैं। जहां वे एक तरफ व्यावहारिक समीक्षा करते हैं वहीं दूसरी तरफ वे उपन्यासों को तात्विक दृष्टि से देखते हुए महत्वपूर्ण स्थापनाएं भी देते हैं। उनका मानना है कि, "भारतीय कथा साहित्य में स्वतंत्रता के बाद ऐसे उपन्यासों की बाढ़ आ गई जिनमें सामाजिक परिवर्तनों के पूरे विस्तार और पक्ष सूचीबद्ध किए गए हैं, देश के सौ और दो सौ वर्षों का इतिहास दिया गया है या हमारी तीन-चार पीढ़ियों का तर्पण किया गया है।"⁴ उपन्यास आलोचना में जिन पक्षों को लेकर प्रतिबद्ध रहे वह उनके जीवन और विचार से निर्मित थी। अपनी शैली के वे अकेले आलोचक हैं जिन्होंने कहन के अंदाज़ को साफ़गोई से प्रस्तुत किया।

संदर्भ :-

¹ यादव, राजेन्द्र. (2008). *अद्वारह उपन्यास*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 67

² यादव, राजेन्द्र. (2008). *अद्वारह उपन्यास*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 20

³ यादव, राजेन्द्र. (2008). *अद्वारह उपन्यास*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 72

⁴ यादव, राजेन्द्र. (2007). *उपन्यास : स्वरूप और संवेदना*. दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 14

मुक्तिबोध की कविताओं का विचार पक्ष

डॉ. बिनय कुमार सिन्हा*

bksinhaskmu1966@gmail.com

मुक्तिबोध अपने समय के महत्वपूर्ण सरोकार चाहे वह पूंजी से संबंधित हो या फिर सामाजिक भेदभाव सबको समान रूप से कविता के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया। भारतीय समाज आजादी के एक लंबे अंतराल के पश्चात भी शोषण से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सका था। उसके केंद्र में निश्चित रूप से विभिन्न कारक उपस्थित थे लेकिन पूंजी का असमान वितरण एक प्रमुख कारक के रूप में उपस्थित होता हुआ दिखाई पड़ता है। मुक्तिबोध अपनी रचनाओं में पूंजीवादी व्यवस्था के व्यवहार एवं उसके प्रभाव को दिखाने का प्रयास करते हैं। वर्ग संघर्ष के दौर में पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध भारतीय परिवेश के आधार पर किस रूप में निरूपित किया जाए मुक्तिबोध की कविता व्यापक रूप में दिखाने का प्रयास करती है। अपनी कविताओं में मुक्तिबोध ने जन सरोकारों को सामाजिक मुद्दों के साथ जोड़कर उसको व्यापकता प्रदान करने का कार्य किया है। इनकी कविता में पूंजीवादी दृष्टि के संबंध में जो विचार निरूपण दिखाई पड़ता है उसमें प्रमुख रूप से यह परिलक्षित होता है कि इस तरह के काव्य में वर्तमान पूंजी आधारित समाज तथा शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति का निरूपण किया गया है। पूंजी के आधार पर¹ किस तरह से समाज में असमान वितरण के उपरांत भेदभाव की स्थिति निरूपित होती है और शोषित वर्ग जीवन संघर्ष के लिए अभिशप्त हो जाता है वह इन कविताओं में महत्वपूर्ण रूप में दिखाने का प्रयास किया गया है। मुक्तिबोध पूंजीवाद के विरोध के संदर्भ में कविता के निरूपण के व्यवहार को महत्वपूर्ण मानते हुए अपने एक निबंध में उन्होंने बताया कि किस तरह से आधुनिक कविता का दायरा पूंजीवाद की संदर्भ में व्यापक होता जा रहा है और वह इससे उत्पन्न हुई जीवन की विकृतियों को बहुत ही संजीदगी से अपना विषय बना रही है। मुक्तिबोध की कविता में पूंजीवाद का व्यापक विरोध दिखाई पड़ता है तथा मनुष्य के हृदय में इसके विपरीत जिस प्रकार का परिवेश संघर्ष के संबंध में निरूपित किया गया है वह दिखाई पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं के माध्यम से मानवता का एक व्यापक दस्तावेज प्रस्तुत किया है जिसमें एक जागरूक कलाकार की सूक्ष्म तटस्थ दृष्टि से उन्होंने समाज को देखा ही नहीं बल्कि जीवन को भी अनुभव किया था। मुक्तिबोध की कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाते हैं। मुक्तिबोध की कविता में जनता के पक्ष को उन्होंने जिस वैचारिक सरोकार के साथ निरूपित करने का प्रयास किया उस पर मार्क्सवाद का प्रभाव सबसे ज्यादा दिखाई पड़ता है। उनकी कविता मात्र संवेदना के आधार पर ही निरूपित ना होकर बल्कि वैचारिक स्तर पर उनका काव्य शोषित वर्ग का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज दिखाई पड़ता है। अपने इस दस्तावेज में उन्होंने भारतीय परिवेश के साथ-साथ वैश्विक समुदाय में शोषितों, पीड़ितों की आवाज

* एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, सिदो कान्हु मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका

को मुखरता से बचने का प्रयास किया। सामाजिक संदर्भों को मुक्त हो जब अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं तो राजनीति सहज ही उनकी कविता में समाहित हो जाती है। राजनीति का विकृत चेहरा और अपने समकालीन शोषण की अन्य प्रवृत्तियों से उसका सामंजस्य किस रूप में जनता को लूटने के लिए स्थापित होता है यह मुक्तिबोध व्यापक रूप में दिखाने का प्रयास करते हैं। पूंजीवाद के संदर्भ में भी राजनीतिक सफेदपोश शोषक वर्ग किस तरह से शोषण कर रहा है वह मुक्तिबोध के यहां सहजता से उपस्थित दिखाई पड़ता है। समस्त सफेदपोश शोषक वर्ग को इनकी कविताओं में उनकी असलियत देखने के पश्चात काव्य न्याय की कल्पना उसके राक्षसी स्वरूप के अत्याचार के स्तर तक पहुंच जाती है। मुक्तिबोध की कविताओं में समाज अपने संपूर्ण सरोकारों के साथ उपस्थित होता है। अपनी कविताओं के माध्यम से मुक्तिबोध ने यह सुनिश्चित किया कि समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष किस रूप में मनुष्य के लिए प्रभावी होते हैं तथा उनके निर्माण में कौन से तत्व महत्वपूर्ण रूप में जिम्मेदार होते हैं। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने सामाजिक सरोकारों को सुनिश्चित करने का प्रयास किया तथा हिंदी कविता के दायित्वबोध को सामाजिक प्रासंगिकता के साथ उपस्थित करने का प्रयास किया। मुक्तिबोध की कविताएं निश्चित रूप से समाज को केंद्रीय रूप में व्याख्या प्रदान करने की कोशिश करती हैं। समाज में उपस्थित शोषित वर्ग का जीवन संघर्ष किस रूप में निरूपित होता है यह उनकी कविताओं के केंद्रीय भाव के रूप में प्राप्त होता है। उन्होंने कविता और लेखक के संदर्भ में अपनी बात रखते हुए यह कहा कि किस तरह से आज का लेखक स्वयं उसी समाज से संबंधित है जो गरीबी की प्रताड़ना और निम्न मध्यमवर्गीय सरोकारों से जुड़ा हुआ है। इस समूह में व्यापक शोषण होने के कारण ही कविता का भाव सामाजिक असमानता के विरोध में स्वाभाविक रूप में निरूपित हो जाता है। मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं के माध्यम से शोषित समाज की एक-एक पंक्ति को खोल कर उसकी वास्तविकता को कविता के माध्यम से दिखाया। समाज में जीवन व्यतीत कर रहे हैं स्त्री, दलित, बेरोजगार युवा, गरीब, मजदूर आदि सभी के शोषण का चित्रण हमें कविताओं में समान रूप से दिखाई पड़ता है। मुक्तिबोध ने सामाजिक सरोकार की व्याख्या करने के लिए मार्क्सवादी दृष्टिकोण केंद्रीय विचार तत्व के रूप में अपनाया और समाज में शोषण आधारित व्यवस्था का विरोध किया। अपने समय के सामाजिक नग्न यथार्थ को मुक्तिबोध ने जिस तरह से प्रस्तुत किया वहां अन्यत्र नहीं मिलता है। मजदूर किस तरह से अभिशप्त है बुर्जुआ वर्ग के व्यवहार के लिए। तथा इसके साथ ही साथ सामंती मानसिकता उसके साथ मिलकर शोषण के व्यवहार को और अधिक विद्रूप बना देती है। भारतीय सामाजिक परिस्थिति में सामंती मानसिकता के कारण से जाति, वर्ग और लिंग आधारित सामाजिक संरचना में भेदभाव की स्थिति हमेशा से देखी जा सकती है। मुक्तिबोध की चेतना स्वतंत्रता के उपरांत इन विद्रूपताओं को समाप्त करने के संदर्भ में निरूपित होते हुए दिखाई पड़ते हैं। जब वह देखते हैं कि यह सब समाप्त नहीं हो सकता है या उनके समय की सत्ता का चरित्र स्वयं इस तरह की कार्य व्यापार में किसी न किसी रूप में शामिल दिखाई पड़ता है तो वह अत्यंत ही क्षोभ प्रकट करते हैं।

मुक्तिबोध की कविता में सामाजिक अंतर्द्वंद्व के संघर्षपूर्ण व्यवहार की अभिव्यक्ति मिलती है। प्रमुख रूप से उनकी कविताओं में इसके दो सोपान मिलते हैं जिस संदर्भ में उनकी प्रगतिशील चेतना को देखा जा

सकता है। प्रथम स्तर पर वह स्वयं के अन्वेषण की बात करते हैं जिसके आधार पर वह व्यक्ति के अंतर्मन में वैचारिक सरोकारों के प्रभाव को स्थापित करने की बात करते हैं। अंतर्मन के स्तर पर हमेशा से कविता की संवेदना में एक ऐसे व्यवहार का निरूपण किया गया जिसमें आदर्श और आध्यात्मिक मूल्य हमेशा से सम्मिलित रहे हैं। परंतु मुक्तिबोध की प्रगतिशील चेतना व्यक्ति की आत्मालोचना से संबंधित दिखाई पड़ती है और इस संदर्भ में वह स्वयं का अन्वेषण अपनी कविताओं में करते हुए दिखाई पड़ते हैं। दूसरी तरफ उनका मानवीय दृष्टिकोण द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर निरूपित होता है। मार्क्सवादी चेतना के अंतर्गत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद सामाजिक व्यवहार के क्रम में पदार्थ के व्यावहारिक प्रयोग एवं अवधारणा को स्थापित करते हैं। कविता में यह चेतना निश्चित रूप में मुक्तिबोध से पहले इस व्यापकता के साथ उपस्थित नहीं दिखाई पड़ती है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का अपने समकालीन कवियों से अर्थ भी न दिखाई देता है और वह इस युग के सामाजिक संघर्ष का आत्म विश्लेषण करते हैं और इसके माध्यम से ही अपनी अंतर वेदना को संगत एवं पूर्ण निष्कर्ष तक पहुंचाने की कोशिश करते हैं। यदि मुक्तिबोध की कविता की संरचना को देखा जाए तो उसमें कविता व्यक्ति आधारित होते हुए भी स्वयं की खोज को निरूपित करती है। यह निरूपण किसी भी प्रकार की पारलौकिक व्यवस्था से ना होते हुए बल्कि सामाजिक संघर्षों से सीधे रूप में जुड़ा हुआ होता है। इस संदर्भ में वह एक ऐसे संघर्ष को स्थापित करते हैं जो जागृत अवस्था में व्याप्त है और निजत्व को अपने अंदर समाहित किए हुए हैं। मुक्तिबोध की कविता का परिवेश इतना व्यापक है कि वह व्यक्तिगत संवेदना को वैश्विक धरातल पर निरूपित करते हैं। वैश्विक स्तर पर यदि देखा जाए तो वर्ग आधारित संघर्ष सभी जगह समान रूप से हैं और इसलिए ही मुक्तिबोध की कविता के माध्यम से उन संघर्षों में स्वयं को जोड़ते हुए नजर आते हैं। मुक्तिबोध प्रगतिशील चेतना के कारण ही अपने समय के संदर्भों को सबसे ज्यादा नजदीक से देखते हैं और भविष्य के प्रति सब को आगाह कर रहे होते हैं।

संदर्भ :-

1. शर्मा, कृष्ण दत्त. (2015). *आलोचना और सृजनशीलता*. नई दिल्ली : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
2. सिंह, कुंवरपाल. (2005). *मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और हिन्दी उपन्यास*. दिल्ली : नवचेतन प्रकाशन.
3. मधुरेश. (2011). *आलोचना प्रतिवाद की संस्कृति*. दिल्ली : स्वराज प्रकाशन.
4. ठाकुर, खगेन्द्र. (2005). *आलोचना के मुख से (सं०)*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
5. चौहान, कर्णसिंह. (1998). *प्रगतिवादी आलोचना का इतिहास*. दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.
6. अवस्थी, देवीशंकर. (1979). *रचना और आलोचना*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
7. ईगल्टन, टेरी. (2006). *मार्क्सवाद और साहित्यालोचन*. (अनु० - वैभव सिंह). पंचकूला : हरियाणा साहित्य अकादमी.
8. त्रिपाठी, राधावल्लभ. (2012). *नया साहित्य : नया साहित्याशास्त्र*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

स्वतंत्रता संग्राम में देशभक्ति गीतों का योगदान

डॉ. नितप्रिया प्रलय*

nitpriyapralay@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का काल देशभक्ति गीतों के संपूर्ण विकास का काल रहा है। इस समय देशभक्ति गीतों को विशेष सार्थकता एवं प्रासंगिकता प्राप्त हुई है। भारत में विभिन्न आंदोलनों के समय देशभक्ति गीतों ने क्रांति को संचारित करने का कार्य किया। देशभक्ति गीतों से अंग्रेजी सरकार सदा ही आतंकित रही क्योंकि देशभक्ति गीतों द्वारा भारत से अंग्रेजी सरकार की नींव उखाड़ने का कार्य किया जा रहा था। यही कारण था कि अंग्रेजी सरकार द्वारा देशभक्ति गीतों पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए किंतु कोई भी प्रतिबंध देशभक्ति गीतों का मार्ग रोक ना सका। स्वतंत्रता संग्राम में देशभक्ति गीतों का जो विकास हुआ वह स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बहुआयामी हो गया। लोकतंत्र की स्थापना के कारण देश के सच्चे शासक जनता हो गए जनता के कल्याण में ही देश का कल्याण है देश भक्तिगीत अब जनता की आवाज बन गए जनता के सुख-दुख को देशभक्ति गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली।

स्वतंत्रता संग्राम में देशभक्ति गीतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। देशभक्ति गीतों ने स्वतंत्रता सेनानियों को संघर्ष करने के लिए ऊर्जा, प्रेरणा एवं अदम्य शक्ति प्रदान की। देशभक्ति गीतों ने स्वतंत्रता सेनानियों को सर्वस्व त्याग कर मातृभूमि को स्वतंत्र करवाने की प्रेरणा दी और आम जनमानस को भी देश के लिए संघर्ष हेतु प्रेरित किया। 1857 ई. में बैरकपुर में क्रांति की पहली शुरुआत हुई। मंगल पांडे ने चर्बी के नए कारतूस को लेने से इंकार कर दिया और ब्रिटिश अधिकारी को मार डाला। मंगल पांडे अकेले होने के कारण फांसी पर चढ़ा दिए गए। विद्रोह का आरंभ 10 मई

1857 ई. को दिल्ली से 36 मील दूर मेरठ छावनी से आरंभ हुआ और तेजी से पूरे उत्तर भारत में फैल गया। मेरठ में सैनिकों ने खजाना लूट लिया ब्रिटिश अफसरों को मार डाला और दिल्ली की ओर बढ़ कर उस पर कब्जा कर लिया। बागी सैनिकों के द्वारा एक देशभक्ति “कौमी गीत” की रचना की गई। जो उन्हें संघर्ष के लिए ऊर्जा प्रदान करता था। बागी सैनिकों द्वारा बनाए गए कौमी गीत निम्नलिखित है-

हम हैं इसके मालिक हिंदुस्तान हमारा
पाक वतन है काम का जन्म से भी प्यारा
ये है हमारी मिलकियत हिंदुस्तान हमारा
इसकी रोहा नियत से रोशन है जग सारा
कितनी कदीम कितना नईम सब दुनिया से न्यारा
करती है जरखेज जिसे गंगा जमुना की धारा

* अतिथि अध्यापक, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

ऊपर बर्फीला पर्वत पहेरेदार हमारा
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक्करा
इसकी खानें उग्र ही सोना हीरा पारा
इसकी शान-शौकत का दुनिया में जयकारा
आया किरण जी दूर से ऐसा मंत्र मारा
लूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा
हिंदू-मुसलमान सिख हमारा भाई प्यारा ॥

यह है आजादी का झंडा इसे सलाम हमारा ॥

गिरीश चंद्र शर्मा अपनी शोध प्रबंध में लिखते हैं कि 1857 का स्वतंत्रता संग्राम अपने लक्ष्य की प्राप्ति में विफल रहा अंग्रेजों ने क्रांति को दबाने के लिए अत्याचार किए लोगों को यातनाएं दी सैकड़ों गांव जलाए गए हजारों आदमियों को फांसी दे दी गई। जान लेने से पहले ना जाने कितने हिंदुओं के मुंह में गौ मांस टूंस कर और मुसलमानों के शरीर में चर्बी मिलकर अपनी प्रतिहिंसा पूरी की।

बिस्मिल इलाहाबादी मेरठ की क्रांति के बारे में लिखते हैं-

आज मेरठ में लगी फैल गई चारों तरफ
कितनी रोशन हुई है दसवीं माई चारों तरफ
जोश में आ के जो प्रयाग के वासी जागे
बाढ़ के छोड़ के घबरा के फिरंगी भागे ॥

कानपुर विद्रोह के बाद ब्रिटिश जनरल डीलर ने आत्मसमर्पण कर दिया नाना साहेब पेशवा के नेतृत्व में विद्रोहियों ने कई ब्रिटिश सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया परंतु कुछ दिन बाद जनरल हैवलॉक ने विद्रोहियों को पराजित कर कानपुर रेजिडेंसी को अपने अधिकार में ले लिया उस समय तात्या टोपे जो नाना साहेब के सेनापति थे ने इस युद्ध में अदम्य वीरता का प्रदर्शन किया था बाद में अंग्रेजों ने तात्या टोपे को भी फांसी दे दी। कवि हरिफूल जो 1857 ई. में तात्या टोपे के समकालीन थे उन्होंने तात्या टोपे की प्रशस्ति में एक गीत लिखा इस गीत द्वारा तात्या टोपे की वीरता को प्रदर्शित किया गया है-

हाथ में नगन खडग मारीबे कूँ एक पग
तन मन देश कूँ समर्पित किनो है
आगे बढ़ी पीछे हटी धाई को मिचक्का करी है
टुक-टुक चीन में छिन में विढम दल कीनो है
सेंधिया सों ओघड़ हरामखोर और नार्हीं
मिली गौ फिरंगिया ते संसाघत दिनो है
मनै हरिफूम धन्नी तांतिया से वीर- तैने
सिस कूँउतारी कैँ सुजस जग लीनो है ॥

रजनी पामदत्त अपनी पुस्तक "आज का भारत" में लिखती हैं कि अंग्रेजों के दमनकारी रवैया की पूरे विश्व में निंदा की गई। अमेरिका में झंडे झुका दिए गए। बेल्जियम की सरकार ने तो अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिक सहायता देने की तैयारी दिखाई। फ्रेंच पत्र 'लपेथी' ने इस युद्ध में अंग्रेजों के जीत जाने पर लिखा था कि यह दमन किया गया है सेना में भारतीय सैनिकों की संख्या बहुत कम कर दी गई गोरखाओं और सिख सैनिकों को अधिक भर्ती किया जाने लगा। इस क्रांति के बाद भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश सरकार के हाथों में चला गया। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि भारतीय जनता को धर्म, समाज, अर्थ, प्रशासन एवं सांस्कृतिक विकास संबंधी अधिकार दिए जाएंगे। इस प्रकार संपूर्ण भारत पर ब्रिटिश सरकार की सत्ता कायम हो गई यद्यपि ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा घोषित भारत में सुख और शांति स्थापित करने की थी किंतु उससे जनता की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ।

डॉ शिवकुमार शर्मा अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि इस कालखंड में देशभक्ति एवं समाज सुधार से ओतप्रोत अनेक देशभक्ति गीत लिखे गए जिसका मुख्य श्रेय भारतेन्दु हरिश्चंद्र एवं उनके समूह के कवियों को जाता है भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने नाटक एवं अन्य विधाओं में देशभक्ति पूर्ण गीतों का बीजारोपण किया राजनीतिक आर्थिक सामाजिक कुरीतियों पर भारतेन्दु युगीन कवियों का विशेष ध्यान गया जिसमें प्रमुख साहित्यकारों भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालमुकुंद गुप्त, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेम धन, राधा कृष्ण दास, अंबिका प्रसाद व्यास और प्रताप नारायण मिश्र आदि देशभक्ति की कविताएं लिखीं। इन कवियों ने तत्कालीन जीवन से प्रेरणा लेकर अपने सूट अनुभवा और युगीन शक्तियों को निर्भीकता पूर्वक वाणी दी है एवं राष्ट्रीय भावनाओं को सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक स्तर पर राष्ट्रीय नवजागरण की संज्ञा दी है भारतेन्दु हरिश्चंद्र अपने एक गीत के माध्यम से भारत के अतीत और वर्तमान का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं जो निम्नलिखित है-

जो भारत जग में रहयो सब सौं उत्तम देस।
ताहि भारत में रह्यो अब नहिं सुख को लेस ॥
याही भुव मैं होत हं हीरक, आम कपास ।
इतहीं हिमगिरि, गंगजल काव्य गीत परगास ॥
याही भारत देस में रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिन के भारत गान सों भारत-वदन प्रकास ॥
जासु काव्य सों जगत महिं ऊँचो भारत-सीस ।
जासु राजबल धर्म की तृषा करहिं अवनीस।।
अब लौं ये भारत भरे नहिं गुन रूप समान ॥
कोटि-कोटि ऋषि पन्य तन कोटि-कोटि नृप-सूर ।
कोटि-कोटि बुध, मधुर कवि मिले यहाँ की धूर ॥
हाय वहै भारत-भुव भारी,
सबही विधि तें भई दुखारी
रोम ग्रीस पुनि निज बल पायो,

सब विधि भारत दुखित बनायो,
अति निरबली स्याम जापाना
हाय न भारत तिनहुँ समाना,

उपरोक्त देशभक्ति गीत के माध्यम से भारतेन्दु हरिश्चंद्र भारत के गौरवशाली अतीत और वर्तमान में भारत के दुर्दशा को रेखांकित करते हुए देश के लिए मर मिटने वाले वीरों का आह्वान करते हैं। और कहते हैं कि जागो और अपनी दुर्दशा से बाहर निकालने के लिए संघर्ष करो। गीत के madhyam se अंग्रेजों द्वारा अपनी संस्कृति को चौपट करने और हर प्रकार से हमारा शोषण करने के अंग्रेजी तरीके को रेखांकित करते हैं।

इसमें बहुत से साहित्यकारों ने वक्त की आवाज को सुनकर और महसूस करके अनेक देशभक्ति गीतों की रचना की। जिनमें जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी व दिनकर आदि प्रमुख हैं। माखनलाल चतुर्वेदी ने तत्कालीन समय में देश के लिए बलिदान और त्याग की भावना को अपने एक गीत "पुष्प की अभिलाषा" के माध्यम से बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंका।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने।
जिस पथ जावें वीर अनेक।।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में देशभक्ति गीत के माध्यम से जनजागृति फैलाई गई। स्वतंत्रता संग्राम में देशभक्ति गीतों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है देशभक्ति गीतों ने स्वतंत्रता सेनानियों के अंदर जोश भरने का कार्य किया है और अपनी मातृभूमि को आजाद करने के लिए शक्ति प्रदान की।

संदर्भ :-

- 1 शर्मा, गिरीश चंद्र. (शोध प्रबंध). *स्वाधीनता संग्राम में हिंदी के देशभक्ति गीतों की भूमिका*. वाराणसी : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय.
- 2 मिश्र, डॉ. शिवकुमार. *आजादी की अग्नि सिखाएं*.
- 3 बल, डॉ. मीरा रानी. (2005). *राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- 4 पामदत्त. रजनी. (1977). *आज का भारत*. नई दिल्ली : मैकमिलन इंडिया.
- 5 शर्मा, डॉ. शिव कुमार. (2011). *हिंदी साहित्य और युगीन प्रवृत्तियां*. नई दिल्ली : अशोक प्रकाशन.

सहमति निर्माण एवं सामाजिक विघटन

डॉ. छविनाथ यादव*

chhabinathyadav1987@gmail.com

आशुतोष कुमार विश्वकर्मा†

ashuedu0@gmail.com

सामान्य परिचय

सहमति निर्माण (manufacturing consent) शब्द का अनुप्रयोग नॉम चामस्की ने किया था। इन्होंने इस शब्द को अमेरिका के महान पत्रकार वाल्टर लिपमैन एवं उनकी पुस्तक 'पब्लिक ओपिनियन' से लिया †। सहमति निर्माण के संदर्भ में अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे- अधिप्रचार (propaganda), मनोवैज्ञानिक युद्ध (psychological war), युद्ध कला (warfare) आदि। सहमति निर्माण के द्वारा आवाम की तार्किकता का संहार राजनेता, धर्मगुरु, कारपोरेट घराने अपने हितों को साधने के लिए करते हैं। इसके द्वारा जनता की भावनाओं को भड़काया जाता है ताकि उसका स्वहित में प्रयोग किया जा सके। दूसरे अर्थ में देखा जाए तो कहा जा सकता है कि सहमति निर्माण नकारात्मक चीजों को इस प्रकार गढ़ने की कला है कि वह जनता को सकारात्मक दिखने लगती है। **सहमति निर्माण में सच्चाई झलकती है मगर सच्चाई नहीं होती है**‡। जनता को अहसास करवाया जाता है कि मैं आपके लिए हूँ, आपके लिए कर रहा हूँ मगर सच्चे अर्थों में कुछ प्रदान नहीं किया जाता है। सहमति निर्माण '(manufacturing consent) के इतिहास पर अगर ध्यान केन्द्रित किया जाये तो यह मानव जीवन में पाषाण काल से ही प्रयोग में होता आ रहा है। प्रारम्भ में मनुष्य जंगलों में रहने के कारण जंगली जानवरों से बचने के लिए विविध भांति का भेष बदलकर रहता था। यह जानवरों को धोखा देने कि उसकी चालाकी थी**। इसके अलावा दूसरे कबीले को धोखा देने, पराजित करने के लिए सहमति निर्माण का प्रयोग करता था। बेबीलोन की सभ्यता में राजा

* सहायक प्रोफेसर (समाजकार्य), महादेव पी. जी. कालेज बरियासनपुर - वाराणसी

† पी-एच. डी. शोधार्थी (शिक्षा विभाग), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

‡ Chomsky, N. (2004). *Letters from Lexington: Reflexions on propaganda* .

§ Jwett , G. (2012). *Propaganda and persuasion* .

** Taylor, P. (2008). *A history of propaganda from the ancient world to the present era* .

एवं धर्मगुरु जनता को भय दिखाकर विश्वास प्राप्त करने हेतु खुद को ईश्वर का प्रतिनिधि बताते थे^{††}। एरोसियन एवं वेविलोनियन युद्ध में एरोसियन का राजा वेविलोन के राजा को धोखेबाज कहकर अपने सैनिक का विश्वास प्राप्त किया। मध्ययुग जिसे 'अंधयुग' भी बोलते हैं, में ईसाई चर्च का वर्चस्व था। पोप ईसाई धर्म का सर्वसिद्ध गुरु होता था। पोप एवं चर्च के आड़ में अनेक प्रकार के असामाजिक कार्य पोप की सहमति निर्माण (अधिप्रचार) के द्वारा किया जा रहा था। यहाँ तक कि चर्च एवं उनके धर्मगुरु लोग पापी व्यक्तियों को स्वर्ग में भेजने के लिए धन लेकर टिकेट भी बेचने लगे थे। यह धार्मिक और सामाजिक सहमति निर्माण का बेहतर दृष्टांत है। पुनर्जागरण काल के आर्विभाव एवं धर्मसुधार आंदोलन के बाद लोकतान्त्रिक राष्ट्रराज्य की हुई। सामंतवाद पर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विजय के साथ राष्ट्रराज्यों का विश्व जीतने का महा अभियान चला। इस अभियान में यूरोपीय राष्ट्र अंतिम रूप से अगुवा थे। फिर सहमति निर्माण (अधिप्रचार) का दौर चला। पूरी दुनिया में यूरोपीय संस्कृति को श्रेष्ठ साबित किया गया। दुनिया को सभ्य बनाने का नारा दिया गया। इन सबके आड़ में उपनिवेश एवं साम्राज्यवाद का गहन खेल खुद के हित में इन देशों ने खेला। ब्रिटेन प्रथम विश्वयुद्ध में अपने घोषणा-पत्र में विधिवत सहमति निर्माण का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए भारतीय जनता का समर्थन इस शर्त पर लिया गया कि विश्वयुद्ध के बाद तुर्की के खलीफा कि स्वतन्त्रता कायम रहेगी और भारत को अधिकतम स्वराज्य प्रदान कर दिया जाएगा। मगर युद्ध के बाद तुर्की के खलीफा को अपदस्थ करके वहाँ लोकतन्त्र की स्थापना कर दी गई और भारत में रोलेक्ट एक्ट जैसा काला कानून लाया गया। अमेरिका द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूरी दुनिया में क्यूबा एवं वियतनाम जैसे मुल्कों पर लोकतन्त्र के नाम पर आक्रमण किया और वियतनाम और लाओस पर इस प्रकार कहर बरपाया कि आज भी वहाँ के लोगों की उन दिनों याद करने पर रूह काँप उठती है। भ्रम और धोखा बेचने के क्रम में मीडिया के विविध माध्यमों का प्रयोग भी किया जाता है। जहां खबरें होती नहीं बनाई जाती हैं। सच्ची खबरों को अधिकांशतः राजनीति, कारपोरेट और मीडिया इन तीनों की तिकड़ी मिलकर आवाम तक जाने से रोक देती है^{††}।

भारतीय लोकतंत्र एवं सहमति निर्माण

भारत एक लोकतान्त्रिक राष्ट्र राज्य है। यहाँ सार्वभौमिक मताधिकार द्वारा जनता अपनी सरकार प्रतिनिधि प्रणाली द्वारा चुनती है। चुनाव प्रक्रिया तीन स्तरों की पायी जाती है :

1. संघ सरकार का चुनाव।
2. राज्य सरकार का चुनाव।
3. पंचायती चुनाव।

^{††} Taylor,P.(2008).*A history of propaganda from the ancient world to the present era* .

^{††} Chomsky,N.(1988).*Manufacturing consent: the political economic of mass media*.

भारतीय मुल्क की जनता लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास करती है जो स्वतन्त्रता के बाद का सत्तर साल की जनतांत्रिक सरकार इस बात का प्रमुख उदाहरण है। बदलते समय के साथ देश के राजनीतिक मूल्यों में गिरावट आई है। राजनेता राजनीति को धनलाभ, पदलाभ, मानलाभ और सुखलाभ का माध्यम मान चुके हैं। अपने इन स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए आज राजनेता किसी भी हाल में सत्तासीन होना चाहते हैं। इसके लिए वृहद स्तर पर अधिप्रचार का सहारा लिया जाता है। इसके द्वारा भारतीय युवाओं को भ्रमित किया जाता है। उनमें हिंसा, जातिवाद, धर्मांधता, क्षेत्रवाद, भाषावाद जैसे सामाजिक विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा दिया जाता है। इन सबके कारण भारतीय समाज में व्यक्तिगत एवं सामुदायिक विघटन को दोनों स्तरों पर बढ़ावा मिलता है। एक अध्ययन के मुताबिक हर चुनावी प्रक्रिया (संसदी चुनाव, विधानमण्डल चुनाव एवं पंचायती चुनाव) के बाद समाज में सहयोग, सहानुभूति, सामूहिकता एवं हम की भावना कम होती जा रही है और सामाजिक विघटन की दर हर चुनाव के उपरांत बढ़ती जा रही है। जिसका सर्वाधिक शिकार युवा वर्ग होता है।

लघु शोध के आधारभूत प्रश्न

1. क्या युवा सहमति निरण संप्रत्यय से परिचित हैं ?
2. क्या राजनीतिक सहमति निर्माण द्वारा युवाओं में सामाजिक विघटन को बढ़ावा दिया जा रहा है ?
3. धर्म, जाति, वर्ग, लिंग में से किसका इस्तेमाल करके राजनीति सहमति निर्माण कर रहे हैं और युवाओं में सामाजिक विघटन को बढ़ावा मिला है ?
4. राजनीतिक सहमति निर्माण द्वारा किस वर्ग (साक्षर, सामान्य शिक्षित, मध्यम शिक्षित, उच्च शिक्षित) के युवाओं में सर्वाधिक सामाजिक विघटन को बढ़ावा मिला है ?

लघु शोध का उद्देश्य

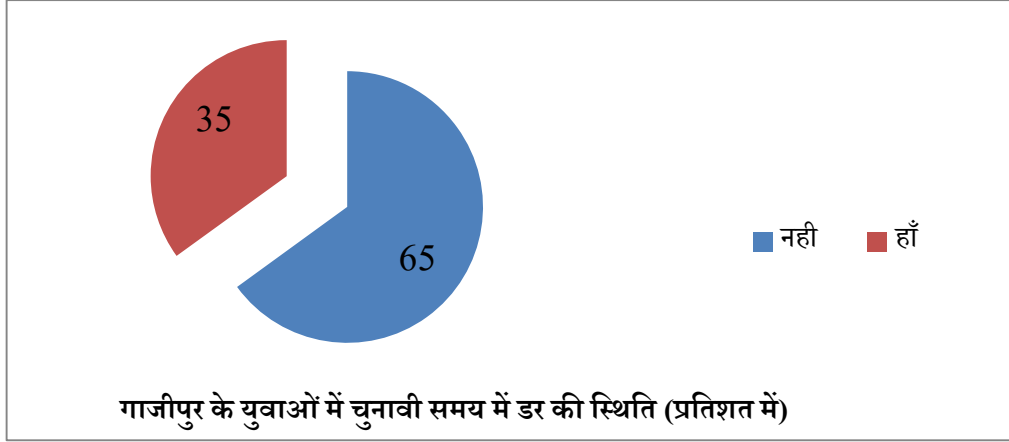
1. सहमति निर्माण की संकल्पना का अध्ययन करना।
2. राजनीतिक सहमति निर्माण के ग्रामीण प्रचार माध्यमों को जानना।
3. युवाओं में राजनीतिक महत्वाकांक्षा एवं सामाजिक विघटन को जानना।
4. राजनीतिक सहभागिता निर्माण एवं युवाओं के जीवन के आर्थिक पक्ष के मध्य सम्बन्धों को जानना।

शोध अभिकल्प एवं विधियाँ

इस शोध में गाजीपुर के 18-35 वर्ष के युवाओं को सम्मिलित किया गया है। गाजीपुर में कुल 5 तहसीलें हैं। प्रत्येक तहसील से प्रतिदर्श हेतु एक-एक गाँव का चयन किया गया है और प्रत्येक गाँव से 25-25 प्रतिदर्श इकाई का चयन प्रदत्त संकलन हेतु किया गया है। इस प्रकार प्रतिदर्श के प्रकृति के आधार पर बहुआयामी स्तरीय संभावित प्रतिदर्श (Multistrafied Probability sampling) का प्रयोग किया गया है। इस शोध में उत्तरदाता हेतु केवल बंद अनुसूची का प्रयोग किया गया है। उत्तरदाताओं के साक्षात्कार के साथ-साथ अन्य वरिष्ठ ग्रामीणों का साक्षात्कार विषय की समझ हेतु इस शोध में लिया गया है। प्रत्येक संदर्भित ग्राम सभा का असंरचित अवलोकन आंकड़ों के संग्रह के समय एवं इससे पूर्व किया गया।

आंकड़ों का विश्लेषण:

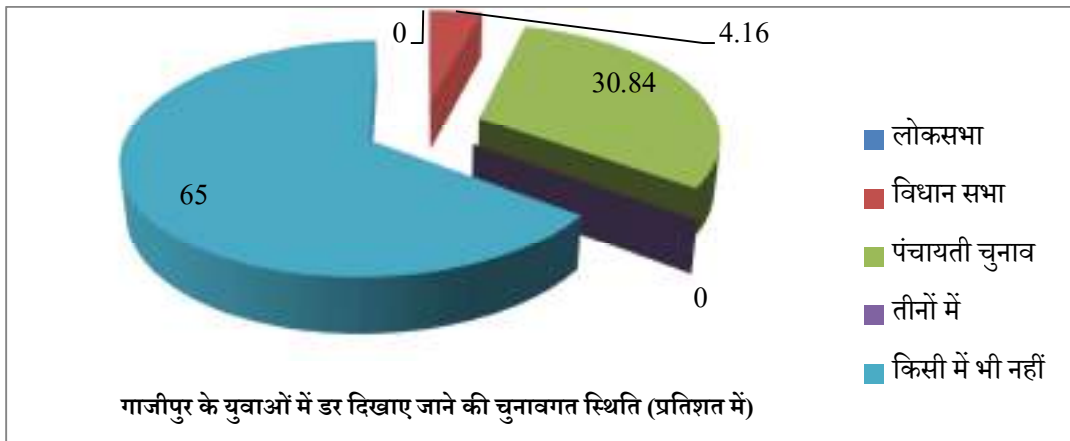
युवाओं में चुनाव के समय डर की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन



प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 65% युवा मानते हैं कि उन्हें डर नहीं दिखाया जाता है जबकि 35% युवाओं का मानना है कि किसी न किसी चुनाव में उन्हें प्रत्याशियों अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा डर दिखाया जाता है। इस प्रकार विश्लेषणात्मक तौर पर देखा जाए तो डर दिखाकर सहमति निर्माण की संभावना कम नजर आती है। इसके पीछे कई कारण नजर आ रहे हैं।

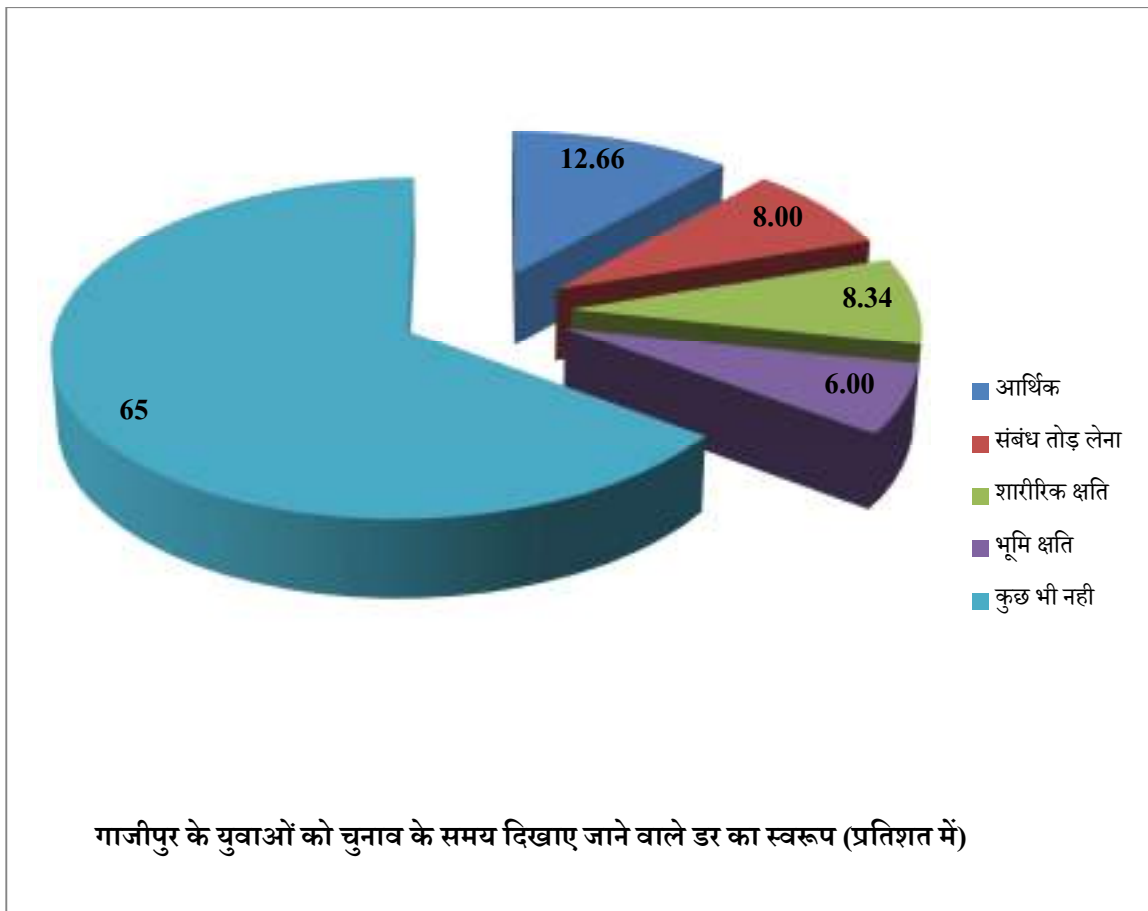
प्रथम क्षेत्र के 65% युवा मानते हैं कि उन्हें डर नहीं दिखाया जाता है इसके पीछे मुख्य कारण यह है कि प्रत्याशी एवं राजनीतिक दल जानते हैं कि डरा धमकाकर मतों के प्राप्ति हेतु जनमत निर्माण नहीं किया जा सकता है क्योंकि अब अधिकांश युवाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है और उनमें आत्मविश्वास बढ़ा है।

युवाओं में डर दिखाए जाने की चुनावगत स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन



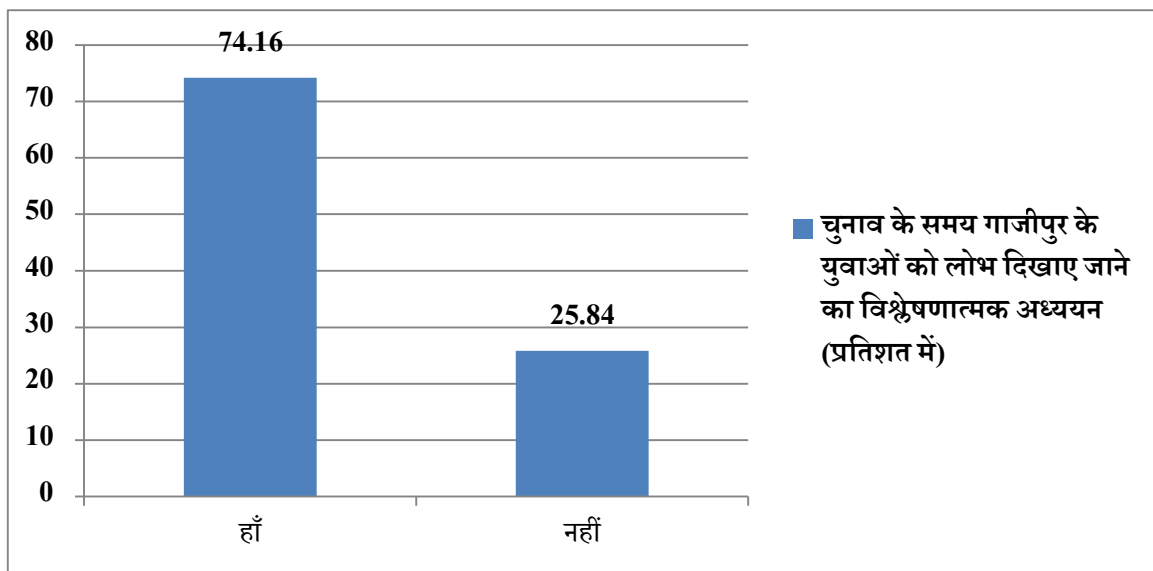
प्राप्त आंकणों से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के युवाओं की स्थिति चुनावगत डर दिखाए जाने के संदर्भ में पृथक-पृथक हैं। लोकसभा में डर दिखाए जाने का प्रतिशत 0%, विधानसभा में 4.16%, पंचायती चुनाव में 30.84% तथा तीनों चुनाव में संयुक्त रूप से 0% तथा 65% लोगों का यह मानना है कि उन्हें किसी भी चुनाव में डर नहीं दिखाया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 65% युवाओं ने जागरूकता, आत्मविश्वास एवं सक्षमता के कारण डर के स्थिति में नहीं रहते हैं। वे मानते हैं कि उन्हें किसी भी प्रकार का डर नहीं दिखाया जाता है। 35% युवाओं ने माना कि उन्हें चुनाव में किसी न किसी प्रकार का डर दिखाया जाता है। उसमें 30% युवाओं का कहना है कि उन्हें पंचायत चुनाव में डर का सामना करना पड़ता है। साक्षात्कार के समय कुछ ग्रामीणों का कहना था कि पंचायती चुनाव की स्थिति पहले की तुलना में काफी बिगड़ी एवं बदल गई है। इस प्रकार तथ्य यही कहते हैं कि विधानसभा एवं लोकसभा के चुनाव में चुनावी प्रक्रिया के कारण युवाओं को किसी भी प्रकार के परेशानी एवं डर का सामना नहीं करना पड़ता है। अतः बड़े चुनाव की स्थिति में सुधार हो रहा है पर ग्रामीण चुनाव की स्थिति निरंतर बिगड़ रही है।

युवाओं को चुनाव के समय दिखाये जाने वाले डर के स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन



प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि अध्ययन क्षेत्र के युवाओं में 12.66% आर्थिक क्षति, 8.00 संबंध तोड़ लेना, 8.34% शारीरिक क्षति, 6.00% को भूमि क्षति का डर दिखाया जाता है। जबकि 65% युवाओं को किसी भी प्रकार का डर नहीं दिखाया जाता है। इस तरह से जो भी डर पंचायती चुनाव में दिखाये जाते हैं उनमें सर्वाधिक डर आर्थिक क्षति का दिखाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकतम परिवार संयुक्त हैं एवं परिवार की मासिक आय कम है। इससे पता चलता है कि प्रति व्यक्ति निम्न आय एवं निम्न जीवन स्तर के कारण पंचायती चुनाव में सर्वाधिक डर आर्थिक क्षति का, युवाओं को दिखाया जाता है। यह भी स्पष्ट होता है कि 8.00% युवा मानते हैं कि उन्हें संबंध तोड़ने का डर दिखाया जाता है। भावनात्मक आवश्यकता न पूरा करने का डर भी दिखाया जाता है। 8.34% युवा मानते हैं कि उन्हें शारीरिक क्षति का डर दिखाया जाता है। यदि शारीरिक क्षति व संबंध तोड़ लेने के प्रतिशत को संयुक्त रूप से देखा जाए तो लगभग 17% युवा मानते हैं कि चुनाव के समय जीवन के अस्तित्व एवं गरिमा को खत्म करने का डर चुनाव में दिखाकर जनमत निर्माण की कोशिश की जाती है।

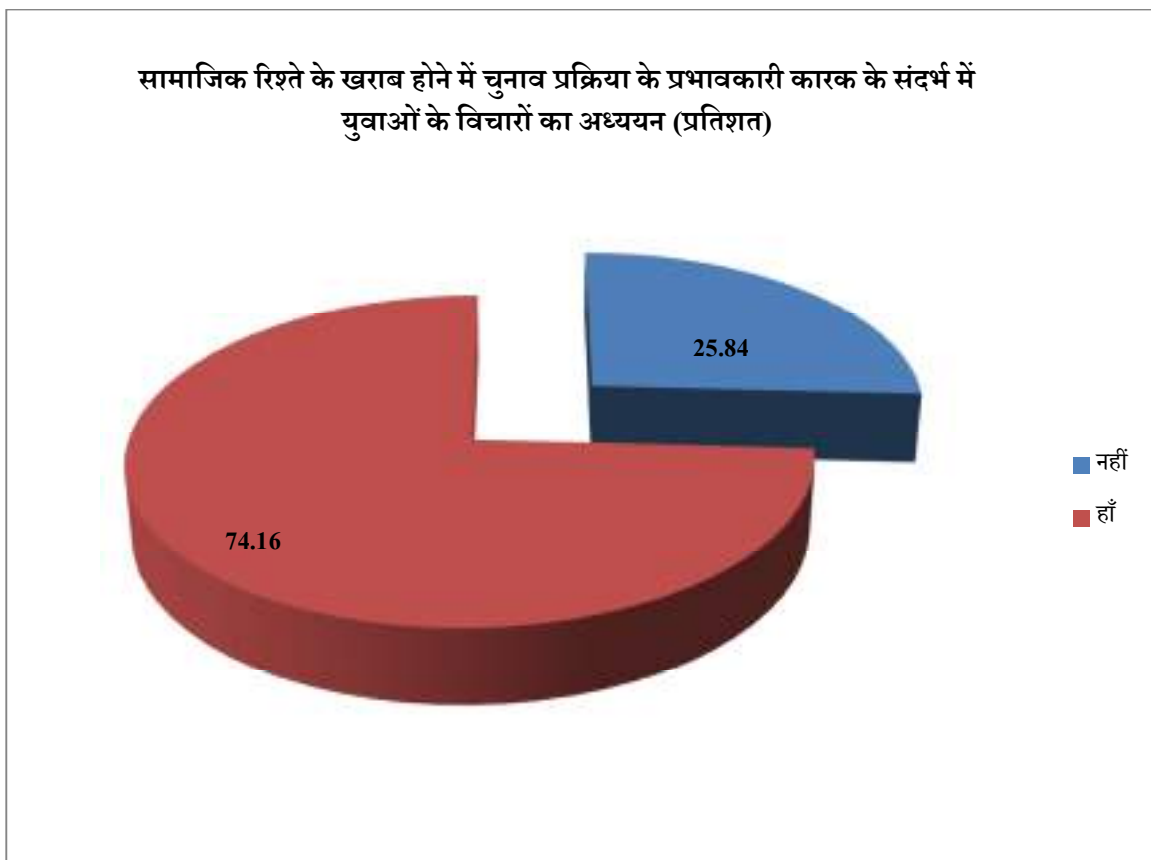
चुनाव के समय गाजीपुर के युवाओं को लोभ दिखाए जाने का विश्लेषणात्मक अध्ययन



प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह पता चलता है कि 74.86% युवा यह मानते हैं कि उन्हें राजनीतिक दलों अथवा प्रत्याशियों द्वारा किसी न किसी प्रकार का लोभ दिया ही जाता है। जबकि 25.84% युवाओं ने कहा कि उन्हें किसी प्रकार का लोभ नहीं दिया जाता है। इन तथ्यों को विश्लेषणात्मक रूप में देखा जाए तो कई चीजें समझ खड़ी होती हैं। 74.86% युवाओं द्वारा यह मानना कि उन्हें चुनाव के समय लोभ दिया जाता है और दूसरे तरफ 25.84% युवा मानते हैं कि उन्हें किसी भी प्रकार का डर नहीं दिखाया जाता है। स्पष्ट होता है कि एक तरफ लोग जागरूक एवं सामाजिक तौर पर सशक्त हो रहे हैं जिसके कारण प्रत्याशी एवं राजनीतिक दल डराने के जगह अधिकतम लोभ दिखाकर जनमत निर्माण हेतु सहमति निर्माण के सिद्धांत के रूप में प्रयोग करते हैं। अधिकतम युवा उच्च चुनावों (लोकसभा एवं विधानसभा) में किसी भी प्रकार के डर की बात नहीं

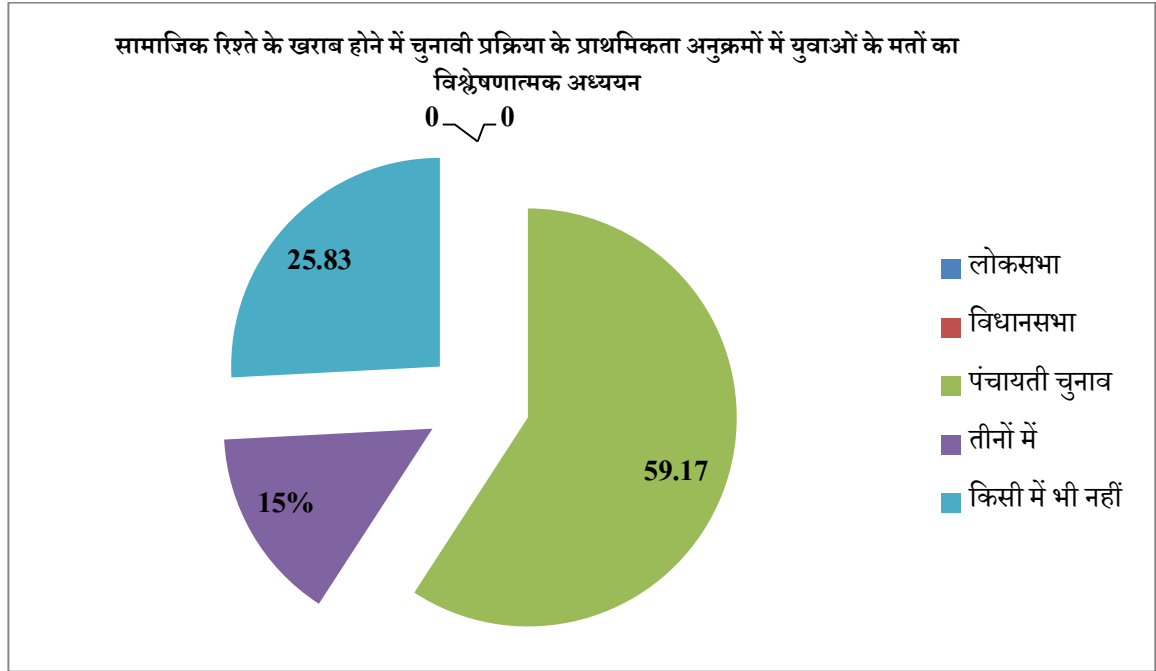
करते हैं और जब पंचायती चुनाव की बात आती है तो अधिकतम युवा मानते हैं कि उन्हें किसी भी प्रकार का डर नहीं दिखाया जाता है। वहीं न्यूनतम युवा मानते हैं कि उन्हें कई प्रकार के क्षति पहुंचाने का डर दिखाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि उच्च चुनावों में डरा धमकाकर मत मांगने की प्रवृत्ति खत्म हो रही है पर विविध प्रकार के लोभ दिखाकर मत मांगने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। वही लोभ के साथ-साथ शारीरिक क्षति, आर्थिक क्षति और भूमि क्षति का डर दिखाकर पंचायती चुनावों में जनमत निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

सामाजिक रिस्ते खराब होने में चुनावी प्रक्रिया के प्रभावकारी कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन



प्राप्त आंकड़ों के आधार पर 74.16% युवाओं ने माना कि चुनावी प्रक्रिया के कारण सामाजिक रिस्ते खराब होते हैं जबकि 25.84% युवाओं ने माना कि चुनावी प्रक्रिया के कारण सामाजिक रिस्ते खराब नहीं होते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो साफ-साफ स्पष्ट होता है कि लगभग एक तिहाई प्रतिशत युवाओं ने सामाजिक विघटन में चुनाव प्रक्रिया को एक कारक माना है। पूर्व के तथ्यों से पता चलता है कि अधिकतम युवाओं का मानना है कि किसी न किसी प्रकार की परेशानी चुनावी प्रक्रिया में उठानी पड़ती है। अतः यह कहना उचित जान पड़ता है कि भारतीय चुनावी प्रक्रिया लोकतांत्रिक मूल्यों का पालन करने के बजाय सामाजिक विघटन को बढ़ावा दे रही है।

सामाजिक रिस्ते के खराब होने में चुनावी प्रक्रिया के प्राथमिकता अनुक्रमों में युवाओं के मतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन



प्राप्त आंकड़ों द्वारा स्पष्ट होता है कि 59.17% युवाओं ने माना है कि सामाजिक विघटन में पंचायती चुनाव प्रभाव डालता है। विधानसभा एवं लोकसभा चुनाव के संदर्भ में युवाओं का मानना है कि यह नगण्य रूप में सामाजिक विघटन के रूप में प्रभाव डालते हैं। 15% युवाओं का मानना है कि तीनों चुनाव समान रूप से सामाजिक विघटन को बढ़ावा नहीं देते हैं। 25.83% युवाओं का यह मानना है कि पंचायती चुनाव सामाजिक विघटन को बढ़ावा देता है। स्पष्ट है कि पंचायती राज्य की स्थापना की जो प्रक्रिया भारतीय संविधान में तय की गई वह अपने आदर्श उद्देश्य के प्राप्ति के तरफ बढ़ रही है तो दूसरे स्थान पर सामाजिक विघटन को बढ़ावा दे रही है।

शोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न . 1 . क्या युवा सहमति निर्माण संप्रत्यय से परिचित हैं ? का उत्तर देखें तो पाएंगे कि आंकड़ों का विश्लेषण से प्राप्त तथ्य कहते हैं कि संबंधित अध्ययन क्षेत्र के युवा सहमति निर्माण (अधिप्रचार) संप्रत्यय (अवधारणा) से अधिक मात्रा में भलि-भाँति परिचित नहीं हैं। इस प्रकार यह कहना उचित है कि राजनेता, कार्पोरेट एवं मीडिया के द्वारा निर्मित सहमति निर्माण से ग्रामीण युवा अनभिज्ञ हैं। इस अनभिज्ञता के पीछे प्रमुख कारण यह है कि अध्ययन क्षेत्र के 60% ग्रामीण युवा 12वीं या इससे कम शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं।

प्रश्न .2. क्या राजनितिक सहमति निर्माण द्वारा युवाओं में सामाजिक विघटन को बढ़ावा दिया जा रहा है? के उत्तर हेतु प्राप्त आंकड़ों के मूल्यांकन से सामान्यीकरण किया जाए तो 87% युवाओं ने माना कि चुनाव को

लेकर किसी न किसी प्रकार की हिंसा होती है। जिसमें 83.% से ज्यादा युवा वर्ग द्वारा भागीदारी ली जाती है तथा 57.% से ज्यादा युवाओं ने कहा कि उन्हें पड़ोसी के विचारों के विरुद्ध जाकर मत देने पर आलोचना का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्रामीण युवाओं में चुनाव प्रक्रिया में मत प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के हिंसात्मक गतिविधियों को अंजाम देकर मतों का ध्रुवीकरण किया जाता है। जिसके कारण ग्रामीण युवाओं में सामाजिक विघटन को बढ़ावा मिल रहा है। युवाओं में सामाजिक विघटन के पीछे सबसे प्रमुख कारण यह है कि सहमति निर्माण (अधिप्रचार) के अवधारणा से परिचित नहीं हैं।

प्रश्न.3. जाति, धर्म, लिंग, वर्ग में से किसका सर्वाधिक इस्तेमाल करके राजनीतिक सहमति निर्माण किया जाता है? के उत्तर में देखा जाए तो प्राप्त होता है कि ग्रामीण युवाओं में सहमति निर्माण सर्वाधिक विकास के नाम पर बनाया जाता है। दूसरा कारक धर्म तथा तीसरा कारण जाति होती है। युवा वर्ग की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है स्वालंबन एवं आर्थिक विकास। इसलिए राजनीतिक दल एवं प्रत्यशी युवाओं को पैसे एवं पद का लोभ देकर सहमति निर्माण करते हैं।

प्रश्न.4. राजनीतिक सहमति निर्माण का युवाओं के शिक्षा स्तर से क्या संबंध है? के उत्तर के संबंध में देखा जाए तो अध्ययन क्षेत्र के सामान्य शिक्षित युवाओं में सर्वाधिक सहमति निर्माण का बुरा प्रभाव पड़ता है तथा इन युवाओं में सामाजिक विघटन भी सर्वाधिक स्थिति में बढ़ रहा है। जबकि उच्च शिक्षित युवाओं में सहमति निर्माण का प्रभाव हिंसात्मक गतिविधियों के रूप में नहीं पड़ता है बल्कि ये उच्च शिक्षित युवा पब्लिक ओपिनियन निर्माणकर्ता के रूप में राजनीतिक दलों एवं प्रत्यशियों द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं।

प्रश्न.5. ग्राम पंचायत चुनाव एवं उच्च स्तरीय चुनाव में सहमति निर्माण की स्थिति क्या है? के उत्तर के संदर्भ में देखा जाए तो शोध से प्राप्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि पंचायत चुनाव में सहमति निर्माण प्रत्याशी पैसे, कपड़े एवं शराब के आधार पर करते हैं तथा इस चुनाव में रजनीतिक पार्टियों का प्रभाव नगण्य होता है। जबकि उच्च स्तरीय चुनाव प्रक्रिया में रजनीतिक दल एवं प्रत्याशी काल्पनिक प्रतिकों का सहारा ज्यादा लेते हैं। ये प्रतीक धर्म, राष्ट्रवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद जैसे होते हैं।

शोध से निर्मित सिद्धांत

1. उच्च चुनावों में हिंसा सुनियोजित होती है, जबकि पंचायती चुनाव में हिंसा परिस्थितिजन्य होती है।
2. उच्च चुनाव की स्थिति निरंतर भय एवं हिंसा के संदर्भ में सुधरी है पर पंचायती चुनाव की स्थिति निरंतर बिगड़ी है।
3. सामाजिक विघटन युवाओं में अधिकतम पंचायत स्तरीय चुनाव द्वारा होता है।
4. सहमति निर्माण का शिक्षा से विपरीत का संबंध है अर्थात् कम शिक्षित लोगों पर सहमति निर्माण का अधिक प्रभाव पड़ता है।
5. लोग जाति, धर्मक्षेत्र की भावना से पहले कपड़ा, रोटी, मकान से प्रेरित होकर कार्य करते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में देखें तो सहमति निर्माण एक ऐसी अवधारणा है जो व्यक्ति एवं समाज को वैचारिक स्तर पर प्रभावित करके उसके व्यवहार में बदलाव कर देती है। यह बदलाव व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए फायदेमंद एवं नुकसानदायक दोनों होता है। सहमति निर्माणकर्ता वैचारिक स्तर पर नियोजित तरीके से दूसरे के विचारों को अपने हित में बदल देता है। यह एक मनोसामाजिक प्रक्रिया है जो समाज को बड़े स्तर पर प्रभावित करती है। राजनीति में भी सहमति निर्माण का प्रयोग बड़े पैमाने पर देखने को मिलता है। भारतीय समाज में राजनीति एक तरफ लोकतान्त्रिक मूल्यों को विकसित करने में मदद कर रही है तो दूसरे तरफ सत्ता की चाहत सहमति निर्माण के माध्यम से सामाजिक विघटन को बढ़ावा दे रही है। जाति, धर्म, भाषा आदि के नाम पर इसको बढ़ाया जा रहा है। अध्ययन से प्राप्त आकड़ा इस बात के तरफ इसारा कर रही है कि त्रिस्तरी चुनाव युवावर्गों में आर्थिक, धार्मिक, जातीय आधार पर मतभेद करके प्रत्याशी अपना-अपना फायदा प्राप्त करना चाहते हैं। सर्वाधिक सहमति निर्माण पंचायती चुनावों में देखने को मिलता है।

संदर्भ सूची

- Chomsky, N. (2004). *Letters from Lexington : Reflexions on propaganda* . Pluto press
- Jwett , G.(2012).*Propaganda and Persuasion* .Sage Publication
- Taylor, P. (2008). *A History of Propaganda from the Ancient World to the Present era*. Manchester University Press
- Chomsky, N.(1988).*Manufacturing consent: the political economic of mass media*. Pantheon Books Inc.
- Lipman, W. (1976)..*Public opinion*. London: Transaction Publisher.
- Priymol,S.(2014). *Communication Strategy & Propaganda Techniques of Communism Movement in Kerala*: University of Kerala.
- Taylor, P. (1990). *Munition of the mind A history of propoganda from the ancient world to the present era*. Manchester and New York: Manchester University press.
- Weigold. A. (2008). *Churchill Roosevelt & India Propaganda during World War 2nd*. New Work: Rutledge
- राजेन्द्र.(2003).लोक प्रचार. पंचकुला. हरियाणा साहित्य अकादमी.
- राजगढ़िया,वि.(2008).जनसंचार सिद्धांत एवं अनुप्रयोग.दिल्ली:राधाकृष्णन.
- सिंह,अ. (2013). *व्यावसायिक मनोविज्ञान*.दिल्ली: डोरलिंग किंगसे

पीएमजेडीवाई से मुंगेली विकासखंड के लोगों की आर्थिक स्थिति में बदलाव

श्रीमती मीरा गुप्ता*

meeragupta3005@gmail.com

डॉ. शुचि शर्मा†

meeshra.shuchi@gmail.com

सारांश

वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में वित्तीय जागरूकता एवं साक्षरता के उद्देश्य से केंद्र सरकार द्वारा प्रारंभ की गई प्रधानमंत्री जनधन योजना अभी तक की सभी योजनाओं में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस योजना के माध्यम से देश को आर्थिक मजबूती प्रदान करने एवं गरीबी को कम करने का प्रयास सफल होता नजर आ रहा है।

उद्देश्य - इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य मुंगेली विकासखंड में प्रधानमंत्री जनधन योजना के अंतर्गत खाताधारकों की आर्थिक स्थिति में बदलाव का अध्ययन प्रस्तुत करना है। प्रस्तुत शोध में मुंगेली विकासखंड के पीएमजेडीवाई योजना से जुड़े खाता धारक परिवारों की व्यक्तिगत जानकारी के अंतर्गत उम्र, पारिवारिक प्रकृति, जाति वर्ग, वैवाहिक स्थिति एवं शैक्षणिक स्तर तथा आर्थिक स्थिति में बदलाव के लिए आय, व्यय, बचत स्तर एवं बचत प्रतिशत में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए योजना के प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

शोध विधि - मुंगेली विकासखंड के 262 आवाद ग्राम में से 6 गांव के 25-25 परिवारों को अध्ययन के लिए यादृच्छिक रूप से चुना गया है। अनुसंधान के लिए चुने हुए इन गांवों के खाताधारक परिवारों से व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से अनुसूची को भरा गया है और आंकड़ों को एकत्रित किया गया है। आंकड़ों को एकत्रित करने के पश्चात उनका विश्लेषण किया गया।

कीवर्ड - पीएमजेडीवाई, आर्थिक स्थिति, मुंगेली विकासखंड

प्रस्तावना

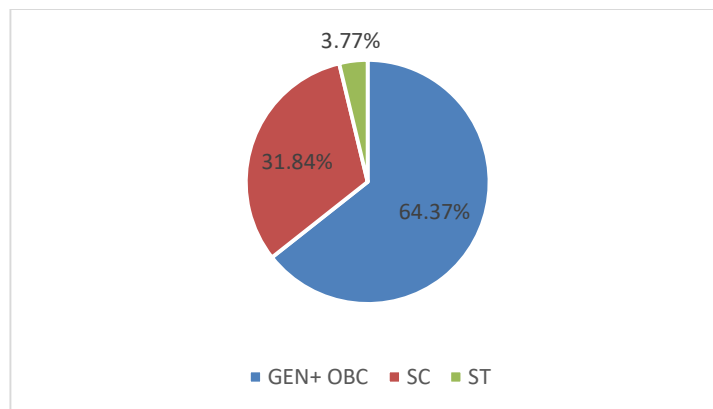
वित्तीय विकास के बिना आर्थिक विकास एक कोरी कल्पना है। अनुभवजन्य अनुसंधानकर्ताओं का मत है की एक मजबूत देश और आर्थिक विकास के लिए वित्तीय प्रणाली का विकास बहुत जरूरी है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए केंद्र सरकार द्वारा 28 अगस्त 2014 को प्रधानमंत्री जनधन योजना का शुभारंभ किया गया। प्रधानमंत्री जनधन योजना का मुख्य उद्देश्य वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के साथ-साथ लोगों को बैंकिंग क्षेत्र से जोड़कर बैंकिंग आदतों को विकसित करना है। प्रधानमंत्री जनधन योजना के माध्यम से असंगठित क्षेत्र

*रिसर्च स्कॉलर (अर्थशास्त्र), डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर (छ. ग.)

†सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र, सामाजिक विज्ञान विभाग, डॉ. सी. वी. रमन विश्ववि., बिलासपुर

के लोगों को पेंशन और बीमा योजना से जोड़कर वित्तीय साक्षरता को बढ़ाना और गरीबी को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। अभी तक सरकार द्वारा वित्तीय समावेशन के लिए जितनी पहले शुरू की गई है, उनमें प्रधानमंत्री जनधन योजना अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। इस योजना के अंतर्गत खाता धारक को ही सभी सरकारी योजनाओं का लाभ सबसे पहले मिलता है। इसके साथ - साथ अन्य लाभ जैसे- शून्य शेष बैंक खाता, ओवरड्राफ्ट की सुविधा, ऋण की सुविधा, डेबिट कार्ड की सुविधा, अंतरण की सुविधा एवं विभिन्न बीमा योजनाओं की सुविधा के साथ-साथ खाता धारक को न्यूनतम शेष राशि की आवश्यकता नहीं होती इत्यादि अतः वित्तीय विकास के लिए पीएमजेडीवाई एक धुरी के समान है।

भारत के मध्य भाग में स्थित मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग से 2001 में बना छत्तीसगढ़ राज्य कला और संस्कृति के कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। छत्तीसगढ़ राज्य के उत्तर पूर्वी भाग में स्थित मुंगेली को 1 जनवरी 2012 में 21वीं जिले के रूप में निर्मित किया गया। मुंगेली जिले में तीन विकासखंडों मुंगेली, लोरमी एवं पथरिया में से मुंगेली विकासखंड को अनुसंधान के लिए चुना गया है। मुंगेली में कई धार्मिक एवं पर्यटन स्थल हैं। मुंगेली विकासखंड में 282 ग्राम में से 262 आबाद ग्राम है, इनमें से अनुसंधान के लिए यादृच्छिक रूप से छः गांव का चयन किया गया है। ये गांव -बरेला, बाकी, सोनपुरी, सुरेठा,सेमरचुआ एवं भथरी हैं। छत्तीसगढ़ शासन के सांख्यिकी विभाग 2016-17 जिला मुंगेली की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार 2011 में इस विकासखंड की कुल जनसंख्या 2,49,229 हैं, जिसमें से 50.72% पुरुष एवं 49.28% महिलाएं हैं। कुल आबादी में से 85.37% ग्रामीण क्षेत्र में और 14.6% शहरी क्षेत्र में निवास करते हैं। इस विकासखंड में अनुसूचित जातिवर्ग के 31.84% लोग एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के 3.77% लोग निवास करते हैं। शेष 64.37% लोग पिछड़ा वर्ग और सामान्य वर्ग के हैं। मुंगेली विकासखंड में कुल जनसंख्या में से 1,38,885 लोग (66.99%) साक्षर है। जिनमें से 83092 (79.0%) पुरुष एवं 55793 (54.63%) महिलाएं साक्षर हैं। अतः मुंगेली विकासखंड में ग्रामीणों का बाहुल्य है और महिलाओं की तुलना में पुरुषों में साक्षरता की दर ज्यादा है।



चित्र क्र. 1 - मुंगेली विकासखंड की जातिवार जनसंख्या का प्रतिशत

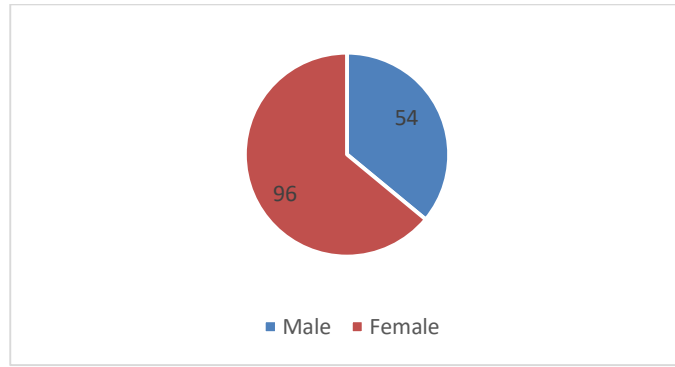
साहित्य की समीक्षा

1. **बागली एस. (2012)** - बागली के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि वित्तीय समावेशन के लिए साक्षरता एवं जागरूकता बहुत जरूरी है। भारत सरकार द्वारा वित्तीय समावेशन के लिए मजबूत एसोसिएशन मानव विकास की दिशा में एक सकारात्मक एक सराहनीय प्रयास किया जा रहा है।
2. **डां अनुपम शर्मा एवं सुश्री सुष्मिता कुकरेजा (2013)** - इनके विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए वित्तीय समावेशन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है।
3. **मि. दिव्येश कुमार एवं डां एच.आर. वेंकटेश (2014)** - इनके अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वित्तीय समावेशन का उद्देश्य समाज के वंचित और कम आय वाले वर्गों को सस्ती लागत पर वित्तीय सेवाओं का वितरण करना है।
4. **सी. परमासिवन (2015)**- इनके शोध से यह निष्कर्ष निकला है कि वित्तीय समावेशन का उद्देश्य सस्ती कीमत पर पारदर्शी और न्यायसंगत तरीके से सभी लोगों को बैंकिंग और वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराना है।
5. **मूर्नल चेतनभाई जोशी एवं विक्रम पी.राजपुरोहित (2016)** - इनके अध्ययन में पाया गया कि वित्तीय समावेशन समाज के वंचित और निम्न आय वाले विशाल वर्ग के लिए बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं का आसानी से वितरण कर सस्ती लागत पर उपलब्ध कराकर उन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ना, जिससे वो लोग वित्तीय क्षेत्र में अपनी पहचान बना सके।

अनुसंधान प्रविधि

यह अनुसंधान एक जनांकिकी अध्ययन है, जो लोगों के जीवन से संबंधित व्यावहारिक घटनाओं पर आधारित है। इस अनुसंधान का उद्देश्य प्रधानमंत्री जन धन योजना से मुंगेली विकासखंड के लोगों की आर्थिक स्थिति में क्या बदलाव हुआ इस पर आधारित है। मुंगेली विकासखंड, मुंगेली जिले के अंतर्गत आता है। मुंगेली विकासखंड में 282 ग्राम है, इन 282 ग्रामों में से आबाद ग्राम सिर्फ 262 की है। अनुसंधान के लिए 262 ग्रामों में से यादृच्छिक रूप से छः गांवों का चयन किया गया है। ये गांव- बरेला, बाकी, सोनपुरी, सुरेठा, सेमरचुआ एवं भथरी है। अनुसंधान के अंतर्गत उन लोगों को अध्ययन के लिए रखा गया है, जिन्होंने प्रधानमंत्री जनधन योजना में अपना खाता खुलवाया है।

मुंगेली विकासखंड के चुने हुए गांवों में से प्रत्येक ग्राम से यादृच्छिक रूप से 25-25 परिवारों (कुल 150) को अध्ययन के लिए चुना गया है। प्रत्येक परिवार में एक ही व्यक्ति खाता धारक होता है। महिलाओं को इस योजना के अंतर्गत प्राथमिकता प्रदान की जाती है। कुल 150 खाताधारक हितग्राहियों में से 54 (36%) पुरुष एवं 96 (64%) महिलाएं खाताधारक हितग्राही शामिल हैं।



चित्र क्र. 2 - पीएमजेडीवाई में खाताधारक हितग्राही

आंकड़ों का संग्रहण

आंकड़े प्राथमिक और द्वितीयक स्रोत के माध्यम से संग्रहित किए गए हैं। प्राथमिक स्रोत के रूप में अनुसूची का चयन किया गया। अनुसूची प्राथमिक स्रोत का बहुत विश्वसनीय एवं प्रचलित माध्यम है। इसके लिए शोधार्थी द्वारा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण किया गया, प्रत्येक परिवार से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर शोधार्थी द्वारा अनुसूचित को भरा गया। इस अनुसूची में उनकी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं जनधन खाता से संबंधित प्रश्नों को सम्मिलित किया गया है। जैसे- उम्र, लिंग, वैवाहिक स्थिति, श्रेणी, शैक्षणिक स्तर, परिवार की प्रकृति, आय, व्यय एवं बचत का स्तर, जनधन खाता धारक से संबंधित जानकारी इत्यादि।

आंकड़ों का संग्रहण करने के पश्चात् इनका वर्गीकरण एवं सारणीयन किया गया, जैसे पारिवारिक प्रकृति एकाकी एवं संयुक्त, शैक्षणिक स्तर- शिक्षित एवं अशिक्षित, वैवाहिक स्तर- विवाहित एवं अविवाहित, श्रेणी -अनुसूची जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग, सामान्य वर्ग, आय एवं व्यय का स्तर - 0 से 1000, 1001 से 2000, 2001 से 3000, 3001 से 4000, 4001 से 5000, 5001 से 6000 इत्यादि। शोधार्थी द्वारा शोध क्षेत्र में जाकर आंकड़े एकत्रित करने के पश्चात् उनका विश्लेषण किया गया। इन खाताधारकों को विश्वास दिलाया गया कि उनकी जानकारी को पूरी तरह गोपनीय रखा जाएगा और इनका उपयोग संबंधित शोध के अलावा अन्य कहीं नहीं किया जाएगा। द्वितीयक स्रोत में शोधार्थी द्वारा विभिन्न विश्वसनीय स्रोत जैसे शोध पत्रों, पत्र-पत्रिकाएं, समाचार पत्र, छत्तीसगढ़ शासन के सांख्यिकी विभाग द्वारा प्रकाशित वार्षिक प्रकाशन की रिपोर्ट एवं भारत सरकार के वित्त मंत्रालय विभाग के प्रकाशन की रिपोर्ट इत्यादि का आंकड़े संग्रहित करने के लिए उपयोग किया गया।

आंकड़ों का विश्लेषण

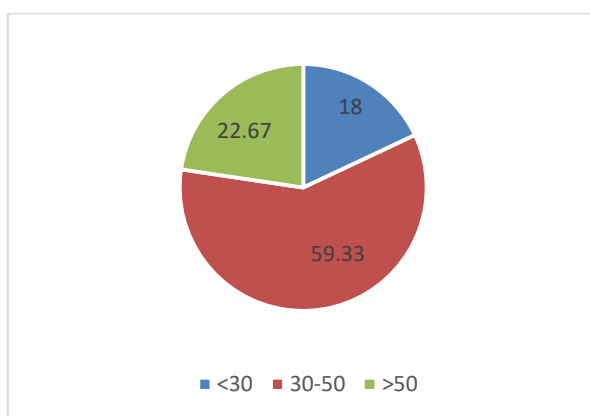
मुंगेली विकासखंड के अंतर्गत पीएमजेडीवाई में खाताधारक हितग्राहियों की व्यक्तिगत जानकारी एवं आर्थिक स्थिति में बदलाव से संबंधित आंकड़े एकत्रित करने के पश्चात् उनका विश्लेषण किया गया।

व्यक्तिगत एवं आर्थिक स्थिति में बदलाव से संबंधित आंकड़ों को हम निम्नांकित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

अ. व्यक्तिगत जानकारी

1. उम्र -

पीएमजेडीवाई योजना के अंतर्गत हितग्राहियों के उम्र के तीन समूह 30 से कम, 30 से 50 और 50 वर्ष से अधिक उम्र के समूह बनाए गए हैं। तीनों समूहों में खाताधारक हितग्राही सम्मिलित हैं, लेकिन सबसे ज्यादा हितग्राही 59.3% 30-50 आयु समूह के अंतर्गत सम्मिलित है। इन सभी आयु समूह में कुल 64% महिला हितग्राही सम्मिलित है। अतः इस विकासखंड में पीएमजेडीवाई योजना के अंतर्गत महिला हितग्राहियों की संख्या सर्वाधिक है।



चित्र क्र. 3 - खाताधारकों का उम्रवार प्रतिशत

2. पारिवारिक स्थिति -

परिवार हमारे समाज का दर्पण होता है। किसी भी स्थान की पारिवारिक स्थिति को देखकर हम समझ सकते हैं कि उस जगह के लोगों की विचारधारा सहयोगात्मक है कि नहीं। इन चयनित 150 हितग्राहियों में से 54.7% हितग्राही संयुक्त परिवार एवं 45.3% हितग्राही एकाकी परिवार से संबंधित है। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मुंगेली विकासखंड में संयुक्त परिवार के हितग्राही सर्वाधिक है और ये सभी लोग एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना रखते हैं।

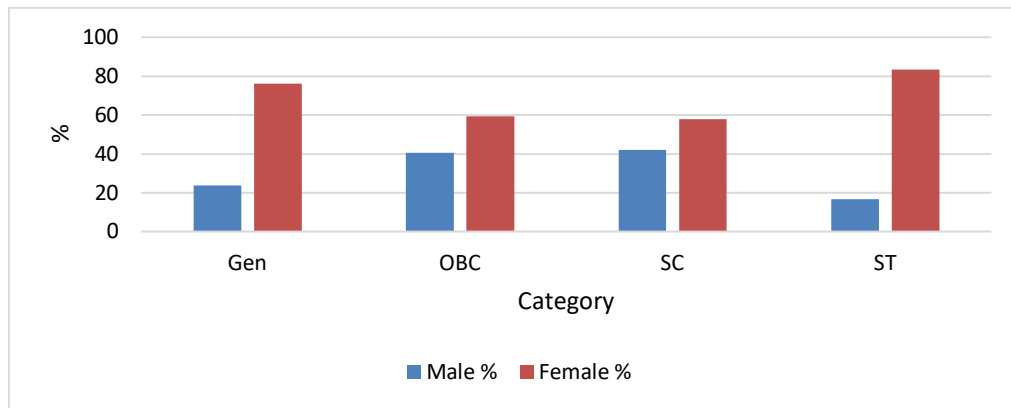
तालिका क्र. 1 - खाताधारक हितग्राहियों की व्यक्तिगत जानकारी

वर्गीकरण के आधार	वर्गीकरण	पुरुष		महिला		कुल संख्या
		संख्या	प्रतिशत (%)	संख्या	प्रतिशत (%)	
उम्र	< 30	5	18.51	22	81.48	27
	30 - 50	31	34.8	58	65.2	89
	> 50	18	52.9	16	47.1	34
पारिवारिक	संयुक्त	32	39	50	61	82

प्रकृति	एकाकी	22	32.3	46	67.7	68
जाति वर्ग	सामान्य वर्ग	5	23.8	16	76.2	21
	पिछड़ा वर्ग	22	40.7	32	59.3	54
	अनुसूचित जाति	24	42.1	33	57.9	57
	अनुसूचित जनजाति	3	16.67	15	83.33	18
वैवाहिक स्थिति	विवाहित	53	36.55	92	63.45	145
	अविवाहित	1	20	4	80	5
शैक्षणिक स्तर	शिक्षित	53	39.8	80	60.2	133
	अशिक्षित	1	5.88	16	94.12	17

3. जाति वर्ग -

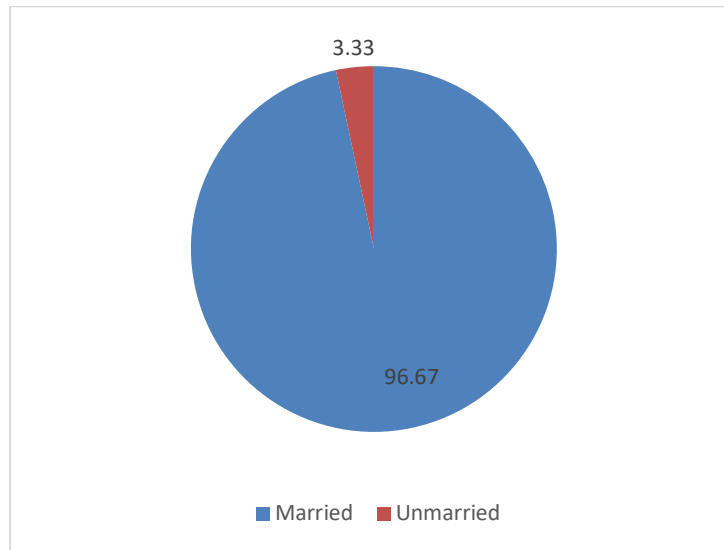
मुंगेली विकासखंड में सभी जाति वर्ग के लोग निवास करते हैं। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मुंगेली विकासखंड में पीएमजेडीवाई योजना के अंतर्गत चयनित 150 हितग्राहियों में सभी जाति वर्ग के लोग जुड़े हुए हैं। इन 150 हितग्राहियों में से 14.0%, 36.0%, 38.0%, 12% हितग्राही क्रमशः सामान्य, पिछड़ा, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के हैं। इस योजना का अनुसूचित जाति वर्ग के हितग्राही सर्वाधिक लाभ उठा रहे हैं और सबसे कम हितग्राही अनुसूचित जनजाति वर्ग के योजना से जुड़े हैं।



चित्र क्र. 4 - खाताधारकों का जातिवार प्रतिशत

4. वैवाहिक स्थिति -

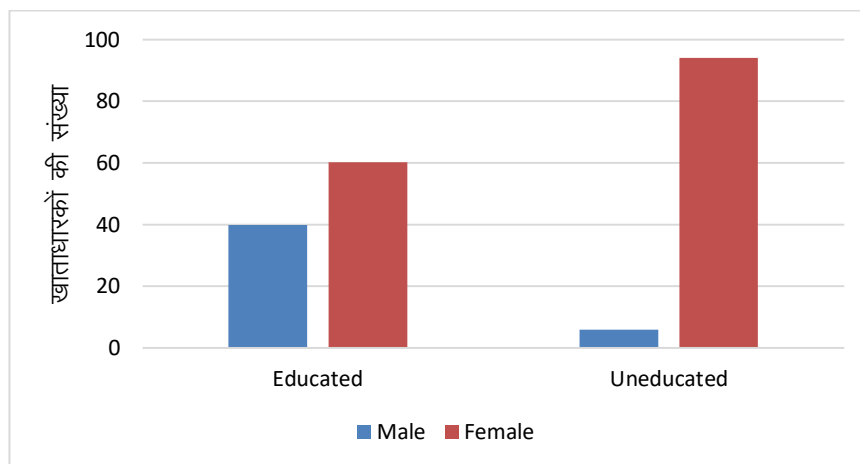
मुंगेली विकासखंड में पीएमजेडीवाई योजना के अंतर्गत चयनित 150 हितग्राहियों में से 145 हितग्राही (96.7%) विवाहित और 5 हितग्राही (3.3%) अविवाहित है। इससे स्पष्ट होता है कि विवाहित लोग पीएमजेडीवाई योजना का सर्वाधिक लाभ उठा रहे हैं।



चित्र क्र. 5 - खाताधारकों की वैवाहिक स्थिति

5. शैक्षणिक स्तर -

शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान है। शिक्षा ही व्यक्ति को समाज में सम्मान एवं पहचान दिलाती है एवं उसकी आर्थिक स्थिति को मजबूती प्रदान करती है। मुंगेली विकासखंड में पीएमजेडीवाई योजना के अंतर्गत चयनित 150 हितग्राहियों में से 88.7% हितग्राही शिक्षित और 11.3% हितग्राही अशिक्षित हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षित लोग ही ज्यादा जागरूक होते हैं और जन धन योजना से सर्वाधिक लाभान्वित हो रहे हैं।



चित्र क्र. 6 - खाताधारकों का शैक्षणिक स्तर

ब. आर्थिक स्थिति

किसी भी स्थान के लोगों की आर्थिक स्थिति से ही उनकी सामाजिक, शैक्षणिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवनशैली प्रभावित होती है। आर्थिक स्थिति को मजबूती प्रदान करने के लिए आय, व्यय एवं बचत स्तर में

बदलाव बहुत जरूरी है। मुंगेली विकासखंड में प्रधानमंत्री जनधन योजना के अंतर्गत खाता खुलवाने के बाद खाताधारकों की आर्थिक स्थिति में बदलाव के साथ-साथ बैंकिंग आदतों में भी बदलाव आया है। इस योजना के अंतर्गत खाताधारकों को सभी सरकारी योजनाओं जैसे- एलपीजी गैस सिलेंडर की सुविधा, किसान योजना, विधवा पेंशन योजना, महिला जनधन खाता योजना, प्रधानमंत्री सम्मान निधि योजना, पीएम श्रम योगी मानधन योजना इत्यादि का प्रत्यक्ष लाभ प्रदान किया जाता है। इन लाभों के साथ-साथ खाताधारकों को अन्य सुविधाएं जैसे ऋण की सुविधा, अंतरण की सुविधा, ओवरड्राफ्ट की सुविधा, रुपये डेबिट कार्ड की सुविधा, बीमा तथा पेंशन की सुविधा इत्यादि का लाभ प्रदान किया जाता है। कोरोना संकटकाल एवं लॉकडाउन के दौरान जहां लोगों को खाने के लिए मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा था, उस समय भी इस योजना के अंतर्गत खाताधारकों को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता प्रदान की गई जिससे लोगों को काफी राहत मिली।

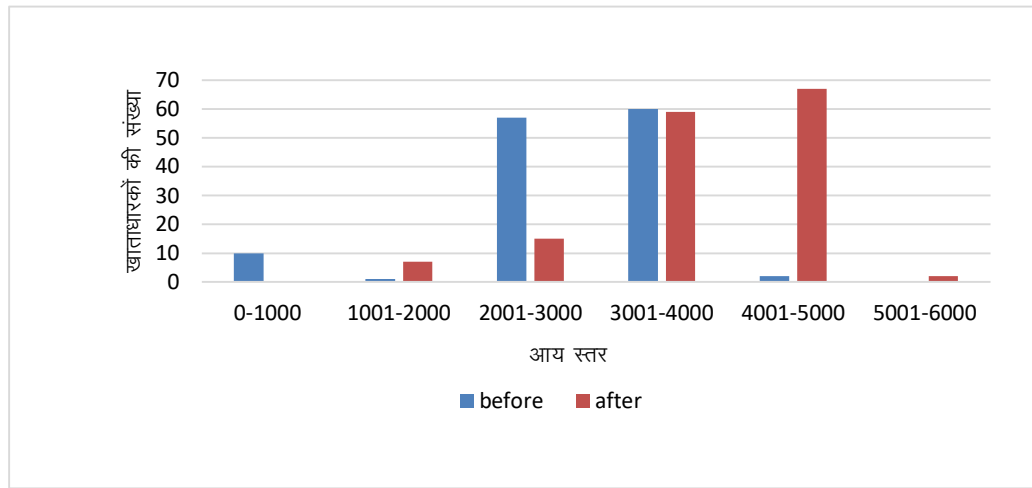
मुंगेली विकासखंड के जन धन योजना के अंतर्गत खाताधारक परिवारों की आय के स्रोत मुख्य रूप से कृषि कार्य, मजदूरी, स्वरोजगार एवं मनरेगा जैसी योजनाओं में कार्य करने से प्राप्त होती है। इन सभी कार्यों में कार्यरत परिवारों की आय बहुत ज्यादा नहीं होती, ये लोग अपने परिवार की आजीविका का पालन मुश्किल से कर पाते हैं। इस योजना के अंतर्गत खाता खुलवाने से लोगों की आर्थिक स्थिति में बहुत बदलाव आया है। ऐसे में पीएमजेडीवाई योजना इन सभी के लिए एक वरदान साबित हो रही है। खाता धारक परिवारों की आर्थिक स्थिति में बदलाव से उनकी शैक्षणिक, पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति में भी बदलाव आ रहा है। मुंगेली विकासखंड में पीएमजेडीवाई से लोगों की आर्थिक स्थिति में बदलाव को विभिन्न पहलुओं जैसे आय का स्तर, व्यय का स्तर, बचत का स्तर एवं बचत प्रतिशत इत्यादि के माध्यम से समझ सकते हैं।

1. आय का स्तर-

आय आर्थिक स्थिति का सबसे सशक्त माध्यम है। आय से ही हम लोगों के जीवन स्तर के बारे में जान सकते हैं। मुंगेली विकासखंड में पीएमजेडीवाई योजना के अंतर्गत खाताधारकों के आय स्तर के निम्न समूह बनाए गए हैं। जैसे- 0 -1000, 1001-2000, 2001-3000, 3001- 4000, 4001-5000, 5001-6000 इत्यादि। शोध अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पीएमजेडीवाई योजना में जुड़ने से पूर्व सर्वाधिक 40% हितग्राही 3001-4000 आय समूह में एवं सबसे कम 1.3% हितग्राही 4001- 5000 आय समूह में आते थे। पीएमजेडीवाई योजना में खाता खोलने के बाद हितग्राहियों के आय समूह वर्ग में बदलाव आया है। मुंगेली विकासखंड में 150 में चयनित हितग्राहियों में से सबसे ज्यादा 44.7% हितग्राही 4001- 5000 वाले आय समूह में एवं सबसे कम 1.3% हितग्राही 5001- 6000 वाले आय समूह वर्ग में सम्मिलित हुए हैं, जबकि योजना में जुड़ने से पूर्व इस आय वर्ग में कोई भी हितग्राही सम्मिलित नहीं था। इससे स्पष्ट होता है कि मुंगेली विकासखंड में पीएमजेडीवाई से लोगों के आय स्तर में बदलाव आया है और आय बढ़ने के साथ-साथ हितग्राहियों को अन्य सुविधाओं का लाभ भी मिल रहा है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही है।

तालिका क्र. 2 - पीएमजेडीवाई से आय स्तर में बदलाव

आय स्तर	योजना के पूर्व		योजना के पश्चात	
	खाताधारकों की संख्या	प्रतिशत (%)	खाताधारकों की संख्या	प्रतिशत (%)
0 - 1000	10	6.7	0	0
1001-2000	21	14	7	4.7
2001-3000	57	38	15	10
3001-4000	60	40	59	39.3
4001-5000	2	1.3	67	44.7
5001-6000	0	0	2	1.3



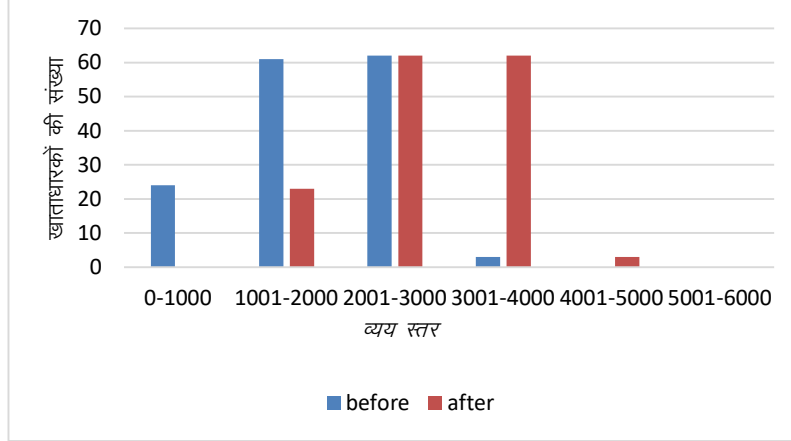
चित्र क्र. 7 - पीएमजेडीवाई में खाताधारकों के आय का स्तर

2. व्यय का स्तर

आय और व्यय दोनों ही आर्थिक स्थिति की सूचक होते हैं। मुंगेली विकासखंड में पीएमजेडीवाई से संबंधित लोगों के व्यय के स्तर में बदलाव आया है। इस शोध में पीएमजेडीवाई से संबंधित लोगों के व्यय के निम्न स्तर बनाए गए हैं जैसे- 0- 1000, 1001-2000, 2001- 3000, 3001- 4000, 4001- 5000, 5001-6000 इत्यादि। पीएमजेडीवाई में जुड़ने से पूर्व सर्वाधिक 41.3% हितग्राही 2001 -3000 वाले व्यय समूह में और सबसे कम 2% हितग्राही 3001-4000 वाले व्यय समूह में आते थे। 4001-5000 और 5001-6000 वाले व्यय समूह में कोई भी हितग्राही में सम्मिलित नहीं था। पीएमजेडीवाई में खाता खोलने के बाद से सर्वाधिक 41.3% हितग्राही 2001- 3000 एवं 3001-4000 वाले व्यय समूह में आ गए हैं। 4001-5000 वाले व्यय समूह में कोई भी हितग्राही सम्मिलित नहीं था, पीएमजेडीवाई में जुड़ने के बाद से इस समूह में भी हितग्राही सम्मिलित हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि आय स्तर में बदलाव से व्यय के स्तर में भी बदलाव आया है और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है।

तालिका क्र. 3 - पीएमजेडीवाई से व्यय स्तर में बदलाव

व्यय स्तर	योजना के पूर्व		योजना के पश्चात	
	खाताधारकों की संख्या	प्रतिशत (%)	खाताधारकों की संख्या	प्रतिशत (%)
0 - 1000	24	16	0	0
1001-2000	61	40.7	23	15.3
2001-3000	62	41.3	62	41.3
3001-4000	3	2.0	62	41.3
4001-5000	0	0	3	2.0
5001-6000	0	0	0	0



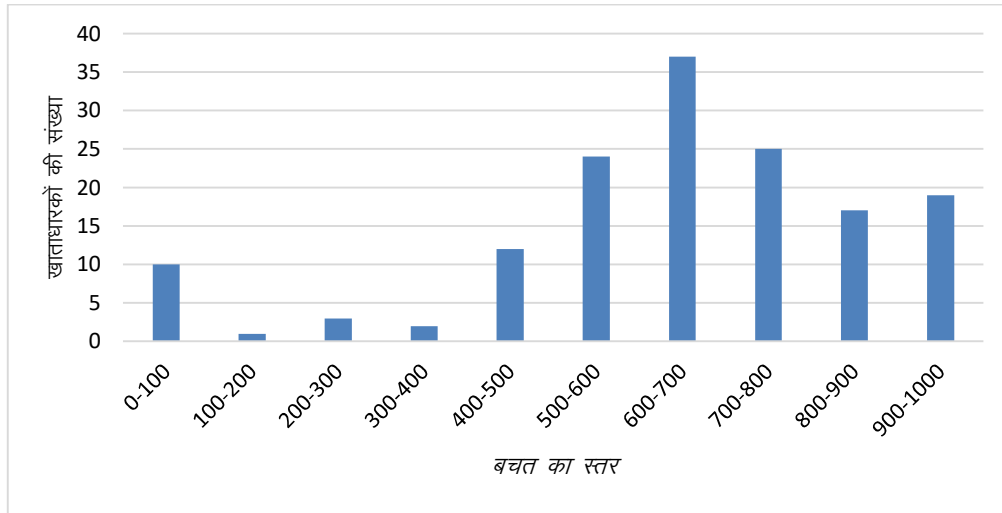
चित्र क्र. 8 - पीएमजेडीवाई से व्यय स्तर में बदलाव

3. बचत का स्तर -

बचत का अर्थ आय का व्यय से अधिक होना। बचत को किसी भी स्थान या देश की आर्थिक प्रगति का सूचक माना जाता है। पीएमजेडीवाई बैंकिंग आदतों को बढ़ावा देने की प्रक्रिया में एक अच्छा प्रयास है। पीएमजेडीवाई के अंतर्गत बैंक में खाता खोलने से लोग बचत का प्रयास करने लगे हैं। मुंगेली विकासखंड में शोधार्थी द्वारा शोध के दौरान लोगों का कहना था कि इस योजना में जुड़ने से पूर्व हमें बिल्कुल भी बचत नहीं होती थी। योजना में जुड़ने के बाद आय में ज्यादा अंतर नहीं आया लेकिन सभी सरकारी योजनाओं का लाभ सबसे पहले पीएमजेडीवाई खाताधारकों को मिलने और अन्य सुविधाओं एवं बीमा सुविधाओं का लाभ मिलने से हमारी आय का कुछ भाग बचने लगा है। इस विकासखंड में पीएमजेडीवाई से जुड़े लोगों के बचत के निम्न स्तर बनाए गए हैं, जैसे 0 - 100, 100 - 200, 200- 300, 300 - 400, 400 - 500, 500 - 600, 600 - 700, 700 - 800, 800 - 900, 900 - 1000 इत्यादि, पीएमजेडीवाई योजना के अंतर्गत सभी बचत स्तर में हितग्राही सम्मिलित हैं। सबसे ज्यादा हितग्राही 600 - 700 वाले बचत स्तर के समूह में और सबसे कम हितग्राही 100 - 200 वाले बचत स्तर समूह में हैं। इस योजना के अंतर्गत खाता खुलवाने से लोगों की बचत पहले की तुलना में कुछ तो बड़ी है और उन सभी खाताधारकों की आर्थिक स्थिति में भी बदलाव हो रहा है।

तालिका क्र. 4 - पीएमजेडीवाई से बचत स्तर में बदलाव

बचत स्तर	योजना के पश्चात	
	खाताधारकों की संख्या	प्रतिशत (%)
0 - 100	10	6.7
100-200	1	0.7
200-300	3	2.0
300-400	2	1.3
400-500	12	8.0
500-600	24	16.0
600-700	37	24.7
700-800	25	16.7
800-900	17	11.3
900-1000	19	12.7



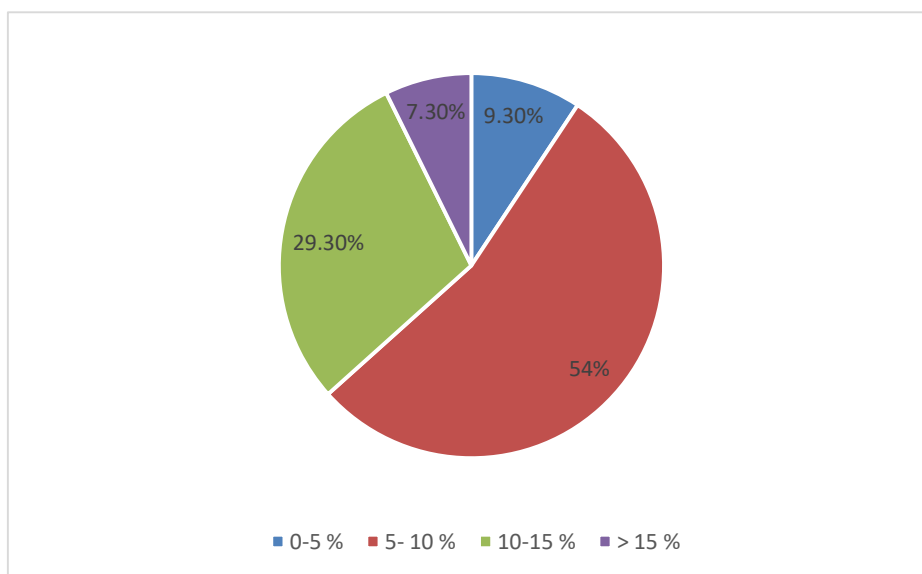
चित्र क्र. 9 - पीएमजेडीवाई में खाताधारकों की बचत का स्तर

4. बचत प्रतिशत में वृद्धि -

पीएमजेडीवाई में जुड़ने के पश्चात लोगों के बचत करने की आदतों में बढ़ोत्तरी से बचत प्रतिशत में भी वृद्धि हुई है। पीएमजेडीवाई में खाताधारकों के बचत प्रतिशत वृद्धि के निम्न वर्ग बनाए गए हैं, जैसे 0- 5%, 5%-10%, 10% -15%, 15% से अधिक इत्यादि। मुंगेली विकासखंड में शोध के दौरान अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि सबसे ज्यादा हितग्राही 5% -10% वाले समूह में हैं।

तालिका क्र. 5 - बचत प्रतिशत

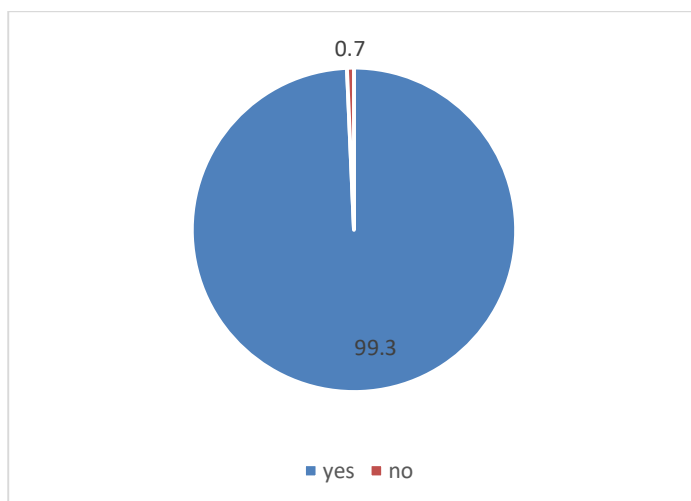
बचत का प्रतिशत	योजना के पश्चात	
	खाताधारकों की संख्या	खाताधारकों की संख्या
0 - 5%	14	9.3
5 - 10%	81	54.0
10 - 15%	44	29.3
> 15%	11	7.3



चित्र क्र. 10 - बचत का प्रतिशत में बदलाव

5. खाताधारकों की आर्थिक स्थिति में सुधार (बदलाव) -

आर्थिक स्थिति किसी देश के विकास की दिशा निर्धारित करती है। यदि लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है तो वो देश खुशहाली की तरफ एक कदम आगे बढ़ा रहा होता है। केंद्र सरकार द्वारा प्रारंभ की गई पीएमजेडीवाई योजना एक ऐसी ही योजना है जो लोगों की गरीबी दूर करने के साथ-साथ उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूती प्रदान करती है। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि 150 हितग्राहियों में से 149 हितग्राही इस योजना से संतुष्ट थे और उनका कहना था कि यह योजना हमारे लिए वरदान साबित हो रही है। इस योजना के तहत खाता खोलने के लिए हमें कोई रकम जमा नहीं करनी पड़ती। खाता खोलने के 6 माह के बाद ₹10,000 तक की ओवरड्राफ्ट सुविधा के साथ खाताधारक को ₹2,00,000 तक की दुर्घटना बीमा की सुविधा इत्यादि प्रदान की जाती है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि इस विकासखंड के हितग्राहियों को इस योजना के अंतर्गत खाता खुलवाने से उनकी आर्थिक स्थिति में बदलाव आया है।



चित्र क्र. 11 - पीएमजेडीवाई से आर्थिक स्थिति में सुधार

निष्कर्ष

इस शोध के निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण परिवारों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने में पीएमजेडीवाई योजना मददगार साबित हो रही है। औपचारिक बैंकिंग संस्थानों के साथ इन अनौपचारिक क्षेत्र के लोगों में पीएमजेडीवाई योजना जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण कदम उठा रही है। ग्रामीण क्षेत्र के लोगों में वित्तीय जागरूकता फैलाने के लिए बैंक और नीति निर्माताओं को एकजुट होकर काम करना चाहिए। वित्तीय जागरूकता (समावेशन) फैलाने में बैंकों के प्रयास में ज्यादा बढ़त नहीं देखी गई है। इस योजना से ज्यादा लोगों को जोड़ने एवं लाभान्वित करने के लिए निम्नलिखित सुझावों की ओर ध्यान आकर्षित करना होगा जिससे पीएमजेडीवाई योजना अधिक तेजी से विकास कर सके।

1. बैंकों को, नीति निर्माताओं और सरकार को वित्तीय जागरूकता फैलाने के लिए राजी करना चाहिए, क्योंकि इनके प्रयासों का सीधा प्रभाव इन लोगों के आर्थिक और सामाजिक जीवन पर पड़ेगा।
2. बैंकों को भी वित्तीय जानकारी के प्रसार में अधिक रुचि लेनी चाहिए, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग क्षेत्र का प्रचार प्रसार होगा और कम आय वाले लोग इस योजना से जुड़ कर योजना से मिलने वाले लाभों का ज्यादा फायदा उठा सकें। अन्य सभी सरकारी योजनाओं के लाभों का फायदा सर्वप्रथम पीएमजेडीवाई खाताधारक को ही प्राप्त होता है। इस तरह ज्यादा से ज्यादा लोग पीएमजेडीवाई योजना से जुड़े और अन्य सभी सरकारी योजनाओं के लाभों को उठा सके, जिससे खाताधारकों की आर्थिक स्थिति में बदलाव आएगा और इन लोगों की संतुष्टि का स्तर भी बढ़ेगा।

सन्दर्भ :-

1. बागली, एस. (2012). अ स्टडी ऑफ फाइनेंसियल इन्क्लूजन इन इंडिया, रेडिक्स इंटरनेशनल जर्नल आफ इकोनॉमिक्स एंड बिजनेस मैनेजमेंट, वॉल्यूम I, नंबर 8
2. शर्मा, डॉ अनुपम एंड कुकुरेजा, मिस सुष्मिता. (2013). ऐन एनालिटिकल स्टडी ऑफ फाइनेंसियल इन्क्लूजन फॉर डेवलपिंग नेशंस, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग एंड साइंस, पृ. 15-20.
3. कुमार, दिव्येश एवं वेंकटेशा, एच. आर. (2014). फाइनेंसियल इन्क्लूजन यूजिंग प्रधानमंत्री जनधन योजना कंसोल स्टडी, एशिया पेसिफिक जर्नल ऑफ रिसर्च, वॉल्यूम I पृ. 37-42.
4. परमासिवन, सी. एंड कामराज, आर. (2015). इन्क्लूसिव बैंकिंग थ्रू प्रधानमंत्री जनधन योजना विद रिस्पेक्ट टो रीजनल रूरल बैंक्स. रिसर्च एक्सप्लोरर, वॉल्यूम IV नंबर 11 पृ. 74-78.
5. जोशी, मुर्नल चेतन भाई एवं राजपुरोहित, विक्रम सिंह. (2016). अवेयरनेस ऑफ फाइनेंसियल इन्क्लूजन एंड मेडिकल स्टडी, रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल आफ मल्टीडिसीप्लिनरी, वॉल्यूम I नंबर 6, पृ. 1-6.
6. <https://revenue.cg.nic.in>
7. <https://desacg.gov.in>
8. <https://shodhganga.inflibnet.ac.in>

ढोलकी*

डॉ. अनवर अहमद सिद्दीकी†

अनुवादक : हिंदी से मराठी अनुवाद

dranwarsiddiqui@gmail.com

भजन मंडळी भक्तिरसात मग्न झाली आहे। ढोलकीची थाप आणि मंजिन्याची झंकारातून भजन गाणाऱ्या महिलांचे देह कंपित लहरत आहे। त्या एक एक करीत नृत्यासाठी उठत आहे। मीना पण नृत्यासाठी उठते। तिची संगमरमरी देह ढोलकीच्या थाप वर थरकाप होऊन नागीण सारखी लहरत आहे। मीना उठताच ढोलकीचा उत्साह आणखी वाढून जात होता, तो तल्लीन होऊन वाजवत होता। मीनाच्या लचकत्या कंबरे सोबत ढोलकीचे बोट पण ढोलकीवर लचकत होते। नृत्य मीना करत होती पण ढोलकी मदहोश होत होता। भजन मंडळी सोबत जुळून ढोलकीचे जगच बदलून गेले। ‘ढोलकी’! होय, भजन गाणाऱ्या महिला त्याला ढोलकी या नावानेच नेहमी हाक मारत होत्या। शेवटी हेच नाव त्याचे आता झाले होते।

आई ने त्याचे ‘चेतन’ हे नाव मोठ्या प्रेमाने ठेवले होते, पण नंतर त्याच नावावर ती चिडत होती। कारण दिवसभर तो रिकामा पडून राहायचा। चेतनेची कोणतीच किरण त्याच्या मध्ये दिसत नव्हती। न कोणत्या नौकरी वर तो टिकत होता, न कोणत्या धंद्या पाण्यामध्ये तो टिकत होता। आई घरोघरी फिरून भांडे घासायची, झाडू, पोछा करून कमवत होती, आणि हाच दोघांचा आधार होता।

आई चे कटकटनारे गुडघे आता आराम मागत होते। मुलाच्या जन्म घेण्यापासून मोठे होई पर्यंत जे काही स्वप्न बघितले होते ते सगळे धूसर झाले होते। राहिली फक्त एक हताशा, आणि याच हताशेच्या वेळेत उजेडा मध्ये तिला अंधारच दिसत होता। पण चेतन ज्या शून्यतेत राहत होता, त्यामध्ये त्याला आईच्या इच्छा दिसत नव्हत्या, आणि नाही त्याला समोर असलेल्या अडचणी दिसत होत्या। आई स्वताला समजवत म्हणते – ‘आपण मेल्यावर स्वर्ग पाहू विद्या, झटत राहू वेदनेचे घोट पीत-पीत, आणि दुःखाचे तुकडे खात-खाता।’

त्यादिवशी संध्याकाळच्या सुरवातीला आईच्या मनात अंधार दाटून आला होता। पूर्ण महिन्याच्या किराण्याचे पैसे आईने चेतनच्या हातात दिले होते। तो जेव्हा परत आला तेव्हा हातात ढोलक आणि खाली थैला होता। हे बघून आईचा धीर सुटला आणि चेतन ढोलक वाजवायला बसला। आईच्या शिव्या

* मूल कृति : आशा पाण्डेय* (हिंदी कहानी)

† संयोजक : अनुवाद पाठ्यक्रम, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

ढोलकीच्या आवाजात दबून गेल्या होत्या। आवाज नाही दबला तरी चेतन ला काही फरक पडत नव्हता। जसे त्याला आईच्या शिव्यांची सवयच झाली होती। घरी ढोलक येताच चेतन चे भाग्य जागले होते। आईच्या शिव्यांनी आणि ढोलकीच्या आवाजाने सुनिता तार्ईला त्याच्या घरी यावे लागले।

‘कोणावर रागवत आहात काकू?... आणि हा ढोलक कोण वाजवत आहे?’ चेतनच्या घरी शिरताच सुनिता ने असा आवाज दिला। सुनीताचा आवाज एकूण तासाभरापासून रागवत असलेली आईचा आवाज पुन्हा आणखी वाढला। ‘काय सांगू पोरी तुला, असा नालायक मुलगा जन्माला आला की या म्हातारपणात सुद्धा मला काम करावे लागत आहे। येणाऱ्या दिवाळीत याला अठठ्वीस वर्ष पूर्ण होईल, पण अजून पर्यंत याला जबाबदारी समजत नाही। आणि ढोलक वाजवण्याचा एक नवा छंदच याला लागला आहे। काय माहित कोठून शिकला आणि ढोलक पण विकत घेऊन आला... पैसे दिले होते त्याला किराना आणायला आणि हा लेकाचा बेशरम! ढोलक घेऊन आला। आता महिनाभर स्वयंपाक कसा बनवू? स्वतः काय खाऊ आणि याला काय खाऊ घालू?’ ‘वाजवत तर खूपच चांगला आहे, आईचा रागावण्याचा आवाजाकडे कडे दुर्लक्ष करीत सुनिता मागच्या खोलीतून येत असणाऱ्या आवाजात दंग झाली। ‘हो’, आता तुम्ही लोक गाणे म्हणणारे आणि वाजवणारे आहात, तुम्हाला तर चांगलच वाटणार आहे, पण माझा तर जीव जळत आहे या आवाजामुळे... या हरामखोराला नाही खाण्याची आणि नाही कमवण्याची चिंता आहे। ठेकेदारकडे मी मोठ्या विनंती ने याला दोन दिवसाचे काम मिळून दिले, पण हा पट्टा तिथे गेलाच नाही... दुसऱ्यांच्या घरी भांडे घासू-घासू माझी हाडं झिजून गेली पण याला अजून पर्यंत काही समज नाही आली, आणि नाही काही दिसत याला जेवला की पसरला पलंगावर झोपायला। आणि आता ढम-ढम ढोल वाजवत आवाज सुरु केला माझ्या डोक्यावर। आई आपल्या वेदनेत मनातल्या-मनात विहळत होती।

‘काकू तुम्हाला जर वाईट वाटणार नाही तर एक गोष्ट आहे सांगू’। बाजूच्या बाजीवर बसत सुनिता ने आपले बोलणे सुरु केले।

‘बोल बेटा त्यात वाईट काय लागणार?’

आमच्या भजन मंडळी मध्ये ढोलक वाजवणारा कोणीही नाही। काय हा आमच्या मंडळीत ढोलक वाजवणार?... त्यातून याला काही न काही पैसे पण मिळेल काकू।’

‘पैसे कमावण्याचे याला सांगू नको, कमवण्याची याला चीढ आहे। वाटल्यास फालतुचे सगळे काम करणार, पण पैसे कमवणार नाही’। आई आता पण रागातच होती। ‘एक्कावन रुपये आणि नारळ तर पक्के समजू काकू, तुम्ही तर बघतच आहे आमच्या मंडळीला प्रत्येक दिवशी कोठे नं कोठे बोलवल्या जाते। नवरात्र आणि गणेश चतुर्थी इत्यादी उत्सवामध्ये एकाच दिवशी दोन-दोन, तीन-तीन जागी सारखे जावेच लागते... जर हा आमच्या मंडळी सोबत जुळला तर आमचे पण काम होणार आणि हा पैसे कमावू शकेल। सगळ्यात मोठी बाब म्हणजे हा आपल्या मनाचे आणि आवडीचे काम करू शकणारा। ‘तूच म्हण त्याला, मी तर शपथ घेतली

आहे, की याला मी आता कोणतेच काम सांगणार नाही। आणि पैसे तर कमवण्याला अजिबात सांगणार नाही...काय फायदा बोलण्याचा अरे हा तर एका कानाने ऐकतो आणि दुसऱ्या कानाने सोडून देतो।' आईच्या आवाजात सारखा राग दिसत होता।

सुनिता मागच्या खोलीत जाते, जिथे चेतन ढोलक वाजवत आहे। चेतन आपल्या वाजवण्याच्या धुंदीत आहे, त्याला सुनिताच्या येण्याची काही कल्पना नसते। सुनिता चेतन ला आवाज देते, पण त्याला आवाज मुळीच ऐकू येत नाही। चेतन एकसारखा ढोलकीचे तालावर-ताल बदलवत आहे। तेव्हा सुनिता चेतन चे डोके पकडून हलवते तेव्हा त्याची ढोलक वाजवण्याची तंद्री तुटते आणि मग तो दचकून विचारतो 'केव्हा आली सुनिता ताई?' 'आली तर मी आत्ताच, तुला आवाज पण दिला, पण तू रमला आहे ढोलक मध्ये...चांगला वाजवतो आहे।' सुनिताच्या कौतुकाने चेतन थोडा लाजायला लागला।

'मग सांग चेतन, 'सुनिता ने त्याला ढोलकी बदल विचारलं- 'जर तुला ढोलकीचे काम मिळाले तर तू करणार?'

'कुठे ग ताई, अग मला ढोलकी वाजवण्याचे काम कोण देणार।' चेतनच्या आवाजात निराशा होती। 'अरे तू हो तर म्हण, काम चालून तुझ्याजवळ येईल... चेतन आमची भजन मंडळी तुझी वाट बघत आहे, मग वाजवशील भजन मंडळीत ढोल?' बिलकुल ताई।' चेतन आता आनंदी होता। ढोलक खरेदी करताच त्याला काम मिळाले होते। दुसऱ्या दिवशी पासून तो सुनिता सोबत भजन मंडळीत जाऊ लागला। या कामामुळे चेतन ला समजले की तो ढोलक वाजवण्यासाठीच बनलेला आहे। त्याची आई त्याला समजत नव्हती त्याच्यावर सारखी रागवत होती। आता चेतन पण सर्वांना दाखवू शकतो की तो मन लाऊन ढोलक वाजवू शकतो। आणि रिकामा नाही तर तो एक ढोलक विशारद आहे, ज्यांनी त्याला बेकार समजून त्याला झटकून दिले होते, आता तेच सगळे त्याच्याकडे आकर्षित होईल। त्यादिवशी पासून तर आता पर्यंत दोन वर्ष होऊन गेले चेतन भजन मंडळी सोबत ढोलक वाजवत आहे। शंभर – पन्नास रुपये घरी आणू लागला आहे। आता त्याची आई पण आनंदी राहू लागली होती। आई-लेकराच्या संसाराची गाडी आता सुरळीत चालू होती।

मंडळीतील सगळ्यां महिला चेतन ला आपला छोटा भाऊ मानत होत्या। तो पण सर्वांना ताई म्हणत होता। भजन मंडळीतील महिला चेतन समोर वेगवेगळ्या प्रकारे हशा, मस्करी, मजाक करायचा कधी-कधी खूपच हशा व्हायच्या। सुरवातीला चेतन संकोच करायचा पण तो ही आता हशा, मस्करी, मजाक मध्ये सामील होत होता आणि जर मीना मस्करी, हशा करत असल्यास तर त्याचा चेहरा अगदी चमकून जात आणि सर्वांग त्याचे पुलकित, उत्साहित होत होते। जरी त्याचा हशा झाला असला तरी, मीना अशीच हसत राहावी असे त्याला वाटायचे। मीना ला नवऱ्याने सोडले होते। पण बिचारी मीना ला आईकडे राहावे लागत होते। किती नालायक असेल तो नवरा की ज्याला हिऱ्याची कदर करता आली नाही। मीना चेतन ला हिराच वाटत होती।

मीनाला पण चेतन वर मोठा विश्वास होता। जेव्हा कोणाकडे संध्याकाळी भजन असायचे तेव्हा ते संपायला रात्र व्हायची। भजन मंडळी मधील महिला एका कॉलनीतील असल्यामुळे सहज जात होत्या। पण

मीना दुसऱ्या कॉलनी मध्ये तिचे घर होते, म्हणून घर दूर असल्यामुळे चेतन तिला घरा पर्यंत सोडत होता। चेतनच्या सायकलवर बसलेली मीना तिच्या मोहक सुगंधाने चेतन ला भिजवून टाकत होती। मीनाचा स्पर्श चेतन ला आभासी कल्पनेत नेत होता। तेव्हा त्याचा तो सुंदर क्षण असायचा। चेतनचे त्यावेळी पौरुषत्व जगायचे पण त्याचे मन त्याला अंकुश लावून शांत करत असे।

चेतनला त्याच्या मित्राने सांगितलेली बाब आठवली की मुर्लीना मागे सायकलवर बसवल्यावर एका झटक्यात ब्रेक दाबल्यास ती पूर्ण आपल्या अंगावर चिपकून स्पर्श करते – तेव्हा शरीरामध्ये एक लहर निर्माण होते। पण चेतन या टवाळकिच्या किंवा वाईट विचारला झटकून देतो। मीना या कृत्यावर वर काय विचार करणार? जर तिच्या नजरेत आपण पडलो तर! डुबून मरण्याची वेळ येईल। किती विश्वास आहे सर्वांचा तिच्यावर, आणि मीना तर डोळे बंद करून त्याच्यावर विश्वास करते। मंडळीतील दुसऱ्या महिला टिंगल उडवतात की खरा भाऊ हा तर मीनाचाच आहे, आम्हाला तर ताई हा असाच म्हणतो। पण काही दिवसापासून स्थिती बदललेली आहे। मंडळी मध्ये मीना आधी पेक्षा थोडी असहज राहू लागली होती। मीनाला वाटते की जेव्हा ती नाचायला उठते तेव्हा ढोलकी हा विचित्र नजरेने तिला सारखा बघत असतो। मीना ने आपल्या मनातील बाब सुनिताला पण सांगितली आहे। आज पण तेच झालं, मीना उठताच ढोलकीची बोट चपळ झाली। तो नाचू-नाचू ढोलक वाजवू लागला। मीना नृत्य आणि गाण्यामध्ये मग्न होती। नृत्य करण्याच्या तालात मीनाचे हात वर झाले तेव्हा मीनाचा पदर पण वर गेला तेव्हा मीनाची नजर अकस्मात ढोलकीच्या नजरेला भिडली। ढोलकी मीनालाच एकसारखा बघत होता। मीना थोडी असहज झाली, आणि एका झटक्यात खाली बसली। ढोलकी थबकला, ढोलकीचा नाद थोडा कमी होत गेला। पण बाकी महिला सारखी नृत्य करित होती, त्यामुळे त्याने ढोलकी वाजवणे सुरु ठेवले, पण ढोलकीची नाद सुस्त झाला होता। मीना चे असे अचानक बसताच भजन गाणारी महिला मंडळी मीनाकडे प्रश्नात्मक नजरेने बघू लागली। मीना खूप रागात होती। भजन संपताच आज पुन्हा मीनाने सुनिता कडे तक्रार केली – ‘ताई, या ढोलकीला बदलवा किंवा मला।’

‘काय झालं?... पुन्हा तुला काही वाटलं?’

‘तुला नाही दिसत, ताई?... कसा माझ्याकडे नाचतांनी एकसारखा टक-टक बघत असतो?’

‘असे काही नाही आहे मीना। तो खूप सरळ मुलगा आहे... तू जास्तच त्याच्याबद्दल विचार करते। मी तुला किती वेळा सांगून चुकली आहे... कि तू खूप सुंदर नाचते मीना, त्यामुळे तो त्यावर चांगला ताल देतो... आणि तो आनंदाने आणि मोठ्या आतुरतेने तुला बघतो... मीना तू घरी जाऊन आराम कर आणि ही बाब अगदी मनातून काढून टाक।’

‘नाही ताई, तू नेहमी अशीच म्हणते, पण आता नाही... मी नाही आता येऊ शकणार।’

‘अरे नाही, मीना अशी नको बोलू... तू जरूर येणार। मी त्याला पण काही म्हणू नाही शकत मीना, अरे तो माझा शेजारी आहे। लहानपणापासून मी त्याला ओळखतो, काय म्हणून त्याला मंडळीतून काढू! चेतन

गरीब आहे, घरी पडून असायचा... जेव्हा पासून मंडळीत येत आहे त्याची काहीतरी कमाई होत आहे। यामुळे त्याच्या मनात आणि घरी आनंद पसरलेला आहे, मीना।’

‘तुम्हाला काय करायचे आहे, तुम्ही बघा ताई,। तशी पण मी एक आठवड्यासाठी बाहेर जात आहे, वापस आल्यावर बघू।’ मीनाच्या दोन्ही बाजूच्या उत्तराने सुनिता स्वतः संभ्रमात होती।

आठवड्याभर नंतर मीना वापस आली आहे। ट्रेन दीड तास लेट झाली होती। रात्रीचे साडे अकरा वाजले होते। बाहेर एकही रिक्शा नव्हता, तसे तर मीनाचे घर स्टेशन पासून दोनच किलोमीटर दूर आहे, पण इतक्या रात्रीला! एकटी! पायदळ ती कशी जाणार!!

एका हातात सामान उचलून ती स्टेशनच्या बाहेर निघाली। रस्ता सुनसान आहे, कोणत्याच महिला चालणाऱ्या रस्त्यावर दिसत नव्हत्या, पण रस्त्यावर काही माणसे जरूर चालताना दिसत होती। एकट-दुकट स्कूटर, मोटर सायकल, कारा पण बाजूने चालत होत्या। पायदळ चालणाऱ्या पैकी एखादी दारू पिवून असणारी व्यक्ति पण दिसत होती। मीना आतल्या-आतून घाबरत समोर चालत होती। समोरील वळणावर काही मानसं उभी होती। मीना ने आपले पाय जलद गतीने चालण्यास सुरु केलो ती लवकरात-लवकर तिथून निघून जाण्याचा प्रयत्न करत होती। तर मागून आवाज आली- ‘मीना ताई’,

मीना आवाजाला ऐकून घाबरत, मागे बघते... अरे, ढोलकी तू! इथे!!

मीना त्याच्याकडे लक्ष न देता समोर चालू लागली। पण ढोलकी ने तिला मोठ्या आग्रहाने थांबवले। मीना थांबली, ढोलकी त्याच्या जवळ आला, ‘ताई, आज ऑटोवाल्यांची स्ट्राइक आहे। चाल मी चालतो तुझ्यासोबत।’ ढोलकी सोबत त्याचा एक मित्र पण आलेला होता। ‘नाही ढोलकी, -मीना आतल्या- आतून घाबरून गेली होती- याची नजर तर पहिले पासूनच वार्ड आहे... याच्या सोबत जाने म्हणजे संकटाला निमंत्रण देणे आहे। मीना पूर्ण प्रयत्न करून ढोलकीला नाही म्हणते, पण ढोलकी ही पूर्ण आग्रहाने तिला म्हणतो- ‘इतक्या रात्री एकटी कशी जाशील ताई, मी येतो तुझ्या सोबत।’ मीना मनातल्या-मनात राग पकडते। -आपली वार्ड नियत लपवण्यासाठी हा ताई म्हणत असेल... धूर्त कुठला। मीना पुन्हा नाही म्हणते तरी ढोलकी ऐकाला तयार नाही आणि तिच्या सोबत चालू लागतो। मीना आता सतर्क झालेली असते। ढोलकी आणि त्याचा मित्र शांतपणे समोर-समोर चालत असते। मीना पूर्णपणे सतर्कता बाळगून दोघांच्या मागे पळता येईल अशी सुरक्षित अंतर बघून चालत होती। तिच्या डोक्यात वेगवेगळ्या शंका-कुशंका घर करत होत्या। जर ढोलकी मागे पलटला तर! मागच्या बाजूने पलटून लगेच पळावे लागेल... आणि या क्षणी या जागी पलटला तर! या गल्लीमध्ये घुसून जाईल। हे दोघे आहे, आणि मी एकटी। किती पळणार! कशी पळणार!... रोडवर काही दूर पर्यंत लाईट सुद्धा नाही आहे, अंधार आहे। मीनाचे हृदय थक्क झाले- दोघांनी इथे काही केले तर! इथून काही दूर पर्यंत वस्ती पण दिसत नाही आहे... ओरडल्यावर पण कोणी इथे ऐकणार नाही... सामान फेकून दोघांवर झपटून जावून पडेल... शेवटच्या क्षणा पर्यंत झुंज देईल, - शक्य असणाऱ्या प्रत्येक संकटाला समोर

जाण्यासाठी ती स्वतःला तयार करत दोघांच्या मागे-मागे चालत आपल्या घरा पर्यंत येवून पोहचली, तेव्हा तिचा अटकलेला श्वास सुटला।

ढोलकी तिला पोहचवून, एकही क्षणाचा विलंब न करता तेथून पलटून निघून गेला। आता पर्यंत ढोलकीला घाबरलेली मीना आपल्या घरा समोर पोहचून मोकळा श्वास घेते, की अचानक तिचे लक्ष ढोलकीच्या आजच्या व्यवहारावर जाते- अरे, हे काय! आज ढोलकी नेहमी सारखा काहीच बोलला नाही- न काही हालचाल विचारले, न काही हशा, मजाक! घरा पर्यंत पोहचवले आणि न बोलता लगेच पलटून गेला! जेव्हा पर्यंत ती स्वतःला सांभाळत, त्याच्याशी काही बोलत, तो खूप दूर पर्यंत निघून गेला होता। मीना एकदम स्तब्ध झाली होती। तर काय, सुनिता ताई ने त्याला सगळे सांगितले असेल! म्हटले तर मिनाचेच होते, पण त्याला सांगण्यासाठी नाही तर त्याला हटवण्यासाठी... सुनिता ताईने त्याला हटवले तर नसेल न! तिच्या मनात एक शल्य उभरून आले...! मीनाला तर हेच पाहिजे होते। पण आज मीनाचे विचार त्याच्या बाबतीत बदलले होते। ती प्रार्थना करत होती की- परमेश्वरा असे नको होवू देवू। इतके वाईट त्याला का समजले मी! सुनिता ताई मला किती समजावत होती, त्यांचेही तिने ऐकले नव्हते, त्यामुळे ती उदयाला त्यांची माफी मागणार।

ढोलकी गेल्यानंतर मीना घरामध्ये आली, तिने हात-पाय धुतले, आणि पाणी पिऊन आई सोबत जेवण झाल्यावर गादीवर येवून लेटली। तेव्हा तिला पुन्हा-पुन्हा ढोलकीची आठवण येत होती। कसा परत गेला लवकरच! आईला न भेटताच! पहिले तो मला न सांगताच घरी यायचा आणि तासन-तास एकसारखा गप्पा मारत बसत होता। तो घरून कधी न खाता न पिता कधीच गेला नाही!! पण आज... त्याला किती घाई होती! एकसारखी विचार करत रात्री वेळे पर्यंत मीना झोपू शकली नाही।

दुपारचा वेळ होता, पाऊस येऊन गेला। वातावरणामध्ये थोडीशी गर्मी आहे, जे आळसाला वाढवत आहे, पण भजन मंडळी यापासून दूर, अलिप्त आपल्या पूर्ण उत्साहामध्ये देवीचे भजन गाण्यात मग्न होती। त्यामध्ये बसलेली मीना फक्त नाम मात्र भजनाला साथ देत होती। येताच तिला झटका लागला होता- ढोलकीच्या जागी दुसरा ढोलक वाजवणारा! बहुतेक सुनिता ताई ने तर त्याला हटवलं असेल ! मीनाला पण हेच पाहिजे होते, मग का? बर मीनाच्या मनात शल्य रुतत होत! का बर तिचे मन सुनिता ताईला गळा लागून रडून घे म्हणत होते, म्हणावे की ढोलकीला वापस घेऊन ये।

भजन मंडळीतील महिला नृत्य करण्यासाठी उठली तेव्हा मिनाचा ही हात पकडून तिला ओढत घेऊन गेली। मीना नाचत आहे, पण ढोलकीच्या तालावर नाही तिचे पाय उचलत आहे आणि नाही तिची कंबर पहिल्यासारखी तालावर लहरत आहे। फक्त निर्जीव असल्याप्रमाणे ती हात-पाय हलवत आहे। मन तिचे खूप उदास आहे, आणि ढोलक वाजवणारा पूर्ण तालात आहे। पण मीना त्याच्याकडे बघताच मीनाच्या मनामध्ये खोल उदासीनता भरलेली आहे, आणि ती एका झटक्यात खाली बसून जाते।

संग्रहकर्ता : शुभम अशोक उमाटे

**INTERPRETING ECONOMIC PHILOSOPHY OF PANDIT
DEEN DAYAL UPPADHYAY IN NATIONALIST DISCOURSE:
AN ESSAY IN GANDHIAN ANALYTICAL FRAMEWORK**

Mr. Ram Prakash Dixit*
rpdixitranu@gmail.com

Dr. Pallavi Sharma†
pallavisharma9721@gmail.com

Dr. Vijay Srivastava‡
vijaygunjan1986@gmail.com

ABSTRACT:

The propagator of idea of economic nationalism and integral humanism, Pandit Deen Dayal Upadhyay had greater vision towards economic development of country. His economic ideas move around the Gandhian socialistic philosophy but he hold some reservations towards its applicability. He discussed about decentralization, swadeshi, gramodaya, antyodaya, and integral humanism. His economic vision revolves around the basic themes of harmony, primacy of cultural-national values and discipline. According to Deendayalji, the primary concern in India must be to develop an indigenous economic model that puts the human being at center-stage. Integral Humanism is an alternative to both western capitalist individualism and Marxist Socialism. This paper dealt with economic vision of Pandit ji in nationalist discourse. . This paper tries to explore the economic thoughts of Pandit Deen Dayal Upadhyay in interdisciplinary perspective in Gandhian framework. Reason behind adoption of Gandhian perspective in this paper lies in the ideological foundations. He was supporter of Gandhian socialism in many senses even having much difference with Gandhi on certain issues. Like Jai Prakash Narayan, Kumarappa, Vinoba and J.B Kriplani, he was having full devotion towards Gandhian constructive programme and principles of nationalism, self-reliance, village swaraj and intermediate technology.

Key words: Economic nationalism, Integral humanism, economic thought, Deen Dayal Uppadhyay.

* Assistant Professor, Maharishi University of Information Technology, Lucknow

† Assistant Professor, City Law College, Lucknow

‡ Deputy Dean Academics, Maharishi University of Information Technology, Lucknow

Ideological difference between Gandhi and Deen Dayal on Political Economy:

Over the years, a lot of research has been done on the thoughts and writings of Pandit Deen Dayal, the founder of Jansangh and who developed the concept of 'Integral Humanism' in India. At a time when the country is under a Hindutva right-wing government, it is natural to contemplate, reflect and write on Deendayal's thoughts. Deendayal Chair Chairs have also been formed in various universities. These research done on Deendayal ji's thoughts tell him a high quality thinker, thinker and pioneer of Gandhian socialism. Undoubtedly Deendayal ji was a deep scholar of his Hindutva ideology, but it is a big ideological mistake to link Gandhian with his economic point of view (Srivastava, 2021).

In the year 1958, Deendayal ji in his book 'India's Artha Niti Vikas Ki Dasha' has done a comprehensive reflection on the then economic thoughts of India. Underlining the economic problems and solutions, this book is actually an extension of Deendayal's nationalist ideas, which he wrote in the magazines of the Sangh. In his book Arth Chintan, meaning in Indian culture, basic economic goals, agriculture and industry, role of plans, limits of production, affordability, man and machine, minimum consumption, and compatibility and decentralization of western economics. Discussed in the nationalist perspective. Upadhyay ji associates his economic philosophy with integral humanism and finally gives the slogan of 'Antyodaya'. Gradually, they put the formula of integral humanist ideological revolution in their philosophy. He takes support of Gandhian concepts for this revolution, in which he writes 'Economy should always be compatible with national life. Production of basic resources which are required for sustenance, nutrition, development of life, perception and interest of the nation should be the goal of the economy. Western thinking considers it good to increase the desires equally and continuously fulfill the needs. There is no importance of dignity in this. Finding or creating a market for the production material is a major part of the economy. In his ideological revolution of Integral Humanism, he gives place to Gandhi's Gram Swaraj, opposition to mechanization, self-reliant society, prestige of democracy, identity of self, and inferiority of desires. But despite having so many creative concepts of Gandhi in Deenandyal's economic thought, his revolution of 'Integral Humanism' is different from Gandhi's Sarvodayi revolution. The reason for

this is the ideological basis of Deendayal ji's thinking, which is divisive and bigotry rather than co-ordinating and non-violent (Upadhaya, 2019).

In Gandhi's political economy, where Swadeshi and decentralization talk about the eradication of religious disharmony and communalism, the basis of which is Satyagraha, on the other hand, Deendayalji opposes secularism and considers 'Muslims' as a problem. That's why the integral humanist philosophy of Deendayal ji goes far away from Gandhi's concepts of non-violent Swaraj. Deendayalji himself had termed Gandhianism, Communism and Sarvodayism as a threat to the integrity of the nation. He wrote that, 'After independence, the government, political parties and people had to face many important problems.. But the Muslim problem is the oldest, most complex and continues to appear in new forms. We are struggling with this problem for the last 1200 years.' His statement on the Muslim problem gives an explanation in true sense for the difference between his ideology and Gandhi's economic ideology.' Deendayal ji's opinion on secularism was that, 'Declaring India a secular nation has attacked the soul of India. In a secular state, a mountain of difficulties remains. ..Though there was a lot of gold in Ravana's religionless kingdom of Lanka, but there was no Ram Rajya'. Deendayal ji has also criticized Gandhism and communism in the initial chapter of his book. Gandhi took pride in being a Sanatani Hindu, but he never allowed it to become communal. This is an important element in the creativity of his economic works, perhaps for this reason Vinoba had written a book on 'Quran' along with 'Gita Saar', expanding his tradition. It is clear that secularism is important for Gandhism. For, Gandhi where unity, social harmony and communal harmony is an essential element in the question of economic equality, whereas for Upadhaya the concept of unity is only related to the establishment of Hindu Rashtra. He writes that, 'If we want unity, we must understand Indian nationalism, which is Hindu nationalism and Indian culture is Hindu culture'. It is clear that secularism is important for Gandhism. There is a deep ideological difference on the complementary expansion of Gandhi's concept of Swadeshi by Deendayal. Means in Gandhi's concept of Swadeshi, Satyagraha, Trusteeship, Aparigraha and Decentralization go together, but Deendayal ji does not give place to Satyagraha in the matter of village industries and agriculture development.

Despite being separated from Gandhism, Deendayal's economic thinking cannot be rejected outright. His talk of 'integral humanism' and not considering the nation as just a piece of land is also true to some extent in the context of India's 'nationality'. After independence, the right wing which was on the margins and the idea of nationalism was only a part of the Jana Sangh.

Whether comparisons are 'odorous' or not, only Dogberry, a character from "Much Ado about Nothing" and his creator Shakespeare were likely to know. But the common experience is that comparisons at times certainly odious. Bracketing Deendayal's name with that of Gandhi is likely to strike some persons as sacrilegious. Deendayal was no humble and unassuming that he himself would have brushed aside any direct or indirect hint that he was anywhere near Gandhi in political or spiritual stature. The present paper focus on an analytical study of Gandhi and Upadhyaya: How far were their ideologies similar and dissimilar to each other?¹(Parameshwaran, 1978).

Alternative to Capitalism and Socialism:

Deen Dayal rejected the idea of western socialism. He had regress opinion towards functioning of capitalism in democracies like India. He criticized Nehurivain model of development. To him, Economic planning cannot get its objectives without involving the cultural values. Giving importance to cultural values during the process of economic planning in a decentralized way, an economy can achieve goal of economic distribution. He had seen socialism as origin of many socio political conflicts.

He said that "*Socialism is being discussed in all quarters and is being considered the most beneficial system for the people. Socialism means control of the State over all means of production and distribution. In such a situation the people are reduced to the status of laborers. There is no independent ownership. In order to establish such socialism class struggle and bloody revolution are invoked. Efforts are also made to bring about this socialism in a peaceful manner. But as this system accepts a conflict between the individual and society and limits the freedom of the individual, under it man becomes only a part of a machine*"². Therefore he demanded for Indian socialism in mixing with cultural value of India. To him, I Indian socialism must be conflict free in nature. Indian cultural values are tools of socio- political

conflict and conflict between man and machine. He rejected the Marxian idea of class struggle also. He had seen class struggle as one kind of violence and conflict. On the issue of class conflict his ideas are collaborating with Gandhian perspective. He further said that, “. *The relation between the individual and society under such socialism does not accord with Indian culture and tradition. We are not socialists of this type, nor are we individualists in the Western sense. Our Upanishads say that he who concentrates on the individual attains darkness, and he who worships only the collective also goes the same way. The Indian system calls for a blend of the two. Our effort is to merge the individual in the social, because the individual can die but society never.* ”³

Deen Dayal favored the balance amongst ethical, economical and sociological values. Balancing or creating equilibrium is a cultural work and role of individual is very important here. According to Deen Dayal, this balancing process is not possible under western democratic ideas. He demanded for Indian democratic values on the basis of our cultural heritage. He quoted, “*INDIA has arrived at the conclusion that it is wrong to consider the individual and society to be in mutual contradiction. Of course if there is a distortion or lack of order it is necessary to take steps to remove it. But the basic truth is that the individual and society are one and indivisible. In a cultured state of affairs the individual will think of society even while thinking of him. If anyone thinks of achieving his own good by harming society he would be thinking on the wrong lines. This is the state of distortion, and this would also not lead to the individual’s good, for the individual will have to suffer the condition in which society finds itself.*”⁴

Deen Dayal also rejected the idea of mass production and mass consumption. Like Gandhi, he demanded for production by masses through decentralized way of production. He also rejected the idea of consumer power. To him, monopolization in capitalistic structure is one the biggest cause of exploitation of laborers.

The Idea of Akhand Bharat : Nationalism

Deendayal believed in the philosophy of cultural nationalism. He critcized Lohia and Nehru on the issue of appeasement of Muslims. To him, pleasing communities for political power is bad for democratic set up and unity of the country. There is no role of appeasement politics in Akhand Bharat. He said that “*Akhand Bharat is more a cultural*

concept than territorial it is true that the achievement of this ideal is only possible through the unity of hearts of the people of India. But unity is never created or promoted by political patchwork. Unity manifests itself in equality. No section of the society can demand a price for unity and if it degenerates into such an attitude, no price can inculcate a feeling of oneness in that section. The moment you think in terms of winning communities on the basis of paying them price in form of political power, you sow the seeds of separation. The history of the last forty years bears ample testimony to the fact. In order to induce the Muslims into identifying themselves with the nation and its goal of freedom all sorts of “cheques” were offered, but we did not succeed⁵” (Upadhyaya, 1962).

He was also against the politics of divide and voting intense political decisions. He said that, *“In politics, decisions at times are taken on pragmatic grounds, but there is tendency to theorize and generalize the decisions either to lend them a hallow or to denounce them. However, there is a necessity of observing certain rules of the game in this respect. If we want to end communalism let us avoid communal generalization unless unimpeachable facts force such a conclusion (Upadhyaya, 1962).”⁶*

Mode of Production in Economy:

Like parameters of Gandhian political economy, Upadhyaya Chooses decentralization in economic and political sphere. He advocated small scale technology with labor intensive technique. In contrast to the capital-intensive, centrally-planned economic program being pursued in the 1950s, Upadhyaya advanced the idea of a decentralized, labor-intensive industrialization. In fact, he suggested altogether abolishing the Planning Commission, the apex decision-making body for Indian economic policy. His alternative economy would focus on small industrial production and investment (chhote udyog and chhoti punji) and trade. In this way, it could raise the overall level of output while maintaining the primacy of the Jana Sangh base. Consistent with that focus, Upadhyaya suggested focusing transport investment toward developing inland waterways and roads. This would grease the wheels of domestic commerce and avoid clumping of the population in cities. According to Upadhyaya, urban migration for work uprooted families and led to a decline in values. (Balasubraminian, 2022).⁷

Protectionism :

Panditji was champion of protecting Indian economy from the vagaries of openness and economic imperialism and was staunch believer of 'swadeshi' (patriotic indigenoussness). While dealing with the issues of self-sufficiency in economic productivity, he criticized the idea of nationalization of industries on one hand and gave green signal to Gandhi's conception of Swadeshi on the other (Srivastava, 2021)⁸ . In his own words "All free countries followed those principles in the interest of their industries... the ultimate aim should, however, be to increase production and the make the country self-sufficient in the matter of food, cloth and housing". Self-sufficiency in economy later became the one the objectives of planning in India. In the context of self-sufficiency and promoting the small industries, he was very much near to principles of Gandhian economy. To quote Gandhi, "Much of the deep poverty of the masses is due to the ruinous departures from Swadeshi in economic and industrial life" He was, like Gandhi, against the drain of wealth by foreign rulers and foreign industries. According to him, removal of poverty is possible through increase in economic productivity and self-sufficiency. He had opinion that "We ought to protect Indian industry from foreign enterprises and also protect small industries from large scale industries in India.

Ideal Economic Order Materialism Versus Spiritualism :

'Prosperity Vs Dharma' not only the absence of material prosperity but the excess of material prosperity also leads to the end of Dharma. It is the special attitude of this country that the West has not thought about the result of material means. When these means lead to addiction to the things and pleasures to be derived from them or through them, we can say that material influence is established. In the absence of material wealth, it ceases to be a means and becomes an end in itself. When it becomes too much, it ceases to be a means of righteous conduct and becomes a means of sensual pleasure. Since there is no limit to these pleasures, a person given to them will always feel lack of wealth and also his addiction to pleasures will reduce his ability to generate wealth. "Swadeshi" and "decentralization" are two words that can summarize the economic policy suitable for the current circumstances. Planners have become prisoners of the belief that only large-scale centralized industry is economically prosperous and

so they continue in that direction without concern for its side effects, or knowingly but helplessly. The same has happened with “Swadeshi”. The concept of “Swadeshi” is derided as old-fashioned in response. We proudly use foreign aid in everything, from thought, management, capital, methods of production, technology to even standards and forms of consumption. This is not the way of progress and development. We will forget our individuality and become virtual slaves once again. The positive content of “Swadeshi” should be used as the foundation stone to rebuild our economy. Dependence on the Western economy hinders our economic development not only because of different ideals of life but also because of different circumstances in terms of time and space, so we have to fundamentally break away from the West. But we are bound by Marshall and Marx. We believe that the economic principles that he discussed are eternal. Even those who feel that they are dependent on certain systems, cannot get out of those systems of principles. The economic prosperity of the West has created in us a blind faith in our capacity to produce. Western economists have produced so much critical literature that we simply cannot help but be overwhelmed by it. It is possible that there may be some principles in the science of economics which do not depend on time, place or order and may prove useful to all, but very few have the ability to assess this quality. Our economists may be experts in western economics, but they have not been able to make any substantial contribution to it because the Indian economy can neither provide them with the necessary ideas nor the necessary fields for experimentation. No right is eternal, whether it pertains to the property itself or to other things, is not eternal. They all depend on the interest of the society. In fact these rights are given to the individual so that he can perform his social duties. A soldier is given weapons because his duty is to protect the society. If he does not do his duty, he loses the right to bear arms. Similarly the right to property is given to a person so that he can perform his duty as prescribed by the society. For this purpose it becomes necessary to define and revise these rights from time to time. No right to property is an absolute right of society⁹

Integral Humanism the base of economic and political ideas :

According to Deendayal Upadhyay ji, Integral Humanism literally means the human body, brain, intellect and soul to be unanimous with four efforts - religion, meaning

work and salvation. This philosophy presents the mental freedom of mankind and the journey from its animalism and then from humanity to divinity. In fact, it is the philosophy of the highest spiritual and mental development of humans. This is a new manifesto in which the supremacy of moral values is established on physical elements.¹⁰

Pandit Deendayal Upadhyay gave a philosophy of 'Integral Humanism' four years before his death. Other compositions published to understand Integral Humanism - 'Emperor Chandragupta' (1946), 'Jagadguru Sri Shankaracharya' (1947), 'Akhand Bharat' (1952), 'Hamara Kashmir' (1953), 'problem and problem of unemployment and Its solution is necessary' (1954) and in -depth study of many articles, lectures, statements, letters and speeches. Integral Humanism can be called the essence of the entire compositions of Deendayal Upadhyay, as it is a collection of four important speeches in a small book, which is a mirror of his thinking and thoughts. Integral Humanism was a seed that emerged the idea of Deendayal Upadhyay's thoughts. The importance of Integral Human Darshan is the most important for those interested in Deendayal Upadhyay's views, because it is possible to solve all the problems. The idea of 'Integral Humanism' also analyzes the ancient Indian tradition in a modern context for the seekers wishing to deeply dive into the immense sea of thoughts of Deendayal Upadhyay. It is the biggest quality and amazing beauty of scientific and philosophical interpretation of humanism in extremely spontaneous, succulent and simple language. The uniqueness and beauty of Integral Humanism lies in the fact that the more times you read it, the more times you will get new inner being. In fact, it is a classical work that aims to revive India and Indians.

Conclusion :

The thinking of Deendayal Upadhyay connects with the eternal ideology. On the basis of this, he tries to understand the nationalism. Let's consider the problems. Let's solve them. This fact itself proves in favor of India. In such a situation, the first thing has to be understood that unlike other ideas, Deendayal Upadhyaya did not make any argument. Ideas like Integral Manav, Antyodaya do not come in the category of argument. This is philosophy. Which connects to our sage tradition? There is no person

or power at its center. As said in western or leftist thought. On the contrary, person, mind, intellect, soul all has importance. Soul resides in every living being. The soul is considered a part of the divine. This is a holistic philosophy. There is an idea of harmony in this. There is no discrimination in this. A person's own interest is natural. But that's not all. Public welfare is not possible through consumerism. There is no welfare of the person in this. If this were the case then at some point in the race for materialism a person would get satisfaction. But this does not happen. The mind is never satisfied. Person is just the initial unit. But he is only part of the family. If it is in the interest of the family, then the person leaves his own interest. If the interest of the society is there then the interest of the family should be given up. If there is the interest of the country, then the interest of the society should be given up. This idea of nationalism should be there in every citizen. The goal of human life is not just physical. There must be means of livelihood. These are means. is not feasible. The idea of Dharma, Artha, Kama, Moksha should also be kept in mind. All work should be inspired by religion. That is, there should be a desire for profit, but it is mandatory to be auspicious.

The relevance of Integral Manav philosophy will always be there, because it is based on eternal ideas. Deendayal ji thought about the creative vision of the whole life. He did not consider foreign ideas as universal. These facts are also visible in front. Indian culture gives a comprehensive idea of the whole life and the whole universe. Its approach is integrative. There cannot be thought in pieces. Culture is the philosophy of unity in the world, recognition of mutual complementarily among its various forms, development of mutual compatibility among them and its rituals. To make nature favorable for the achievement of the goal is culture and to make it against it is perversion. Culture does not ignore nature. Integral human philosophy is there in Indian culture. Man is not just a person. The individual as a set of body, mind, intellect and soul is not limited to only singular I. He has a role to play in the society and the society. The nation is also a soul. The idea of conflict between society and individual is inappropriate. The state is not everything. It is not the sole representative of the nation. The nation continues to exist even after the end of the state.¹¹

References and Notes:

- ¹ VasantNargolkar, “Gandhi, Lohia and Deendayal”, ed. by P. Parameshwaran, Gandhi, Lohia&Deendayal (New Delhi: Deendayal Research Institute, 1978), p. 1. See also <https://journals.indexcopernicus.com/search/article?articleId=2057292>
- ² Quote has been taken from the <http://deendayalupadhyay.org/sol.html> accessed on 20th January, 2023.
- ³ Quote has been taken from the <http://deendayalupadhyay.org/sol.html> accessed on 20th January, 2023.
- ⁴ Excerpts from the book - “Pandit Deendayal Upadhyaya A Profile” edited by Sudhakar Rajee. For more details visit <http://deendayalupadhyay.org/sol.html>
- ⁵ Pandit Deendayal Upadhyaya [Political Diary, 30 April, 1962]
- ⁶ Pandit Deendayal Upadhyaya [Political Diary, 30 April, 1962]
- ⁷ Deendayal Upadhyaya and Indian Political Economy: Memory, History, and the Inconveniences of the Present, accessed on 22 January 2023 <https://casi.sas.upenn.edu/iit/adityabalasubramanian>
- ⁸ Srivastava Vijjay & Verma Rajesh (2021), Relevance of Economic vision of Pandit Deen Dayal Uppadhaya, Bihar Journal of Public Administration.
- ⁹ Extract has been taken from Relevance of Deendayal Upadhyays Political Thoughts in Present Time - An Analysis, Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika, VOL.- IX, ISSUE- VI February - 2022, <http://www.socialresearchfoundation.com/new/publish-journal.php?editID=204>
- ¹⁰ Visit <https://www.prabhasakshi.com/column/thoughts-and-philosophy-of-deendayal-upadhyay-are-relevant>
- ¹¹ Ibid .

भारतीय किशोरों में हिंसात्मक व्यवहार और किशोर अपराध : एक समीक्षात्मक अध्ययन

विकास वाजपेयी¹

vikasbajpai.aim2010@gmail.com

शोध सारांश

किशोरों के बीच व्यवहार परिवर्तन की गतिशीलता पर, यह पत्र महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैचारिक समझ का पता लगाने की कोशिश करता है। यह शोध पत्र विभिन्न अध्ययनों की समीक्षा पर आधारित है। इस पत्र में प्रमुख संदर्भ के लिए सार्वभौमिक अध्ययन का हवाला दिया गया है। यह शोध पत्र, शोध की मिश्रित पद्धति के साथ किशोर समूह के मनोवैज्ञानिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए है। इस शोध पत्र में सैद्धान्तिक ढाँचा विकसित करने के लिए विभिन्न शोधार्थियों के विद्वतापूर्ण कार्यों का भी उल्लेख किया गया है। बेहतर अंडरसेटिंग के लिए, इस शोध पत्र में द्वितीयक डेटा स्रोतों का उपयोग टिप्पणी प्रदान करने और विस्तृत तरीके से हमारी चर्चा को सही ठहराने के लिए भी किया जाता है। किशोर अपराध से जुड़ी समस्याओं का तथ्यात्मक विश्लेषण भी ये शोध पत्र प्रस्तुत करता है। बढ़ते किशोर अपराध के आकड़ों और किशोरों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों के बीच सह संबंध को भी ये शोध पत्र विस्तृत रूप में अध्ययन करता है।

प्रस्तावना:

किशोरावस्था को विद्वानों ने सीखने, अन्वेषण और परिपक्वता की अवस्था बताया है (मिल्स, 2014, क्रोने एंड डहल, 2012, टेलज़र 2016, स्टाइनबर्ग, 2014)। यह एक समय भी जब कि व्यवहारिक और स्वास्थ्य समस्याएं भी उभर के सामने आ सकती हैं। इन समस्याओं की अवधि लम्बे समय तक रह सकती है। कुछ विद्वानों के अनुसार, किशोरावस्था के दौरान अवसादग्रस्तता के लक्षण काफी हद तक बढ़ जाते हैं (एंडरसन एंड टीचर, 2008; मेरिकांगस एट अल, 2010), इस सन्दर्भ में कई शोध और समीक्षाएं इस ओर इशारा करते कि अधिकांश उदास वयस्कों ने किशोरावस्था के दौरान अपना पहला अवसादग्रस्तता प्रकरण झेला (जैसे पाइन, कोहेन, गुर्ली, ब्रुक, और मा, 1998)। इसी तरह, हाई स्कूल में संक्रमण के दौरान स्कूल की व्यस्तता अक्सर कम हो जाती है और मानसिक समस्याएं बढ़ जाती हैं (बेनर, 2011) और जो छात्र हाई स्कूल छोड़ देते हैं, वे काफी कम वेतन अर्जित करते हैं, भले ही वे बाद में एक उचित स्थान अर्जित करते हैं (हेकमैन, हम्फ्रीज़, और कौटज़, 2014) किशोरावस्था की मानसिक समस्याओं का सम्बन्ध, इन वयस्कों के भविष्य के अर्जन से भी है।

¹ पीएच. डी. शोध छात्र, सामाजिक कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

किशोरावस्था स्वतंत्रता के विकास का समय है। आम तौर पर, किशोर सवाल पूछकर या चुनौती देकर और कभी-कभी नियमों को तोड़कर अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करते हैं। माता-पिता और डॉक्टरों को निर्णय की सामयिक त्रुटियों को अलग करना चाहिए, जो कि इस आयु वर्ग के सामान्य और अपेक्षित हैं, दुर्व्यवहार के एक पैटर्न से जिसमें पेशेवर हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। उल्लंघन की गंभीरता और आवृत्ति मार्गदर्शक हैं। उदाहरण के लिए, नियमित रूप से शराब पीना, बार-बार लड़ाई-झगड़े, बिना अनुमति के स्कूल से अनुपस्थिति (अनौपचारिकता), और चोरी एक ही गतिविधियों के अलग-अलग एपिसोड की तुलना में बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं। संभावित व्यवहार संबंधी विकार के अन्य चेतावनी संकेतों में स्कूल में प्रदर्शन में गिरावट और घर से भागना शामिल है। विशेष रूप से चिंता का विषय वे किशोर हैं जो खुद को या दूसरों को गंभीर चोट पहुँचाते हैं या जो लड़ाई में हथियार का इस्तेमाल करते हैं।

क्योंकि किशोर बच्चों की तुलना में कहीं अधिक स्वतंत्र और गतिशील होते हैं, वे अक्सर वयस्कों के प्रत्यक्ष शारीरिक नियंत्रण से बाहर होते हैं। इन परिस्थितियों में, किशोरों का व्यवहार उनके स्वयं के निर्णय लेने से निर्धारित होता है, जो अभी तक परिपक्व नहीं हुआ है। माता-पिता सीधे अपने किशोरों के कार्यों को नियंत्रित करने के बजाय मार्गदर्शन करते हैं। किशोर जो अपने माता-पिता से गर्मजोशी और समर्थन महसूस करते हैं और जिनके माता-पिता अपने बच्चों के व्यवहार के बारे में स्पष्ट अपेक्षाएँ व्यक्त करते हैं और लगातार सीमा निर्धारण और निगरानी दिखाते हैं, उनमें गंभीर समस्याएँ विकसित होने की संभावना कम होती है ((लेवी, 2022)।²

विभिन्न अध्ययनों की वैचारिक समीक्षा :

किशोरों की मानसिक समस्याओं और हिंसात्मक प्रवृत्ति का अध्ययन करने के लिए विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। राणा और मल्होत्रा (2005) ने प्रदर्शित किया कि पारिवारिक वातावरण किशोरों के आक्रामक व्यवहार के लिए एक प्रमुख कारक है। कौर और निवास (2015) ने किशोरों के मध्य बढ़ती औसत आक्रामकता के लिए लिंग भेद को एक महत्वपूर्ण घटक के तौर पर परिलक्षित किया है। कौर और निवास (2015) और कुमार और ठाकुर (2016) ने अपने अध्ययन में पाया कि सकारात्मक आक्रामकता और पारिवारिक वातावरण के बीच उच्च कोटि सहसंबंध पाया। कुमार और ठाकुर (2016) ने अपने अध्ययन में पाया कि महत्वपूर्ण नकारात्मक संबंध के पांच आयाम किशोर हिंसा और अपराध से जुड़े हैं, जिनमें पर्यावरण (यानी सामंजस्य, संघर्ष, स्वीकृति और देखभाल, स्वतंत्रता और सक्रिय मनोरंजन अभिविन्यास) शामिल हैं। जैन (2017) ने अध्ययन किया कि धनी परिवारों और गरीब परिवारों के किशोरों के मध्य हिंसक और उग्र व्यवहार को लेकर माध्य असमानताएँ और विचलन हैं। शर्मा (2019) ने पारिवारिक वातावरण और आक्रामकता के बीच एक महत्वपूर्ण नकारात्मक सहसंबंध का अध्ययन करने की कोशिश की। पारिवारिक

² See <https://www.msmanuals.com/home/children-s-health-issues/problems-in-adolescents/behavioral-problems-in-adolescents>

वातावरण मिलनसार होने पर किशोर कम हिंसक रहे जबकि पारिवारिक कलह, विघटन किशोरों में उग्रता की सीमा को उत्प्रेरित करते हैं। विद्वानों ने किशोर आक्रामकता को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझा है। जॉनसन (1972) के अनुसार आक्रामकता “वो शारीरिक या मौखिक व्यवहार जिसका इरादा किसी को चोट पहुँचाने के लिए हो। भागी और शर्मा (1992) के विचार में “आक्रामकता, हानिकारक और विनाशकारी व्यवहार है। कोई और डोगडे (2000) ने ‘किसी भी’ के रूप में परिभाषित किया किसी व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने के इरादे से किया गया व्यवहार ही आक्रामकता है।

किशोरों में हिंसात्मक व्यवहार और बाल अपराध में सह सम्बन्ध³ :

हाल के कुछ वर्षों में देश में छोटे बच्चों के द्वारा घटित कुछ ऐसी हृदय विदारक घटनाएं देखने को मिल रही हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि अब हमारे देश के कुछ बच्चे बचपन में ही गम्भीर अपराधों व दिल दहला देने वाली घटनाओं को अंजाम देने लगे हैं जो कि स्थिति बेहद चिंताजनक है। जिस तरह से किशोर बच्चों के द्वारा आयेदिन अपराधिक घटनाओं को घटित किया जा रहा है वह सोचने वाली बात है। किशोर अपराध की घटनाएं बार-बार हम सभी से प्रश्न करती है कि क्या इन घटनाओं के लिए वास्तव में कच्ची मिट्टी के बने बच्चे जिम्मेदार है या कहीं ना कहीं हमारे लालन-पालन व सामाजिक माहौल में व्याप्त कोई कमी जिम्मेदार है। आज हमारे सामने सवाल उठता है कि किशोर उम्र में अपराध करने के लिए बच्चों को कौन से हालात उकसा रहे है, ऐसा गलत कार्य करने के लिए बच्चों में प्रेरणा कहाँ से आ रही है। क्या बच्चों के माता-पिता के लालनपालन में कोई कमी रह गयी थी। क्या इसका कारण परिवार के सदस्य, पारिवारिक मित्र, शिक्षकों का बच्चों के साथ व्यवहार की कोई कमी तो नहीं जिसके चलते कुछ बच्चे गलत राह पर निकल जाते हैं। वैसे हमारे देश में बच्चों को भगवान का रूप माना जाता है और कुछ धर्मों में तो बच्चों की पूजा तक की जाती है वैसे भी बच्चे देश का भविष्य व अनमोल राष्ट्रीय धरोहर होते हैं और आने वाले समय में उनके मजबूत कंधों पर देश व परिवार के भविष्य की बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। इसलिए सरकार, समाज, माता-पिता, अभिभावक के रूप में हम सभी का एक नैतिक कर्तव्य है कि हम बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए उन्हें स्वस्थ सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण में बड़ा होने का अवसर प्रदान करें। ताकि वो बड़े होकर देश के जिम्मेदार नागरिक के रूप से शरीर से हष्टपुष्ट, मानसिक रूप विद्वान और नैतिक रूप सदाचारी बन करके अपनी जिम्मेदारी का सही ढंग से निर्वाह कर सकें। वैसे हमारे देश में ये माता पिता व सरकार का कर्तव्य है कि वो बच्चों को विकास के लिए समान अच्छे अवसर प्रदान करें। इसके साथ ही सरकार का दायित्व है कि समाज में व्याप्त असमानता को कम करने के लिए सभी बच्चों के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करें।

हमारे देश में बच्चों से आज्ञाकारी, बड़ों का आदर सम्मान करने वाला और अपने अंदर अच्छे गुणों को धारण करने वाले होने की अपेक्षा की जाती है और अधिकतर बच्चें इस पर अमल भी करते हैं। बच्चों के

³ Abstract taken from , <https://www.punjabkesari.in/aapki-kalam-se/news/concern-for-the-criminal-trend-society-in-adolescents-1022682> accessed on 16/04/2022

लिए 11 से 16 वर्ष की किशोरावस्था की उम्र बेहद महत्वपूर्ण होती है, उस दौरान ही उनके व्यक्तित्व का निर्माण व सर्वांगीण विकास की ठोस नींव रखी जाती है। ऐसे में उनका किशोर उम्र में विशेष ध्यान देना बेहद ज़रूरी हो जाता है क्योंकि यही वो समय है जब बच्चे के गलत रास्ते पर चलने की शंका सबसे अधिक होती है। अधिकतर बच्चे अपने माता-पिता, सामाजिक और सरकार के बनाये नियमों को मानते हैं, लेकिन कुछ बच्चे अनुशासन व नियमों को नहीं मानते हैं। इसमें से ही कुछ बच्चे धीरे-धीरे आपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं, जिसके चलते उन्हें समाज में बाल अपराधी या किशोर अपराधी के रूप में जाना जाता है। आज भारतीय समाज में बाल अपराध की दर दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, साथ ही इसकी प्रकृति भी जटिल होती जा रही है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि वर्तमान समय में बहुत ही तेजी से हो रहे नगरीकरण तथा औद्योगिकरण की प्रक्रिया ने एक ऐसे वातावरण का सृजन कर दिया है जिसमें अधिकांश परिवार अपने ही बच्चों पर नियंत्रण रखने में व उन्हें संस्कारवान बनाने में असफल सिद्ध हो रहे हैं। सभी पैसे कमाने की दौड़ में इतने व्यस्त हो गये हैं कि भोलेभाले बचपन को ठीक से समय नहीं दे पा रहे हैं। जिसके चलते आज बच्चों की वैयक्तिक स्वतंत्रता में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण कुछ बच्चों में नैतिक मूल्यों का बहुत ही तेजी से क्षरण होने लगा है, इसके साथ ही अत्यधिक प्रतिस्पर्धा ने किशोरों में तनाव को पैदा किया है। आज जिस आसानी से बच्चों को मोबाइल फोन, कम्प्यूटर और इंटरनेट उपलब्ध है उसने इन्हें परिवार व समाज से अलग कर अकेलेपन में जीना सिखा दिया है। जिसके चलते आज देश में बहुत ही तेजी से बच्चे तनाव व अवसाद के शिकार होकर अपराध में लिप्त हो रहे हैं। आज देश में जिस तरह से बच्चों के द्वारा अपराध को अंजाम दिया जाने लगा है वह बच्चों के द्वारा होने वाले अपराध की एक कड़वी वास्तविकता है। वर्तमान समय में देश में बच्चे बहुत से खतरनाक अपराधों में लिप्त पाये जाने लगे हैं जैसे कि चोरी, लूट, झपटमारी, लड़ाई-झगड़े, हत्या, सामूहिक दुष्कर्म आदि। ये माता-पिता के साथ-साथ परिवार, समाज व सरकार के लिए भी एक बहुत ही चिंता का विषय है; क्योंकि बच्चों के द्वारा किये जाने वाले अपराधिक कृत्य माता-पिता, परिवार व समाज को झकझोर के रख देते हैं और देश के लिए बहुत नुकसान दायक होते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से किशोर अपराध के लिए अब उम्र को अधिक महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि किसी भी व्यक्ति की मानसिक एवं सामाजिक परिपक्वता सदा ही आयु से प्रभावित नहीं होती है। इसलिए ही कुछ विद्वान किशोरों द्वारा प्रकट रोजमर्रा की व्यवहार प्रवृत्ति को किशोर अपराध के लिए मुख्य आधार मानते हैं। वो मानते हैं कि अगर बच्चा आवारागर्दी करेगा, स्कूल से अनुपस्थित रहेगा, माता-पिता व परिजनों की आज्ञा नहीं मानेगा, अश्लील भाषा का प्रयोग करेगा, चरित्रहीन व्यक्तियों से संपर्क रखेगा तो उसके बिगड़ने के चांस बहुत अधिक होते हैं और इसी के चलते बच्चा अपराधिक घटनाओं को अंजाम देने लग जाता है। किशोर कौन है किशोर का अर्थ एक ऐसे व्यक्ति से है जो बहुत युवा, बालक, कुमार या वयस्क होने वाली आयु से कम हो। दूसरे शब्दों में, किशोर का अर्थ है कि जो बच्चा अभी वयस्कों की आयु तक न पहुँचा हो जिसका तात्पर्य उसके अभी भी बालपन और अपरिपक्व होने से है। कभी-कभी “बच्चा” शब्द “किशोर” के स्थान पर भी प्रयोग होता है। कानूनी रूप में कहा जाये तो, एक किशोर को उस बच्चे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसने अभी कानूनी रूप से

निश्चित वयस्क आयु प्राप्त न की हो और देश के कानून के तहत उसे अपने किये हुए अपराधों के लिए वयस्क की तरह जिम्मेदार न ठहराया जा सके। कानून के शब्दों में, एक किशोर वो व्यक्ति होता है जिसकी आयु 18 वर्ष से कम हो। ये एक कानूनी महत्त्व रखता है। किशोर न्याय (देखभाल और सुरक्षा) अधिनियम, 2000 के अनुसार एक किशोर यदि वो किसी भी अपराधिक गतिविधि में शामिल है तो कानूनी सुनवाई और सजा के लिए उसके साथ एक वयस्क की तरह व्यवहार नहीं किया जायेगा। किशोर अपराध क्या है ? जब किसी बच्चे द्वारा कोई कानून-विरोधी या समाज विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे किशोर अपराध या बाल अपराध कहते हैं। कानूनी दृष्टिकोण से किशोर अपराध 16 वर्ष से कम आयु के बालक द्वारा किया गया कानून विरोधी कार्य है जिसे कानूनी कार्यवाही के लिए बाल न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता है। भारत में बाल न्याय अधिनियम 1986 (संशोधित 2000) के अनुसार 16 वर्ष तक की आयु के लड़कों एवं 18 वर्ष तक की आयु की लड़कियों के अपराध करने पर किशोर अपराधी की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। किशोर उम्र के बालक द्वारा किया गया कानूनी विरोधी कार्य किशोर अपराध है। केवल आयु ही किशोर अपराध को निर्धारित नहीं करती वरन् इसमें अपराध की गंभीरता भी एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष है। 16 वर्ष का लड़का तथा 18 वर्ष की लड़की द्वारा कोई भी ऐसा अपराध न किया गया हो जिसके लिए राज्य मृत्यु दण्ड अथवा आजीवन कारावास देता है जैसे हत्या, देशद्रोह, घातक आक्रमण आदि तो वह किशोर अपराधी माना जायेगा।

किशोर हिंसा से सम्बंधित तथ्य :

किशोर अपराध के आंकड़े “नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो” के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2014 के आँकड़ों के अनुसार अन्तर्गत कुल 38,455, वर्ष 2015 के अनुसार 33,433 व वर्ष 2016 के अनुसार 35,849 मामले किशोर अपराध के पंजीकृत किये गये है। जो कि बहुत सोचनीय है क्योंकि बच्चों देश व परिवार की नींव व उज्ज्वल भविष्य होते हैं। संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूनिसेफ की एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट के मुताबिक भारत में साल 2011 की जनगणना के अनुसार किशोरों की संख्या 24 करोड़ से अधिक है। यह आंकड़ा देश की जनसंख्या का एक चौथाई हिस्सा है। एक रिपोर्ट के अनुसार बच्चों में गुस्से की प्रवृत्ति उनकी उम्र के अनुसार बदलती जाती। वर्ष 2014 में “इंडियन जर्नल साइकोलॉजिकल मेडिसिन” में प्रकाशित एक रिसर्च के अनुसार लड़कों में लड़कियों के मुकाबले अधिक गुस्सा देखने को मिलता है। इस रिसर्च में शामिल लोगों में जिस समूह की उम्र 16 से 19 वर्ष के बीच थी उनमें ज्यादा गुस्सा देखने को मिला जबकि जिस समूह की उम्र 20 से 26 वर्ष के बीच थी उनमें थोड़ा कम गुस्सा था। ये आंकड़े दर्शाते हैं कि किशोर उम्र के बच्चों में युवा अवस्था के मुकाबले अधिक गुस्सा देखने को मिलता है। इसी तरह लड़कों में लड़कियों के मुकाबले अधिक गुस्सा देखने को मिलता है। हालांकि, इसी रिसर्च के अनुसार 12 से 17 वर्ष आयु वर्ग की लड़कियों में करीब 19 प्रतिशत लड़कियाँ अपने स्कूल में किसी न किसी तरह के झगड़े में शामिल मिलीं हैं। यह रिसर्च भारत के 6 प्रमुख स्थानों के कुल 5467 किशोर और युवाओं पर की गई थी। इस रिसर्च में दिल्ली, बेंगलुरु, जम्मू इंदौर, केरल, राजस्थान और सिक्किम के किशोर और युवा शामिल थे।

भारत में, अधिकारियों ने 2012 में 27,936 नाबालिगों पर डकैती, हत्या, बलात्कार और दंगे जैसे बड़े अपराधों में शामिल होने का आरोप लगाया। एनसीआरबी के आंकड़ों के अनुसार, 2012 में जेजेबी (किशोर न्याय बोर्ड) के समक्ष उपस्थित होने वाले व्यक्तियों में से दो-तिहाई (66.6 प्रतिशत) 16 और 18 वर्ष की आयु के बीच थे। इसके अलावा, सर्वेक्षण में शामिल 30.9 प्रतिशत लोग 12 और 16 वर्ष की आयु के बीच थे। जबकि बाकी (2.5 फीसदी) 7 से 12 साल की उम्र के बीच के थे। 2002 से 2012 तक नाबालिग बलात्कार की संख्या में 143 फीसदी की वृद्धि हुई थी। यह भी संकेत दिया कि हत्याओं की संख्या में 87 फीसदी की वृद्धि हुई है, जबकि संख्या किशोरों द्वारा अपहृत महिलाओं और लड़कियों की संख्या में 500 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

हालाँकि, 2007 और 2012 के बीच, किशोरों द्वारा किए गए बलात्कार और हत्या जैसे गंभीर अपराधों की संख्या नाबालिगों द्वारा किए गए सभी अपराधों का सिर्फ 8% थी। किशोरों द्वारा किए गए सभी अपराधों में 72 प्रतिशत चोरी, संधमारी और नुकसान पहुँचाने जैसे छोटे अपराध हैं। भारत में किशोर अपराधों के बढ़ते ग्राफ को ध्यान में रखते हुए, यह दिखाने के लिए स्पष्ट होने वाले लक्षणों से अच्छी तरह परिचित होना आवश्यक है कि किस बच्चे का अपराधी बनने की ओर झुकाव है या पहले से ही एक है।⁴

किशोरों में बढ़ती आपराधिक हिंसक प्रवृत्ति का एक कारण किशोर अवसाद भी है, ये एक आम किन्तु गंभीर समस्या है। यह एक मानसिक स्वास्थ्य विकार है जो गतिविधियों में रुचि के नुकसान का कारण बनता है। यह प्रभावित करता है कि एक किशोर कैसे सोचता है, व्यवहार करता है या महसूस करता है। किशोर अवसाद के परिणामस्वरूप गंभीर भावनात्मक और कार्यात्मक समस्याएं हो सकती हैं। किशोरों में अवसाद वयस्कों में अवसाद से अलग होता है। यह केवल भावनात्मक कमजोरी का चरण नहीं है जिसे आप पर्याप्त आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति से दूर कर सकते हैं। यदि अनुपचारित किया जाता है, तो किशोर की मानसिक संरचना पर इसके कुछ दीर्घकालिक परिणाम हो सकते हैं। इस स्थिति को दूर करने के लिए किशोरों को मनोवैज्ञानिक परामर्श और उचित दवाओं तक पहुंचने की आवश्यकता है।⁵

किशोरों की आक्रामकता और क्रूरता⁶ :

किशोर क्रूरता और व्यवहार में आक्रामक अभिव्यक्तियों की समस्या को पृथ्वी पर मनुष्य के अस्तित्व के दौरान किसी भी समाज या राष्ट्रीयता में नकारा नहीं गया है। किशोरों का हिंसक व्यवहार, व्यक्तित्व, महत्त्व और सर्वशक्तिमानता को व्यक्त करने के एक तरीके के रूप में, मनोवैज्ञानिकों और समाज के लिए भारी कार्य करता है, जिसे दैनिक रूप से निपटाया जाता है। इंटरनेट और अन्य मीडिया के विकास के साथ, पूरी आबादी,

⁴ <https://blog.ipleaders.in/juvenile-crimes-india/> cited on 16/04/2023

⁵ <https://healthlibrary.askapallo.com/hindi/teen-depression/>

⁶ <https://minikar.ru/hi/lyubov-i-otnosheniya/detskaya-agressiya-i-zhestokost-i-ee-profilaktika-profilaktika-zhestokosti-v/>

विशेषकर किशोरों के बीच क्रूरता का स्तर बढ़ रहा है। इस तरह के रिश्ते के तथ्य को बार-बार साबित किया गया है, हालांकि इस विषय ने इंटरनेट पर, समाचार पत्रों में, टेलीविजन पर, और इसी तरह की चर्चाओं के लिए प्रासंगिकता प्राप्त की है। यही है, किशोरों के सामाजिक हलकों में हमेशा आक्रामकता रही है, केवल इसके चारों ओर ध्यान की एकाग्रता की तीव्रता हाल ही में बढ़ने लगी है। आज, हिंसा और क्रूरता की घटना से निपटने के प्रभावी तरीकों का विकास काफी उच्च स्तर पर है, और आक्रामकता के स्तर को कम करने के उद्देश्य से कई संगठन और कार्यक्रम हैं: सुलह सेवाएं, मनोवैज्ञानिक सहायता सेवाएं, सार्वजनिक और स्कूल दोनों, स्कूल मध्यस्थता की शुरुआत, जब किशोर स्वयं विभिन्न विवादों और संघर्षों में मध्यस्थों की भूमिका निभाते हैं, उनके शांतिपूर्ण समाधान में योगदान करते हैं या उनकी घटना को रोकने के लिए। एक किशोरी की संपत्ति के रूप में आक्रामकता इस तरह के व्यवहार के लिए उसकी तत्परता में प्रकट होती है। नाबालिगों में आक्रामकता और क्रूरता एक व्यक्तिगत-व्यक्तिगत विशेषता है जो व्यक्ति के जीवन और उसके आसपास के लोगों के जीवन को प्रभावित करती है। ऐसे व्यक्तित्व लक्षणों का उदय आज दोनों लिंगों में समान रूप से देखा जाता है। अश्लील भाषा, धूम्रपान, शराब, दूसरों का अपमान करने और परेशान करने से जुड़ा मनोरंजन (ऐसे व्यवहार को अमेरिकी मनोवैज्ञानिक कहते हैं - “बदमाशी”, जिसे अब अक्सर हमारे वैज्ञानिक प्रतिमान में इस्तेमाल किया जाता है) आदर्श बन गए हैं। अक्सर, जब एक किशोर को उसके व्यवहार के लिए दंडित किया जाता है, तो एक किशोर को यह गलतफहमी हो जाती है: “क्यों?”, “अगर हर कोई ऐसा ही करे तो उसने क्या किया।” इस तरह के व्यवहार के लिए एक किशोरी की प्रवृत्ति सचेत और अचेतन हो सकती है। इसके आधार पर, मनोवैज्ञानिक आक्रामकता की कई प्रकार की अभिव्यक्तियों पर ध्यान केंद्रित करते हैं: प्रत्यक्ष शारीरिक आक्रामकता; आक्रोश, घृणा और ईर्ष्या; अप्रत्यक्ष आक्रामकता; मौखिक आक्रामकता; नकारात्मकता; संदेह; चिढ़; अपराध बोधा क्रूरता के रूप में, व्यक्ति के पालन-पोषण और विकास की प्रक्रिया में आक्रामक व्यवहार का जन्म होता है। लेकिन ऐसा क्यों है कि एक अच्छे स्कूल में पढ़ने वाला एक बच्चा, समृद्ध परिवार के माहौल से भी, अचानक एक क्रूर व्यक्ति बन जाता है। अधिकतर -यह मदद के लिए बच्चे की पुकार है, कि उसे ध्यान देने की आवश्यकता है। व्यवहार में आक्रामकता और क्रूरता दिखाने वाले बच्चों का बौद्धिक विकास निम्न स्तर का होता है और उनमें नकल की प्रवृत्ति होती है। दुर्व्यवहार करने वाले किशोरों में मूल्य अभिविन्यास, शौक, संकीर्णता और शौक में अस्थिरता की कमी होती है। ऐसे किशोरों में भावनात्मक क्रोध, अशिष्टता, बढ़ी हुई चिंता, अहंकार और अत्यधिक आत्म-सम्मान (अधिकतम नकारात्मक या सकारात्मक) की विशेषता होती है। किशोरों की आक्रामकता और क्रूरता उनकी अपनी प्रतिष्ठा, स्वतंत्रता और वयस्कता को बढ़ाने का एक साधन है।

किशोरों के आक्रामक व्यवहार की विशेषताएं :

किशोरों के आक्रामक व्यवहार की विशेषताएं बड़े पैमाने पर लिंग पर निर्भर करती हैं। यदि लड़कियों को आक्रामकता दिखाने के लिए मौखिक रूप से पसंद करते हैं, तो युवा लोग - शारीरिक शक्ति का उपयोग

करने के लिए। मनोवैज्ञानिक किशोरों के आक्रामक व्यवहार के इन प्रकार कहते हैं - शारीरिक आक्रामकता, अप्रत्यक्ष आक्रामकता (गपशप, पैरों के मुद्रांकन, दरवाजे बंद कर), मौखिक आक्रामकता (चिल्लाती है, रोता है, झगड़े, धमकी, शाप), अस्वीकृत, आक्रोश, संदेह।

किशोर अपराध कुछ ज्वलंत उदाहरण⁷

उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में एक छात्र कि हरकत ने समाज को स्तब्ध कर दिया। 14 साल के स्कूली छात्र ने अपने ही सहपाठी को इसलिए गोली मार दी कि स्कूल में बैठने को लेकर उसका और सहपाठी का आपस में झगड़ा हुआ था। इसका बदला लेने के लिए घटना के दूसरे दिन अपनी स्कूल बैग में चाचा कि लाइसेंसी पिस्तौल लेकर आए छात्र ने सहपाठी को गोली मार दिया। हालाँकि बाद में स्कूल स्टॉप की तत्परता से उसकी गिरफ्तारी हो गई। लेकिन समाज में बढ़ते बाल अपराध के मनोविज्ञान ने हमें चौका दिया है।

सामाजिक बदलाव और तकनीकी विकास का मानव जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। सीखने और समझने की क्षमता भी अधिक बढ़ी है। जिसका नतीजा है अपराध का ग्राफ भी तेजी से बढ़ा है। भारत में बाल अपराध के आंकड़ों की गति भी हाल के सालों में कई गुना बढ़ी है। जिस अपराध की हम कल्पना नहीं कर सकते हैं उस कार्य को नाबालिक किशोरों ने कर समाज और व्यवस्था को सोचने पर मजबूर कर दिया है।

निर्भया कांड में भी एक बाल अपराधी की भूमिका अहम रही थीं। बाद में जुवेनाइल अदालत से वह छूट गया था। संयुक्तराष्ट्र 18 साल के कम उम्र के किशोरों को नाबालिग मानता है। जबकि भारत समेत दुनिया भर में बढ़ते बाल अपराध की घटना ने सोचने पर मजबूर किया है। जिसकी वजह है कि दुनिया के कई देशों ने नाबालिग की उम्र घटा दिया है। कई देशों में बाल अपराध की सजा बड़ों जैसी है। भारतवर्ष में किसी बच्चे को बाल अपराधी घोषित करने की उम्र 14 वर्ष तथा अधिकतम 18 वर्ष है। इसी तरह मिश्र में 7 वर्ष से 15 वर्ष, ब्रिटेन में 11 से 16 वर्ष तथा ईरान में 11 से 18 वर्ष है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार हाल के सालों में बाल अपराध की घटनाएँ तेजी से बढ़ी हैं।

समाज में इस तरह की घटनाएँ हमारे लिए चिंता का विषय हैं। इसे हम नजरंदाज नहीं कर सकते हैं। अमेरिका जैसे देश में इस तरह की अनगिनत घटनाएँ हैं, लेकिन भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह बड़ी बात है। यह घटना साफ तौर पर इंगित करती है हम किस सामाजिक बदलाव की तरफ बढ़ रहे हैं। हम असहिष्णु समाज का निर्माण करना चाहते हैं। आने वाली पीढ़ी में संवाद, संयम और सहनशीलता, धैर्य, क्षमा का अभाव दिखने लगा है। 14 साल की उम्र भारतीय समाज में विशेष रूप से सीखने की होती उस उम्र के किशोर प्रयोगवादी कहाँ से हो गए हैं। हम समाज और आने वाली पीढ़ी को कौन सा महौल देना चाहते हैं। 14 साल की उम्र का नाबालिग किशोर पिस्तौल में गोली भरना और ट्रिगर दबाना कैसे सिख गया ? यह सब तकनीकी विकास और पारिवारिक महौल पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

⁷https://ipnnews.com/news/_6728

संवेदनशील आग्नेयास्त्र बच्चों कि पहुँच तक घर में कैसे सुलभ हो गए। इस तरह के शस्त्र क्या बच्चों की पहुँच से छुपा कर रखने की वस्तु नहीं हैं। फिर इस शस्त्र को घर में इतनी गैर जिम्मेदारी से क्यों रखा गया था। नाबालिग किशोर उस आग्नेयास्त्र तक कैसे पहुँच गया। छात्र के बैग में टिफिन रखते वक्त क्या माँ ने उसका स्कूल बैग चेक नहीं किया। जिस चाचा की पिस्तौल लेकर वह किशोर स्कूल गया था वह सेना में कार्यरत बताया गया है। अवकाश पर घर आया था, फिर क्या यह उनकी खुद की जिम्मेदारी नहीं बनती थीं कि इस तरह के शस्त्रों को बच्चों की पहुँच से दूर रखा जाय।

निश्चित रूप से हम समाज में जिस महौल को पैदा कर रहे हैं वह हमारे लिए बेहद दुखदायी है। इंसान खुद को टाइम मशीन बना लिया है। वह बच्चों, परिवार, समाज और समूह पर अपना ध्यान ही केंद्रित नहीं कर पा रहा है। अगर थोड़ी सी सतर्कता बरती जाती तो सम्भवतः इस तरह के हादसे को टाला जा सकता था। अगर उस शस्त्र को बच्चों की पहुँच से सुरक्षित स्थान पर किसी लाकर में रखा जाता तो इस तरह की घटना नहीं होती। इस घटना से सबक लेते हुए स्कूल प्रबंधन को भी चाहिए की बच्चे की स्कूल गेट पर हर छात्र की तलाशी ली जाय, क्योंकि अपराध किसी चेहरे नहीं लिखा है। स्कूलों में मेटल डिटेक्टर भी लगाए जाने चाहिए।

हमने मासूम बच्चों पर स्कूली किताबों का बोझ अधिक लाद दिया है। पढ़ाई और प्रतिस्पर्धा की होड़ में किशोरवय अल्हड़ता को छीन लिया है। आधुनिक जीवन शैली ने सामाजिक परिवेश को ज़रूरत से अधिक बदल दिया है। हम प्रतिस्पर्धी जीवन में बच्चों और परिवार पर समय देना बंद कर दिया है। जिसकी वजह से बच्चों में एकांकीपन बढ़ रहा है। बच्चों में चिड़चिड़ापन आता है। परिवार नाम की संस्था और नैतिकमूल्य की उनमें समझ नहीं पैदा होती। उन्हें समाज, परिवार जैसे संस्कार ही नहीं मिल पाते। शहरों में माँ-बाप के कामकाजी होने से यह समस्या और बड़ी और गहरी बन जाती है। क्योंकि इस तरह के परिवार में बच्चों के लिए समय ही नहीं बचता है। स्कूल से आने के बाद बच्चों पर ट्यूशन और होमवर्क का बोझ बढ़ रहा है। माँ-बाप बच्चों को समय नहीं दे पाते हैं। दादा-दादी का तो वक्त खत्म हो चला है, नहीं तो कम से कम शिक्षाप्रद कहानियों के माध्यम से बच्चों का मार्गदर्शन होता था।

मनोचिकित्सक डॉ. मनोज तिवारी मानते हैं कि किशोरों में बढ़ती हिंसक प्रवृत्ति के पीछे अभिभावकों भी हैं। क्योंकि बच्चों पर वे उचित ध्यान नहीं दे पाते हैं। दूसरी वजह कई परिवारों में माता-पिता में आपसी संबंध सही न होने से बच्चों को समुचित समय नहीं मिल पाता है। किशोरों द्वारा हिंसक वीडियो गेम खेलने से भी उनके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जिसकी वजह से उनमें हिंसक प्रवृत्ति बढ़ती है। किशोरों में सांवेगिक नियंत्रण की कमी होती है और वे फैसले अपने संवेग के आधार पर लेते हैं। डॉ. तिवारी के अनुसार किशोरवय के साथ हम क्रोध के बजाय मित्रवत व्यवहार करें। उनके साथ साथ खेलें और बातचीत करें। उन्हें अधिक समय तक मोबाइल एवं टेलीविजन के साथ अकेले न छोड़ें। बच्चों को अकेले बहुत अधिक समय व्यतीत न करने दें। बच्चे के व्यवहार में किसी भी तरह के असामान्य परिवर्तन होने पर उसके कारणों को जानने का प्रयास करें और संभव हो तो मनोवैज्ञानिक परामर्श लें।

किशोर उम्र बेहद नाजुक होती है यह अपनी दिशा तेजी से तय करती है। आपका बच्चा स्कूल और कालेज जा रहा है तो वहाँ क्या कर रहा है उसकी निगरानी भी आपको करनी है। बच्चे से मित्रवत व्यवहार रखें। बच्चों की स्कूल बैग टिफिन के बहाने देखें। स्कूल बैग में अगर कोई भी ऐसी वस्तु तो नहीं रखी है जिससे उसके बुरे व्यवहार का पता चलता हो। बच्चों को समय दें और शाम को स्कूली दिनचर्या के बारे में जानकारी लें। स्कूल और ट्यूशन शिक्षक से भी सम्पर्क बनाएं रखें। इन सब बातों से आप उसकी गतिविधियों पर नज़र रख कर माँ-बाप के रूप में एक नैतिक शिक्षक आप खुद बन सकते हैं और बच्चों में बढ़ते अपराध की प्रवृत्ति को नियंत्रित कर सकते हैं।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध पत्र विभिन्न समीक्षाओं के आधार पर ये निष्कर्ष निकालता है कि किशोर में हिंसा और बढ़ते हुए किशोर अपराध में एक गहन सहसंबंध है। बाल अपराध में विगत कई वर्षों में काफी वृद्धि देखी गई है। पारिवारिक और सामाजिक परिवेश भी एक महत्वपूर्ण घटक हैं, जो किशोरों के मध्य एक प्रतिगामी या अनुगामी व्यवहार प्रस्तुत करते हैं। विगत कई वर्षों से भूमंडलीकरण के दौर में किशोरों में यौन अपराधों को लेकर भी एक समस्या उभरी है। सामाजिक कार्यकर्ता के तौर पर हस्तक्षेप विधि द्वारा किशोरों को उनकी मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक आधार पर प्रशिक्षित किये जाने की आवश्यकता है। आमोद कांत (2018)⁸ ने किशोर अपराध और हिंसा के मध्य के सहसंबंध को एक पुलिस अधिकारी के तौर पर विस्तृत अध्ययन किया है, वे सुझाव देते हैं कि हमारे सकारात्मक सांस्कृतिक जुड़ाव और समस्याओं के वर्तमान आयामों को देखते हुए, हम निश्चित रूप से ज्वार को रोक सकते हैं और स्थिति को ठीक कर सकते हैं, जबकि हम अपने किशोरों को जिम्मेदार परिवारों और संस्थानों के रूप में देख रहे हैं। जिन लोगों ने कानून का उल्लंघन किया है, उन्हें कानून के व्यवस्थित और अनुकंपा प्रवर्तन द्वारा मुख्य धारा में वापस लाया जा सकता है। एक समाज के तौर पर केवल कानून द्वारा किशोर अपराध पर नियंत्रण लगाना, इन आंकड़ों में कमी तो कर सकता है, लेकिन सामाजिक तौर पर सफलता के लिए सरकारी नीतियों के अनुपालन की आवश्यकता है।

संदर्भ :

Bhagi. M & Sharma, S. (1992). *Encyclopaedic Dictionary of Psychology (Vol. 1)*. New Delhi: Anmol Publisher.

Bhatia, H. & Chadha, N. K. (2015). *Family Environment Scale*. Agra: National Psychological Corporation.

⁸ <https://www.hindustantimes.com/india-news/let-s-talk-about-teenage-violence-unchecked-petty-crimes-turn-fatal/story-r0rqcUii798Y900woZHjSO.html>

- Broota, A. (2008, January). *Hot Cross kids: A growing number of angry urban children are capable of violence*. pp. 22-26 cited by Sharma, G. The week.
- Carney, J. V. (2000). Bullied to death. *School of Psychology International*, 21(2), 213-223.
- Clare, Foundations of Educations: thought and practice. Meerut: Surya Publication. (2003).
- Datta PP, Firdoush KA. Association of aggression with sociodemographic characteristics: a crosssectional study among rural adolescents. *Natl J Med Res* 2012; 2(4): 442-47
(1) (PDF) *Prevalence of Aggression among School-Going Adolescents in India: A Review Study*. Available
- Govender, K., & Killian, B. J. (2001). The psychological effects of chronic violence on children living in South African townships. *South African Journal of Psychology*. 31(2), 1-24.
- Harvey, M., & Byrd, M. (2000). Relationship between adolescents attachment styles and family functioning. *Adolescence*, 35(138), 345-356.
- Jain, J. (2017). *Family environment and aggression in adolescents: A Correlational Study*. *Indian Journal of Health and Wellbeing*. 8(7), 598-601.
- Johanson, R. (1972). *Aggression in Man and Animal*, Philadelphia: Saunders.
- Puhan RR, Dash L, Malla L. (2014). A comparative study of the aggression and aspiration of adolescents studying in government and private high schools of Odisha. *European Academic Research*, 1(12): 5739-60

प्रेम और पौरुष जिनकी काव्य-प्रज्ञा में प्रवाहमान है

डॉ. डी. एन. प्रसाद¹

dnpsayal@yahoo.co.in

बात उन दिनों की है जब विद्यालयी जीवन में कविता को गेयता में कण्ठस्थ करने की होड़ा-होड़ी लगती थी। भवानी प्रसाद मिश्र, हरिवंश राय बच्चन, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, रामधारी सिंह दिनकर, धर्मवीर भारती के साथ जब डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविता—

हम पंछी उन्मुक्त गगन के
पिंजरबद्ध न गा पायेंगे
कनक तीलियों से टकराकर
पुलकित पंख टूट जायेंगे
X X X

कहीं भली है कटुक निबोरी
कनक-कटोरी की मैदा से
X X X
लेकिन पंख दिए हैं तो
आकुल उड़ान में विघ्न न डालो। (हम पंछी उन्मुक्त गगन के)

यह पुरी की पुरी कविता बिना विघ्न के एक साँस में गेयता के साथ प्रस्तुत करना उन दिनों पठन-पाठन का नीतिगुण था। और आज भी जब कभी वैसी-ऐसी स्थिति-परिस्थिति आती है, सहसा उक्त कविता की दो पंक्तियाँ जुबान पर चढ़कर आ ही जाती हैं – हम पंछी उन्मुक्त गगन के/पिंजरबद्ध न गा पायेंगे और अपने को मुक्ति का एहसास हो जाता है। गेयता के संवेद में भले ही सहृदय पाठक इसे बाल कविता का सवाँग कहें, परंतु यह पूरी सिद्धत के साथ भारतीय परतंत्रता की मुक्ति और भारतीय निजमन की मुक्ति की गेयता का प्रमाण है। उस काल का और भविष्य का संदेशा है उक्त कविता की कोर (Core) में, जो इसे अमरता प्राप्त कराती है। साथ ही कविता की संरचना में कवि का व्यक्तित्व भी झलक जाता है कि आखिर वह किस मिट्टी का बना है। शिवमंगल है अर्थात् जनकल्याणी भावना से ओत-प्रोत है, सिंह की अनहद गर्जना भी है, परंतु प्रतिफल सुमन-सा है। यह सब मिलकर जो व्यक्तित्व की रचना है, वह है शिवमंगल सिंह 'सुमन'! जिसमें केवल जीवन का

¹ प्राध्यापक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

गान है। वह चाहे राष्ट्रीयता की पुकार हो, मानवीयता की लोकमंगल की भावना हो या जीवन को जीवंत बनाये रखने का प्रेम रसायन हो! शिवमंगल सिंह सुमन पूर्णतः जीवन रसायन के कवि हैं, प्रेम रसायन के कवि हैं, जिसके बिना जीवन का कोई भी पल चल नहीं सकता। रिव्योलूशन और रोमांस दोनों साथ-साथ है। एक के बिना दूसरे की जीवन्तता मुश्किल है। जब वे गाते हैं –

कभी-कभी मिलता जीवन में
तूफानों का प्यार!
तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार!
X X X

आज हृदय में और सिंधु में
साथ उठा है ज्वार
X X X

मिट्टी के पुतले मानव ने
कभी न मानी हार
तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार!
X X X
इसके ही बल पर कर डाले
सातों सागर पार
तूफानों की ओर..... (तूफानों की ओर)

यह 'आह्वान गीत' सात समंदर पार जाकर उनसे लोहा लेने की प्रेरणा देता है जिन्होंने भारतीय मनस् को परतंत्रता की जकड़न में कस दिया है। यहीं तक नहीं, विरुद्ध हवा की ओर, धारा के विपरीत संघर्षरत रहने की प्रेरणा ही सफलता का सुपथ साफ दिखाती है, यह सुमन जी की चिन्तना है।

प्रेम और पौरुष सहयात्री हैं। निराला के बाद जीवन-संघर्ष के कवि सुमन जी में यह दोनों तत्व पर्याप्त मात्रा में था। प्रेम की कविताएँ वही लिख सकता है जिसमें पौरुष हो और पौरुष की कविताएँ वही लिख सकता है जिसमें प्रेम हो। इन दोनों आप्त तत्वों के युग्म से ही पुरुष बना है, इस अर्थ संदर्भ में निराला भी पूर्ण पुरुष थे और कवि सुमन भी! 'सरोज स्मृति' लिखने की मनोदशा और 'राम की शक्ति पूजा' लिखने की मनोदशा दोनों में ही निराला निर्निमेष भाव-विह्वल होते हैं। एक तरफ प्रेम की मनोदशा है, दूसरी तरफ पौरुष की मनोदशा है, परंतु विचलन कहीं नहीं। सत्य है, प्रेम का वेग ही पौरुष को जागृत करता है, कर्तव्य-बोध कराता है। कवि सुमन अपनी पौरुष भावना से कहते हैं –

चाहे हृदय को ताप दो
चाहे मुझे अभिशाप दो
कुछ भी करो कर्तव्य-पथ से किन्तु भागूंगा नहीं

वरदान माँगूंगा नहीं (वरदान माँगूंगा नहीं)

और फिर एक क्षण ऐसा आता है, जब कवि सुमन शिवमंगल भावना से कहते हैं –

तन न आया माँगने अभिसार
मन ही मन जुड़ गया था
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार
पथ ही मुड़ गया था..... (विवशता)

इसे कवि सुमन की कथन शैली कह लें, अभिव्यक्तने की शैली कह लें, वंचना की शैली कह लें किन्तु याचना की शैली नहीं है; यह है प्रेम में पौरुषता की शैली, पौरुष की अभिव्यंजना शैली, तभी शब्द की साफगोई झलकती है। कवि की यह मिट्टी की पुकार है, वह भी बैसवाड़ा की मिट्टी (05 अगस्त 1915) की पुकार है, जहाँ महाकवि निराला का बचपन बिता था; पर मालवा की मिट्टी में आकर वह अभिभूत हो जाता है, मालवा की हृदय स्थली उज्जयिनी पर रीझ जाता है, नदियों की चौहदी (चम्बल, बेतवा, नर्मदा, शिप्रा) में डूब जाता है और स्वयं शिवमंगल पुण्य सलिला शिप्रा के जल से महाकालेश्वर का अभिषेक कर तुष्ट होता है। सतत क्रियाशीलता के आगोश में महाकाल की मिट्टी ने उनकी काव्य-प्रज्ञा को वैचारिक सामर्थ्य दी। उज्जयिनी उनमें रम गयी, उज्जयिनी में वे रम गये। मालवा की मिट्टी की महक उनके रंघों में ऐसी बसी कि वे मालवा की मिट्टी के परिप्रेक्ष्य में मिट्टी की महिमा का गान शाश्वत कर गये। मिट्टी के परिप्रेक्ष्य में इतनी सुंदर संरचना देखने को नहीं मिलती। मिट्टी सदृश्य कवि की सार्वभौमिकता भी विश्वनीय है –

मिट्टी की महिमा मिटने में
मिट-मिट हर बार सँवरती है
मिट्टी मिट्टी पर मिटती है
मिट्टी मिट्टी को रचती है

मिट्टी में स्वर है, संयम है, होनी अनहोनी कह जाए
हँसकर हलाहल पी जाए, छाती पर सब कुछ सह जाए (पर आँखें नहीं भरी, पृ. 35)

X X X

कवि मिट जाता लेकिन उसका उच्छ्वास अमर हो जाता है
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है (मिट्टी की महिमा)

मिट्टी की अमरता का गान कवि को वस्तुनिष्ठ भाव-व्यंजना का पूरक बनाती है। यह कवि के सम्पूर्ण व्यंजना का वागर्थ है। अगर यही कवि 'सीमा' की व्यंजना और 'वाद' की व्यंजना में बँध जाता तो काव्यार्थ का परिपूर्ण बोध न कर पाता। यहाँ कवि की पूर्व पंक्तियाँ फिर उसके व्यक्ति को स्पष्ट करती है –

हम पंछी उन्मुक्त गगन के.....गान का उन्मुक्त उड़ान भरने वाले कवि डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन साहित्य के वाद-विवाद के पचड़ों में नहीं पड़े, उसकी जड़ता से जड़ नहीं हुए। वे तो शिप्रा की कलकल धारा के समान भाव-नदियों के साथ प्रवहमान रहे, इसलिए समय-असमय, परिस्थिति-अनुकूल समय की शिला पर गीत

रचते रहे और अपनी गेयता की लयात्मकता में जीवन का स्मित गान सुनाते रहे। इसलिए कवि सुमन हिन्दी कविता की वाचिक परम्परा की लोकप्रियता के साक्षी रहे हैं। उनकी गेयता सुमन की सुगंध की भाँति शब्दों में समाहित होकर घ्राण-संवेदना को निरंतर आनंदित करती रही है। उनकी जिह्वा से वाग्देवी का वागर्थ प्रस्फुटित होता था। सहृदयता और सकारात्मकता के इतने धनी कि दूसरों में भी रचनात्मकता खदान की तरह खोजकर निकालते। उनके समय काल में हिन्दी साहित्य के इतिहास के वे सभी रचनात्मक वाद-विवाद के साथे मँडराते रहे परंतु अपने ऊपर वे 'वाद' को गहराने नहीं दिये। उनकी आस्था में तथ्य, उदाहरण, परम्परा, इतिहास, साहित्य, वर्तमान और भविष्य की गतिमानता रही है। जन की आकांक्षा रही है, इंसानी प्रेम की शाश्वत भावना रही है जो मनुष्य होने का अवलम्ब देती है। उनका कवि कर्म, मानस कर्म ज्ञान की विमलता से विमल व भावना पावस रहे हैं, इसलिए पूरे संज्ञान के साथ साहित्यिक 'वादों' और वादियों को ललकारते हुए कहते हैं –

प्रगतिवाद नारेबाजी में खो गया/प्रयोगवाद उछलते बारहसिंघे-सा/
 अपनी ही अट पटी सींगों में उलझ गया/बिम्बवाद प्रतिबिम्बों के मुकुर में/
 विगलांगों के चित्र चीतने में खो गया/अस्तित्ववाद अपने अनस्तित्व में/
 कि पुरुषों का पेशा अपनाने में खो गया/एक मैं हूँ कि धुने जा रहा हूँ पुरानी रूई/तुम्हारी फटी रजाई में।

(कसाईखाना)

उक्त 'कसाईखाना' शीर्षक कविता का अंश वादमुक्त लेकिन जन-जीवन के प्रति प्रतिबद्ध दृष्टि की स्पष्ट घोषणा है। कवि सुमन अपने प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य की अभ्यर्थना में जितने सफल हैं, उतने ही आक्रोश और विद्रोह में भी जागृत। वादमुक्त संवेदना जितनी सहज, सरल और तन्मयभरी होती है, वाद का बंधन उन्हें बाँध देती है जिससे रचना नारेबाजी तो हो सकती है, प्राणवान नहीं। उन्होंने स्वयं कहा है, "यदि मुझमें तथाकथित वादविमूढ़ जड़ता होती तो मैं बापू पर अपनी महत्वपूर्ण कविताएँ नहीं लिख पाता।" आगे कहते हैं, "गाँधी की अप्रहित साधना और वर्चस्व का मैं कायल रहा हूँ, उस लोककल्याणकारी आराधना का कौन प्रशंसक नहीं होगा।" तात्पर्य, सुमन जी के रोमांटिसिज्म में भी प्रगतिवाद है परंतु वाद के जकड़न से मुक्त। वामपंथ की व्यवहारवादी वायवीय परम्परा में भी अपने शिवत्व की आस्था से हटना अमानुष की संज्ञा से विभूषित होना मानने वाले शिवमंगल अपने सुमन की सुगंध से अलग कैसे हो सकते! इसलिए प्रो. रमेश दवे ने लिखा है, "वे लाल रूस की सेना की कविता करते हुए कितने भी साम्यवादी लगें लेकिन गंगा, गाँधी और गायत्री से बँधी आस्था से विमुख नहीं हो सकते थे।"¹ अर्थात् सम्पूर्ण चेतना में कवि सुमन मुक्त प्रवाह के साथ सामाजिकता में आस्था और क्रांति दोनों के साथ खड़े हैं।

उनकी काव्यवेदना में हिल्लोल होती है तो कहीं-न-कहीं सामाजिक प्रेम की तन्मयता है जो बाद में जीवन के गान बन जाते हैं। जीवन के गान ही प्रलय और सृजन की आवृत्ति में एकाकार होकर सृजन का विश्वास बढ़ाते हैं। यह विश्वास ही कवि के प्रेम और पौरुष की आस्था है जिसे कालीदास की शेषकथा कहने को बाध्य करता है 'प्रकृति पुरुष कालिदास' की नाट्य अन्विति में। कालिदास के साथ प्रकृति भी है, पुरुष भी

है अर्थात् प्रेम भी और पौरुष भी! तभी तो शकुन्तला 'अभिज्ञान' बनती है – 'अभिज्ञान शकुन्तलम्'! कालिदास की उज्जयिनी के बाद अगर उज्जयिनी किसी की होती है तो वह है शिवमंगल की उज्जयिनी। कितना साम्य है शिवमंगल की उज्जयिनी अर्थात् शिव यानी महाकाल की उज्जयिनी! सार्थक सत्व साथ समाहित होता है कवि शिवमंगल सिंह सुमन के साथ। ओजस्विता और तेजस्विता के साथ कवि सुमन में स्थिरता का विस्तार और गहराई साथ-साथ थी। इसी विश्वास के साथ वे अपनी पहचान को पूरे सिद्ध के साथ प्रस्तुत करते थे –

मैं शिप्रा-सा ही तरल सरल बहता हूँ,
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूँ
मुझको न मौत भी भय दिखला सकती है,
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूँ (विंध्य-हिमालय)

ऐसी सिंह-गर्जना किसी कवि ने अपनी मिट्टी के प्रति अभी तक व्यक्त नहीं की है। कितना जुड़ाव, कितनी आस्था, कितना विश्वास; यह त्र्यंबक तथ्य सत्य की भाँति कवि की त्रिकालदर्शिता महाकाल के साथ भस्मभूत होती है। तभी तो कवि सुमन अभय हैं, सरल हैं, निर्द्वन्द्व हैं और उज्जैन के मालवा की जीवित किंवदन्ती भी... यह जीवित किंवदन्ती ही तो है कि जब सुमन जी का स्थानांतरण उज्जैन से इंदौर हो गया, उस समय तमतमाये जन समूह इंदौर जाने वाली रेलपटरी पर सो गये। यह एक कवि, कुलपति और शिक्षक का सौमनस्य ही तो है। ऐसी घटना किसी के लिए अकेली है, दुर्लभ है। और भी; कालिदास की शेष कथा कहते-कहते महाकाल का यह उपासक उसी की गोद में जब सो गया तो उस दिन (27 नवम्बर 2002) जो जनसमूह एकत्र हुआ, वह ऐतिहासिक तो था ही, इस महाजनकवि को श्रद्धांजलि स्वरूप पूरा उज्जैन बन्द रहा। ऐसी किंवदन्ती दुर्लभ है, पर यह सुमन की सुगंध की सौगन्ध है और लोकप्रियता का यह आलम कि चाहे कुलपति सुमन हों या कवि सुमन; एक रिकशा वाला भी उनके घर के पथ को पाथेय समझ कर सहज चला जाता है, किसी नवागत को बताने की जरूरत नहीं। लोकप्रियता के लोक में सुमन का आलोक मालवा के मध्य लोक से बिम्बित होता है। मालवा उनके जेहन में ऐसे बसा कि उनकी रचनाओं में उभर-उभर कर आया। मालवी लोक गीत के मर्म को उन्होंने अनुसंधान का पाथेय बनाया। मालवी भाषा, साहित्य, संस्कृति व कला को अनुसंधान के संधान में लाकर विक्रम विश्वविद्यालय की अनुसंधान परम्परा में अपनी प्रज्ञा का अवदान दिया। शिक्षक रूप में वे गुरु सांदीपनि की परम्परा के वाहक रहे जहाँ भगवान कृष्ण और सुदामा की शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई थी। संस्कार, संस्कृति, परम्परा और लोकविद्या के संरक्षण में महिलाएँ जितना निपुण हैं, उतना पुरुष नहीं। मालवा की मालन भी इस कवि के व्यक्ति को सँवारा है सुमन का गजरा अपने सिरमाथे देकर। कवि सुमन भी मालवा से बिछड़ना नहीं चाहते, परंतु जब (1954) नेपाल के भारतीय दूतावास में सांस्कृतिक दूत के रूप में जाने का समय आया तो दर्द छलक ही आया –

मैं लोल आपांगों के सपने सेता हूँ
मैं शिप्रा का जल नयनों में लेता हूँ
कवि कालिदास जिनके गजरोँ पर रीझे

मालीपुर की मालिनो, बिदा लेता हूँ.....

महाकवि कालिदास भी जब-जब उज्जयिनी से दूर हुए उनकी रचना प्राणवन्त नहीं हुई। मोहन राकेश ने 'आषाढ का एक दिन' में इस बात की अनुभूति करा दी है। कालिदास अपनी पावस अभिव्यक्ति देते हैं, 'मैंने जब-जब भी लिखना चाहा रचना प्राणवान नहीं हुई, मेरे सृजन की प्रसविका तुम थी।' इस प्रस्थान बिन्दु पर आने के बाद उज्जयिनी और मालवा कालिदास और सुमन जी की उत्सर्जना की साक्षी हैं – "उज्जयिनी तो सुमन की वैसी है जैसी कालिदास की थी – कर्मभूमि, स्नेहभूमि, विलासभूमि। उज्जयिनी की युवापीढ़ी ने जितना प्यार और आदर सुमन को दिया, शायद कालिदास के बाद उतना किसी को न दिया होगा।²

काव्य की मादकता में माधुर्यगुण और ओजगुण दोनों की संलिप्तता अनिवार्य तत्व की भाँति है। निराला की काव्यभूमि भी दोनों की तात्त्विक संरचना से सम्बद्ध रही है। कवि सुमन पर निराला की जन-चेतना और कालिदास की भाव-व्यंजना महाकाल के भस्म से अभिभूत हुई है। महाकाल की भस्म आरती का जो महात्म्य है, वह जीवन-सत्य का दार्शनिक भाव है, जीवन सत्य का अंतिम स्वरूप है जिसे सहज रूप से तन्मय होकर अंगीकार किया जाता है। द्वादस ज्योतिर्लिंगों में इकलौती संज्ञा 'महाकाल' का प्रिय होना परिवेश की परिघटना ही है। वरना 'महाकाल' भय का ही कारक शब्दार्थ है, परंतु इस भय में अभय का भस्म जीवन सत्य का साक्षी बनाता है। महाकवि कालिदास और कवि सुमन में वह शिवत्व प्राप्त था। 'प्रेम' शिवत्व का कल्याणकारक तत्व है। इस शिवत्व की प्राप्ति और परिवेश की पूर्णता में लोकमर्यादा की साक्षी महिलाएं ही बनीं मालवा के मालन के रूप में, जिनकी अभ्यर्थना में महाकाल को पुष्पार्पण प्रियम्बद स्वरूप स्वीकार हुआ और महाकाल का शाब्दिक भय सत्यस्वरूप में रंजित होकर अंगीकार हो गया। कवि सुमन भी सुमनार्पण हो गये शिवत्व की सुगंध और सौगंध से। उनके काव्य प्रतिबिम्ब में शिवत्व, मालवा का मर्म और अवंतिका की अन्विति अनुस्यूत है। कवि सुमन अपने अंतिम काव्य संग्रह 'फटे अँगूठों की बन्दनवारों' (1991) में मालवा के मर्म को उजागर करने में साफ कहते हैं –

न जाने क्या कशिश है, मालवा तेरे शबिस्तों में
कि हम शामे-अवध, सुबहे-बनारस छोड़ आए हैं.....

'कटे अँगूठों की बन्दरवारों' को कवि सुमन केवल चार ऊँगलियों से शरसंधान करने वाले भील आदिवासियों के स्वामिभान संरक्षण की प्राणवन्त परम्परा को एकलव्य के कटे अँगुठे से जोड़कर भी देखते हैं।³ जो कवि की दृष्टि को सीमांत तक फैलाव देती है।

और अंत में कवि की बापू के प्रति सृजित काव्य पंक्तियों को स्वयं कवि को श्रद्धांजलि स्वरूप –

तुम जीवित थे तो सुनने का जी करता था,
तुम चले गए तो गुनने का जी करता है,
तुम सिमटे थे तो सहमी सहमी सांसें थी,
तुम बिखर गए तो चुनने का जी करता है।

संदर्भ :-

- ¹ दवे, प्रो. रमेश. (2004). सृजन-यात्रा : डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन-कविता के भविष्य में अतीत की भूमिका और सुमन. सम्पादक : डॉ. आशा शुक्ला. भोपाल : मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति. पृ. 51
- ² रत्नम्, प्रो. कमला. (2004). अदम्य जिजीविषा का कवि : शिवमंगल सिंह सुमन, सृजन-यात्रा : डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन. संपादक : डॉ. आशा शुक्ला. भोपाल : मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति. पृ. 82
- ³ परिहार, डॉ. श्रीराम. (2004). प्रलय में सृजन का राग, सृजन-यात्रा : डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन. सम्पादक : डॉ. आशा शुक्ला. भोपाल : मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति. पृ. 4

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता

आशीष कुमार¹

ashishchauhan9968@gmail.com

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक चेतना और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत काव्य का सृजन करने वाले साहित्यकारों विशेष रूप से हिंदी कवियों की तुलना में हिंदी ग़ज़लकार पीछे नहीं रहे। इन ग़ज़लकारों ने सामाजिक मुद्दों और राष्ट्रीय चेतना को आधार बनाते हुए सार्थक ग़ज़लें लिखीं। इन हिंदी ग़ज़लों में एक तरफ आजादी की लंबी लड़ाई के बाद स्वतंत्र देश में सामाजिक चुनौतियाँ, राष्ट्र में घटित होते परिवर्तन तथा विघटित होते सामाजिक मूल्य के रूप बदल रहे थे तो वहीं दूसरी तरफ स्वाधीनता संघर्ष में बलिदान देने वाले शहीदों की स्मृतियाँ, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय प्रेम जैसे विषय हिंदी ग़ज़ल में देखने को मिलते हैं।

सामाजिक चेतना की बात करें तो वह सामाजिक मुद्दे जिनमें सामाजिक न्याय, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच की असमानता, सामाजिक विषमता, भ्रष्टाचार आदि विशेष रूप से आते हैं। ग़ज़ल के माध्यम से ग़ज़लकार इन सामाजिक विषयों पर अपने विचारों और दुख-सुख को व्यक्त करते हैं और लोगों को सकारात्मक बदलाव के लिए प्रेरित करते हैं। इसके अलावा, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल राष्ट्रीयता को भी प्रकट करती है। ग़ज़लों में आम तौर पर देशभक्ति, अपने देश के प्रति प्रेम और अपनी संस्कृति और भाषा के प्रति गर्व के भाव व्यक्त किए जाते हैं। इन ग़ज़लों के माध्यम से ग़ज़लकार अपने राष्ट्र की महिमा, स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय विचारधारा और राष्ट्रीय प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल में प्रतिष्ठित कवियों ने अपने देश की सामाजिक चुनौतियों और लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को जगाने में सहायता की है।

बीजक शब्द - हिंदी ग़ज़ल , सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता, हिंदी साहित्य

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में ग़ज़ल एक विशेष रचनात्मक रूप है जो अलंकारिक छंद, भाव, रस और प्रभावशाली भाषा का समावेश करती है। ग़ज़ल भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है, जहां इसे संगीत के साथ उच्चतर श्रेणी के कवितात्मक रचनाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। आधुनिक भारतीय समाज और साहित्य के मध्य गहरा संबंध है, और यह ग़ज़लों में भी व्यक्त होता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा के रूप में, हमें आवश्यकता होती है कि हम उसके सामाजिक और राष्ट्रीय पक्षों का विश्लेषण करें। इसके माध्यम से हम विभिन्न सामाजिक मुद्दों, जैसे जाति, धर्म, राजनीति, स्वतंत्रता, स्वावलंबन आदि, के प्रति ग़ज़लकारों की रचनाओं का अध्ययन किया है।

इस लेख में हम विभिन्न स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल के उदाहरणों के माध्यम से सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता के मुद्दों को गहराई से विश्लेषित करेंगे। हम देखेंगे कि कैसे कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से

¹ पी-एच.डी. शोधार्थी, हिंदी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सामाजिक बदलाव तथा राष्ट्र के प्रति प्रेम और शहीदों के बलिदानों के प्रति सम्मान का भाव सार्थक रूप से जागृत किया है।

शोध प्रश्न

- इस लेख में यह जानने का प्रयास करेंगे कि कैसे ग़ज़लकार ने अपनी ग़ज़ल के माध्यम से सामाजिक जटिलताओं, न्याय, असामाजिकता, राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता के मुद्दों पर अभिव्यक्ति की है।
- ग़ज़लकारों के सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता से प्रेरित काव्य के उदाहरणों का विश्लेषण करेंगे।
- हम उन ग़ज़लकारों की रचनाओं को विचारशीलता, उत्साह, समर्पण, और देशभक्ति की दृष्टि से देखेंगे जो सामाजिक चेतना को जगाने और राष्ट्रीयता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

शोध प्रविधि

1. इस शोध में गुणात्मक शोध प्रविधि तथा अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग किया गया है।
2. तथ्यों के लिए विषयाधारित प्रकाशित ग्रंथों का उपयोग किया गया है, इसमें तथ्यों की विवेचना करते हुए व्यख्यायित किया गया है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के इतिहास में स्वाधीनता संग्राम एक महत्वपूर्ण घटना रही है। इस घटना के बाद से समाज में कई बदलाव आए जिनका प्रभाव हिंदी ग़ज़ल पर भी देखने को मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद समाज में आए बदलावों ने हिंदी साहित्य को नई दिशा दी है और हिंदी की ग़ज़ल को भी प्रभावित किया।

आजादी से पूर्व हिंदी ग़ज़ल में प्रेम, व्यथा, श्रृंगार, भक्ति, आदि विषय विशेष रूप से देखने को मिलते हैं। स्वातंत्र्योत्तर के बाद समाज में आए बदलावों ने हिंदी ग़ज़ल को नए विषय दिए। ग़ज़लों में अब लगभग सभी सामाजिक विषयों को छूने वाली बोली और भाषा देखने को मिलती है। इसके साथ ही, महिलाओं के अधिकारों, सामाजिक सुधारों, और न्याय की मांग के लिए भी ग़ज़लों में व्यक्ति के मन की आवाज सुनाई देती है।

स्वातंत्र्योत्तर के बाद समाज में उठी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने ग़ज़ल के माध्यम से लोगों की भावनाएं प्रभावित की हैं। इस संदर्भ में डॉ. गिरिजानंदन 'आकुल' कहते हैं।

“तीक्ष्णतर अनुभूतियों का धाम है हिन्दी - ग़ज़ल,
वेदना की सीपियों का नाम है हिन्दी ग़ज़ल |
रूप-रति- व्यापार ही इसकी सरस सरगम नहीं,
क्रांति की हुंकार का उपनाम है हिन्दी ग़ज़ल ।
यह अनल के फूल की तोड़ी हुई है पंखुरी,
आँसुओं की धार का परिणाम है हिन्दी-ग़ज़ल”

सामाजिक चेतना

स्वातंत्र्योत्तर के बाद भारतीय समाज में राष्ट्रीय और सामाजिक परिवर्तन आये। इस दौरान महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे साहित्य में विषय बनने लगे। महिलाओं को समाज में अधिकार मिले और उन्हें आजादी का अनुभव हुआ। इसके साथ ही विभिन्न जाति और धर्मों के लोगों के बीच भी सामंजस्य और सद्भावना के बढ़ने का माहौल बना। सामाजिक न्याय और समानता की मांग के लिए भी लोगों ने आवाज उठाई। समाज में आए इन बदलावों ने ग़ज़ल के माध्यम से भी अपना प्रभाव डाला है।

हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक चेतना से हमारा अभिप्राय उन सभी संदर्भों से है, जो समाज से जुड़े होते हैं। यहाँ तक कि आज हिन्दी ग़ज़ल के माध्यम से समाज से जुड़े प्रत्येक पहलू को व्यक्त किया जा रहा है, जो व्यक्ति के जीवन पर सकारात्मक या नकारात्मक, किसी भी रूप में गहरा प्रभाव डालते हैं या डाल सकते हैं। साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा के आगमन के बाद हिन्दी-उर्दू साहित्य में 'कथ्य की दृष्टि' से व्यापक परिवर्तन हुए। उर्दू-ग़ज़ल भी इश्क और रूमानीयत से हटकर आम आदमी की बेबसी एवं बेकसी को चित्रित करने लगी।

1950 के बाद से हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में दुष्यंत कुमार त्यागी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिन्होंने हिन्दी ग़ज़ल में आम आदमी के सुख-दुख और मानवीय संवेदनाओं को प्रकट किया। उन्होंने बिलखते भूखे बच्चों और गरीबों की पीड़ा, दूषित राजनीति से उत्पन्न सामाजिक प्रदूषण, शहरों में बढ़ती भीड़ के बावजूद अकेलापन, आतंकवाद और अलगाववाद, दायरों में सिमटते मानवीय संबंध, शहरों से गाँव तक, महलों से झोंपड़ों तक, रेगिस्तानों से हरे-भरे खेत-खलिहानों तक हिन्दी ग़ज़ल के कथ्य क्षेत्र को विस्तृत किया।

देश की जनता की इस मनःस्थिति को उजागर करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं,

“कहाँ तो तय था चरागाँ हर घर के लिए,
कहाँ चराग मयस्सर नहीं शहर के।”

स्वतंत्रता के बाद, भारत में सामाजिक बदलाव का अनुभव करने की बजाय, ऐसा नहीं हुआ जैसा कि लोगों ने सोचा था। राजनेताओं के द्वारा दिए गए वादे झूठे साबित होने लगे और सामान्य जनता को नई आशाएं जगाने में विफलता हुई। अधिकारियों के भ्रष्टाचार ने आम जनता का विश्वास तोड़ दिया। ऐसे समय में, ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार ने स्वतंत्र भारत की सामाजिक वास्तविकता का वर्णन करते हुए अपनी ग़ज़ल में लिखा है।

डॉ. कुंवर बेचैन अपनी ग़ज़लों में सामाजिक संदर्भों को बहुत ही सशक्त रूप में अभिव्यक्ति देते हैं।

अब आग के लिबास को ज्यादा न दाबिए,
सुलगी हुई कपास को ज्यादा न दाबिए।
चुभकर कहीं बना ही न दे घाव पाँव में,
पैरों तले की घास को ज्यादा न दाबिए।

प्रस्तुत ग़ज़ल की पंक्तियों में डॉ. कुंवर बेचैन वस्तुतः गरीब जनता के असली संवेदनशील जीवन को अभिव्यक्त करते हैं। उनके ग़ज़लों में आग का लिबास गरीबी और असहायता का प्रतीक है, जिसमें निर्धन लोग विरहित होते हैं। सुलगी हुई कपास का उल्लेख करके उन्होंने दर्दनाक अनुभवों को संवेदनशीलता से प्रकट किया है, जो उन लोगों के जीवन को अत्यधिक आघात पहुँचा रहे होते हैं।

डॉ. अजय जनमेजय ने गरीब के घर में बैठी भूख का ऐसा वर्णन किया है, जो सहज ही मानव की संवेदनाओं को झकझोर देती है।

“भूख लगी, बच्चा रोया,
तुम कुछ भी पीने को दे दो,
दूध नहीं था पहले भी,
क्या घर का सूख गया पानी”

डॉ. अजय जनमेजय ने इस ग़ज़ल में गरीबी के घरे में रहने वाले व्यक्ति की भूख के अवस्था को बहुत संवेदनशीलता से व्यक्त किया है। एक बालक अपनी भूख से रो रहा है और उससे कुछ पीने को माँग रहा है, लेकिन उसके घर में पहले से ही दूध की कमी हो रही है और कहीं घर का सूख गया है। यह वर्णन मानवीय संवेदनाओं को झकझोर देता है और दर्शाता है कि किस तरह आर्थिक गरीबी व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती है।

आज सारे समाज का स्वरूप विकृत होता जा रहा है। भ्रष्टाचार आज की जीवन-शैली का अंग बन गया है। भ्रष्टाचार एक ऐसा भयंकर दलदल है, जिसमें सभी के पाँव धंसे हुए हैं। हिंदी ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार ने इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए निम्नलिखित ग़ज़ल की पंक्तियों के माध्यम से कहा है:

“हर सड़क पर इस क्रदर कीचड़ बिछा है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।”¹

इस ग़ज़ल में, वह स्थिति वर्णित की गई है जहाँ सड़कों पर भ्रष्टाचार और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की इतनी गंदगी और बदहाली फैली है कि सभी लोग उससे अपने पाँवों तक घिर गए हैं। यह ग़ज़ल मानवीय दुविधाओं, निराशा और आज की समाजिक समस्याओं को जिन्दगी के अध्याय के रूप में प्रस्तुत करती है। दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़ल में भ्रष्टाचार के प्राधिकरणों की लापरवाही और जनता के पीड़ित होने की सुकवाहट से व्यंग्यपूर्ण भाषा में व्यक्त किया है।

साम्प्रदायिक वैमनस्य, अलगाववाद तथा ईर्ष्या द्वेष का जहर फैलाने वाले लोगों को साम्प्रदायिक सद्भाव की सीख देते हुए लोकप्रिय ग़ज़लकार एवं कवि गोपाल दास ‘नीरज’ ने कहा है:

“अब तो इक ऐसा वरक़ मेरा-तेरा ईमान हो,
इक तरफ गीता हो जिसमें इक तरफ कुरआन हो।

काश ऐसी भी महौबत हो कभी इस देश में,
मेरे घर उपवास हो जब तेरे घर रमजान हो।”²

इस ग़ज़ल में, ‘नीरज’ ने साम्प्रदायिक द्वेष और अलगाववाद के संघर्ष को समझाया है। वे एक संघर्षी भावना के साथ इस समस्या का समाधान प्रस्तावित करते हैं, जो समाज को सद्भाव और सामरस्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक है।

इसी तरह, ग़ज़लकार ऋषिपाल धीमान ‘ऋषि’ ने भावुकता से एक और संदेश दिया है:

“गुलशन हमारे प्यार का ऐसे उजड़ गया,
इन्सानियत का पेड़ ज्यों जड़ से उखड़ गया।
देख जो आदमी का सुलूक आदमी के साथ,
मैं क्या बताऊँ ? शर्म से धरती में गड़ गया।”³

ऋषि ने इस ग़ज़ल के माध्यम से मानवता के दुर्भाग्यपूर्ण समय की भावना को प्रकट किया है, जिसमें भ्रष्टाचार और विभेद के कारण समाज और मानवता पीड़ित हो रहे हैं। उन्होंने सभी को एक साथ रहने और सामरस्यपूर्ण समाज के लिए एकजुट होने की आवश्यकता को जटिलता से प्रकट किया है।

अतः उपरोक्त अध्ययन एवं विश्लेषण के माध्यम से हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक बोध बहुआयामी रूप में प्रकट हुआ है। हिंदी साहित्य के ग़ज़ल कारों ने बड़ी व्यापकता और सार्थकता के साथ अपने समाज की चुनौतियों का यथार्थ चित्रण किया है। लोक जन के जीवन से संबंधित विविध पहलुओं को अपनी ग़ज़लों के विषय बनाने में सफल हुए हैं।

राष्ट्रीयता

स्वाधीनता संघर्ष के सुलगते दिनों में, कवि, साहित्यकार, गीतकार और ग़ज़लकार खामोश नहीं रहे। उन्होंने अपने ओजस्वी और प्रखर लेखन के द्वारा राष्ट्रीयता को संवर्धित किया। वे देश और समाज के हित में जागरूक साहित्यकार थे और अपनी सक्रिय और प्रेरक भूमिका को निभाने में आगे रहे। आजादी के लिए लड़ी गई लड़ाई में, उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष का शंखनाद किया। उन्होंने सामान्य जनता को प्राणोत्सर्ग के लिए प्रेरित किया। कई क्रांतिकारियों ने गीतों और ग़ज़लों के माध्यम से राष्ट्रीयता की आग को प्रज्वलित किया और अपने मजबूत राष्ट्रभक्ति भाव को अभिव्यक्त किया। प्रसिद्ध क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की ग़ज़ल में निम्नलिखित पंक्तियाँ इस तथ्य की प्रतिक हैं:

“सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है।”⁴

मुज्तरिब की ग़ज़ल में भी राष्ट्रभक्ति के उद्दाम भाव प्रकट होते हैं:

“कौम के खादिम की है जागीर वन्दे मातरम्,

है वतन के वास्ते अक्सीर वन्दे मातरम्।
जालिमों को है उधर बंदूक पर अपनी गुमान,
इधर हम बेकसों का तीर वन्दे मातरम्।”⁵

इन पंक्तियों में वे देशभक्ति और स्वाधीनता के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने के लिए तैयार होने का संदेश देते हैं। यह ग़ज़ल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उद्दाम भाव को सुंदर शब्दों में प्रकट करती है और उस समय के वीर आंदोलन की भावना को प्रतिबिम्बित करती है।

निजी जीवन, भौतिक संसाधन, पद, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि और इनसे जुड़े सुखों की अहमियत को ध्यान में रखते हुए, एक व्यक्ति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है राष्ट्र की उच्चता। चाहे वह किसी भी पेशे या आजीविका के संबंध में हो, समाज में किसी भी भूमिका के साथ, हर नागरिक के अन्दर अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठा और समर्पण की भावना होनी चाहिए, क्योंकि व्यक्ति का अस्तित्व राष्ट्र के कारण होता है। प्रत्येक देशवासी को अपने भारतीय होने पर गर्व की अनुभूति होनी चाहिए, जो राष्ट्र प्रेम की पहचान है। एक सच्चे देशभक्त की प्राथमिकता और अंतिम आकांक्षा होती है कि देश सदा सर्वदा खुशहाल और आबाद रहे। राष्ट्र के प्रति अपनी सेवा देने का सौभाग्य प्राप्त हो, चाहे वह अपना सब कुछ समर्पित करके भी हो। हर्षवर्धन आर्य की ग़ज़ल की निम्नलिखित पंक्तियों में इस भाव को व्यक्त किया है:

“या खुदा है आरजू आबाद ये गुलशन रहे,
देश सेवा में हमेशा ये मेरा तन मन रहे।
मैं अगर जिन्दा रहूँ तो इस तरह जिन्दा रहूँ,
आँधियों में दीप जैसे शान से रोशन रहे।
जब मरूँ तो माँ के कण-कण में समाऊँ,
इस तरह ज्यों महकता देवता के भाल पर चन्दन रहे।”⁶

इन पंक्तियों में व्यक्ति की आत्मसमर्पण भावना और देशभक्ति की गरिमा व्यक्त होती है। यह ग़ज़ल दर्शाती है कि सच्चे देशभक्त का आदर्श है कि उनका देश सदैव खुशहाल रहे, और वे स्वयं सेवा के माध्यम से उसकी सेवा करें, चाहे उन्हें अपनी सब कुछ समर्पित करना पड़े।

राष्ट्र एक मानचित्र या नक्शे से नहीं होता है, वह सिर्फ कागज़ पर स्याही से उकेरा गया आभास नहीं होता है। वास्तविकता में, राष्ट्र लाखों-करोड़ों लोगों की भावनाओं का प्रतीक होता है, उनकी अस्मिता की पहचान और स्वाभिमान का प्रतिरूप होता है। राष्ट्रभक्त लोग अपने जीवन की महत्त्वपूर्णता को राष्ट्र के लिए खोजते हैं और राष्ट्र के लिए जीने और मरने को समर्पित होते हैं। वह लोग हजारों-लाखों मील दूर दुनिया के

किसी भी कोने में चले जाएँ, उनका नाता अपनी मिट्टी से जीवन भर बना रहता है। कुँवर बेचैन की ग़ज़ल में निम्नलिखित पंक्तियाँ इस भाव को प्रकट करती हैं:

“गुलों में ज्यों चमन की खुशबुएँ मौजूद रहती हैं,
कहीं भी जाऊँ, वतन की खुशबुएँ मौजूद रहती हैं।
अगर सच्ची मुहब्बत है, तो ये बात भी सच है,
विरह में भी मिलन की खुशबुएँ मौजूद रहती हैं।
मैं अपने गीत गाता हूँ तो लगता है कि इनमें भी,
तुम्हारे ही भजन की खुशबुएँ मौजूद रहती हैं।”⁷

इन पंक्तियों में राष्ट्र के प्रति मुहब्बत और आत्मसमर्पण की भावना व्यक्त होती है। वे दिखाती हैं कि राष्ट्रभक्त व्यक्ति के लिए अपने देश की खुशबू, वतनप्रेम और देशभक्ति उनके हृदय में सदैव मौजूद रहती है, चाहे वह कहीं भी हों।

निष्कर्ष

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता के प्रति एक गहरी संवेदनशीलता को प्रतिबिंबित करती हैं। ये गजलें समाज की समस्याओं, असमानताओं, दुर्बलताओं, और विभिन्न विषमताओं के प्रति जागरूकता पैदा करती हैं और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए प्रेरित करती हैं। इन ग़ज़लों में सामाजिक चेतना का प्रमुख विषय उचित न्याय और समानता है। वे आम जनता के द्वारा अनुभव की गई दरिद्रता, न्यायहीनता, और विभाजन को बखूबी व्यक्त करती हैं। ये गजलें विभिन्न वर्गों और समाज के अस्थायी विभाजनों को एकता की ओर ले जाने के लिए आवाज उठाती हैं। सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए ये गजलें जागरूकता फैलाती हैं और समाज में समरसता और समर्थता की भावना को बढ़ावा देने का संदेश देती हैं।

विशेष रूप से, इन ग़ज़लों में राष्ट्रीयता का प्रमुख विषय एकता और अखंडता की महत्त्वपूर्णता है। वे राष्ट्रीय एकता के महत्त्व को बखूबी समझाती हैं और राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहित करती हैं। इन ग़ज़लों में देशभक्ति, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय गौरव, और स्वाधीनता के प्रति उमंग देखि जा सकती है। ये गजलें राष्ट्रीय आन, बान, और शान की प्रशंसा करती हैं और देश की मातृभूमि के प्रति गहरी आस्था और निष्ठा को व्यक्त करती हैं।

सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता के माध्यम से, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी ग़ज़ल जनमानस में राष्ट्रीय भावना को जागृत करने का कार्य करती है। इन ग़ज़लों के माध्यम से, लोगों को राष्ट्र के प्रति उनके उदात्त भावों को पुनर्जीवित करने की प्रेरणा मिलती है और उन्हें सामाजिक न्याय, समरसता, एकता, और स्वतंत्रता के महत्त्व को समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

संदर्भ

- ¹ दनकौरी, दीक्षित. (संपा.). (2014). गजल... दुष्यंत के बाद (भाग – 1). दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 77
- ² दनकौरी, दीक्षित. (संपा.). (2014). गजल... दुष्यंत के बाद (भाग – 2). दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 345
- ³ अस्थाना, रोहिताश्व. (संपा.). हिंदी गजल पंचदशी (भाग -4). पृ. 106
- ⁴ सिंह, सरदार त्रिलोचन. (संकलन). राष्ट्रीय गीत. पृ. 14
- ⁵ कांदबिनी – अगस्त 2000, पृष्ठ – 89
- ⁶ दनकौरी, दीक्षित. (संपा.). (2014). गजल... दुष्यंत के बाद (भाग – 1). दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 131
- ⁷ दनकौरी, दीक्षित. (संपा.). (2014). गजल... दुष्यंत के बाद (भाग – 2). दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 459
- ⁸ अवस्थी, राजकुमार. (2015). गजल: एक संक्षेप परिचय. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- ⁹ निसार, डॉ. नरेश.(2004). हिंदी गजल : दशा और दिशा. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- ¹⁰ मुजावर, डॉ. सरदार.(2001). हिंदी गजल : गजलकारों की नजर में. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- ¹¹ शर्मा, सूर्यप्रकाश. (1988). गजल एक यात्रा. नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
- ¹² गोविंदपुरी, चानन.(1980). गजल एक अध्ययन. नई दिल्ली : CR.पब्लिकेशन.
- ¹³ चतुर्वेदी, डॉ. रामस्वरूप. (1964). भाषा और संवेदना. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन.
- ¹⁴ खराटे, डॉ.मधु. (2002). साठोत्तरी हिंदी गजल. कानपूर : विद्या प्रकाशन.
- ¹⁵ अस्थाना, डॉ. रोहिताश्व. (2010). हिंदी गजल उद्भव और विकास. नई दिल्ली : सुनील साहित्य सदन.

श्री नरेश मेहता : समकालीन कवि और मानवीय मूल्य

बाल मुकुन्द त्रिपाठी¹

balmukundtripathi49@gmail.com

विचारशील प्राणी होने के नाते मनुष्य यह सोचता है कि क्या 'अच्छा' है और क्या 'बुरा', क्या 'शुभ' है क्या 'अशुभ'। इसी 'शुभ' तथा 'अशुभ' एवं 'अच्छाई' तथा बुराई के अंतराल में 'मूल्य' शब्द का प्रादुर्भाव हुआ है। किसी वस्तु का मूल्य इसलिए दिया जाता है कि उसमें व्यक्ति या समाज की आवश्यकता को पूर्ण करने की शक्ति निहित होती है। समाज द्वारा उसकी गुणग्राहकता मान्य होती है।

'मूल्य' की परिभाषा का उल्लेख करते हुए 'चांद किरण' ने लिखा है "मूल्य अपने आप में एक बहुत ही विस्तृत तथा अमूर्त संकल्पना है जिसमें अनेक प्रकार के आयामों को देखा एवं परखा जाता है। एक ओर किसी भी समाज की संस्कृति की श्रेष्ठता इन मूल्यों के स्वरूप पर ही निर्भर करती है तो दूसरी ओर ये किसी भी समाज के सदस्यों के व्यवहार की कसौटी भी माने जाते हैं। सामान्य तौर पर किसी भी समाज की शिक्षा-प्रणाली का लक्ष्य इन मूल्यों को ही पाना होता है, जिन्हें प्रायः शिक्षा के उद्देश्य या लक्ष्य के रूप में निर्धारित किया जाता है ताकि उस समाज के सदस्यों को समाज की एक निर्धारित या फिर निश्चित सी 'जीवन शैली' में ढाला जा सके। वे समाज के द्वारा स्वीकृत किए गये व्यवहार के मानदंड के अनुसार व्यवहार कर सकें। सामाजिक संदर्भों में जीवन जीने या जीवन-शैली के मानदंड ही मूल्य कहलाते हैं। सामान्य शब्दों में इन्हें जीवन जीने की कसौटी कहा जा सकता है। तकनीकी शब्दावली में इन्हें 'मानक कहा जा सकता है।'¹

चांद किरण के उक्त कथन से स्पष्ट है कि मूल्य का सम्बन्ध एक ओर व्यक्ति के आचरण से जुड़ा है तो वही दूसरी ओर सामाजिक संस्कृति से भी जुड़ा है। जो व्यक्ति या समाज के लिए उपयोगी हो, मूल्य है। वस्तुतः मूल्य व्यक्ति द्वारा उच्चादर्शा की प्राप्ति के वे सोपान हैं, जो जीवनोत्कर्ष के लिए अनिवार्य हैं।

श्री नरेश मेहता जी स्वस्थ नये मूल्यों में आस्था रखते हुए भी जीवन के श्रेष्ठ एवं शाश्वत मूल्यों के प्रबल पक्षधर थे। वे व्यक्ति स्वातंत्र्य के पक्षधर/ पूर्ण समर्थक, रूढ़िवादी पारंपरिक मूल्यों के विरोधी, समानता के आग्रही, भारतीय संस्कृति के पोषक किन्तु रूढ़ियों के विद्रोही, भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति में आस्था, नारी-शोषण के विरोधी और स्त्री-पुरुष प्रेम-सम्बन्धों में यथार्थवादी एवं नैतिक दृष्टिकोण रखने वाले/ समकालीन कवियों में शुमार हैं।

आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य की अगर हम बात करें तो मेहता जी का 'मूल्य' सम्बन्धी सकारात्मक दृष्टिकोण उनके काव्य में उभर कर सामने आया है- जिस प्रकार उन्होंने मानवीय मूल्यों के लिए सबसे प्रिय सीता का भी त्याग करने में देरी नहीं करते-

¹ पी-एच. डी. शोधार्थी (हिन्दी विभाग), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

‘‘मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,
साम्राज्य नहीं चाहिए,
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए
सीता भी नहीं।’’²

मेहता जी किसी भी परिस्थिति में युद्ध नहीं चाहते क्योंकि उनकी दृष्टि में युद्ध एक गहन धुप्य अंधेरा है। वे प्रभु श्रीराम के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि वे रक्त सनें पगों द्वारा सीता की भी वापसी नहीं चाहते। अगर हम वर्तमान परिस्थितियों को मद्देनजर बात करें तो युद्ध की विभीषिका में मानवीय मूल्यों का ही विनाश हो रहा है। लाखों लोग बेघर हो रहे हैं। विस्तारवाद व आधिपत्य की लड़ाई में कौन विजयी हुआ, या कौन सर्वशक्तिमान है यह महत्वपूर्ण नहीं। सार्थकता इस बात में है कि मानवीय मूल्यों का किसी भी कारण हास न हो। ऐसे में मेहता जी के काव्य और उसकी विचार प्रवणता अत्यधिक प्रासंगिक हो उठते हैं।

वरिष्ठ आलोचक ‘शंभुनाथ’ के शब्दों में ‘‘साहित्य में कविता, कहानी या उपन्यास की परख ही कई बार इस आधार पर की जाती है उनमें किन मूल्यों, मूल्यों के संकट या मूल्यों की टकराहट अभिव्यक्त हुई है। संस्कृतियों के केन्द्र में सदा से साहित्य रहा है। इसलिए साहित्य को विघटित होते, बदलते या विस्थापित होते नए मूल्यों के आइनें के रूप में देखा जाता है। साहित्य के मूल्य ही देश/स्थान और काल पर रोशनी डालते हैं।’’³

शंभुनाथ सिंह के उक्त कथनों की प्रासंगिकता को मेहता जी ने चरितार्थ किया है। सच्चे अर्थों में वे ऐसे कवि थे जिन्हें मनुष्य की गहरी पीड़ा की अनुभूति के साथ पूर्णतः समझ भी थी। मनुष्य और सर्जक के रूप में उनकी उपलब्धि मनुष्यता की प्रतिष्ठा है। उनके साहित्य में परिवर्तन और सकारात्मकता की जो ध्वनि है, वह उनकी चिरन्तन ध्वनि का बोध कराती है। प्रारंभिक दौर में उनकी सहानुभूति प्रालेप्य की ओर थी पर धीर-धीरे उनका अनुभव मानवीय मूल्य और आस्था की ओर होता गया। वे वानस्पतिकता को मनुष्य का निभ्रान्त लक्ष्य मानते थे, उत्सवा और अरण्या की अनेक कविताएं इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उषस और किरण धेनुएं से लेकर ‘पिछले दिनों नंगे पैरों’ तक उनकी मानवीय पीड़ा और सनातन दृष्टि बनी हुई है। मनुष्य के लिए उनके विचार स्वयं उन्हीं के शब्दों में ‘‘हम देखते हैं कि जितनी अधिक विश्व मानवता की बात केवल विचार के स्तर पर होता जा रहा है। किसी भी युग में मनुष्य उतना अकेला, असुरक्षित और भयाक्रांत नहीं था जितना की आज के चकाचौंध वाले प्रकाश में मनुष्य को नितान्त अंधेरा महसूस होता है।’’

आज के मूल्यों के प्रति समकालीन कवि नरेश मेहता जी इतने चिंतित थे कि उनकी विभिन्नताओं में मानव कल्याण के स्वर जगह-जगह उभरे हैं। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए आजीवन संघर्ष करने वाले कवियों के रूप में मेहता जी सदैव अग्रिम-पंक्ति में खड़े दिखाई देते हैं।

मूल्य वह तत्व है जो कि कवि को काव्य रचना के लिए प्रेरित करता है। मूल्य जितना सार्थक व उपयोगी होगा, उतना ही उसका तीव्र असर होगा और उसकी अभिव्यक्ति भी उसकी शक्ति व क्षमता के साथ हो सकेगी। मेहता जी का प्रबंध काव्य इसका प्रमाण है। 'संशय की एक रात', प्रवाद पर्व, तथा महाप्रस्थान इन काव्यों का प्रमुख प्रतिपाद्य मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति है। नरेश मेहता के राम न तो ऐतिहासिक राम है, न और न भविष्य प्रणेता! मेहता जी की दृष्टि में वे आधुनिक व्यक्ति कि संशयात्मक, मानसिकता व संकल्प-विकल्प की द्वंदात्मक स्थिति को अभिव्यक्त करने का माध्यम है। राम के माध्यम से मेहता जी ने मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति किया है। लक्ष्मीकान्त वर्मा इस संदर्भ में लिखते हैं- "आधुनिक विसंगतियों का राम में आरोपण तथा उनके माध्यम से अपने युग की समस्याओं के समाधान के रूप में विपरीत मूल्यों, बोधों और मान्यताओं के बीच एक सही दृष्टि अपनाने की प्रेरणा ही मूल अभीष्ट है।" ⁴ राम सीता की मुक्ति से पूर्व चिंतामग्न है। अनेक समस्याओं की अन्तर्द्वन्दता से जुझते हुए राम स्वयं को सामूहिक उत्तरदायी (निर्णय) के रूप में सौंपने पर भी संशयग्रस्त है। यहीं मानवीय मूल्य और वैयक्तिक विसंगति यहां स्पष्ट है जो आधुनिक मानव की भी विसंगति है- "दो सत्य/दो संकल्प/दो दो आस्थाएं/व्यक्ति में ही अप्रामाणिक व्यक्ति पैदा हो रहा है।" ⁵

"यदि मैं कर्म हूँ तो यह कर्म का संशय है/ यदि मैं मात्र क्षण हूँ तो यह क्षण का संशय है/यदि मैं मात्र घटना हूँ/तो यह घटना का संशय है।" ⁶

'संशय की एक रात' मूल्यों और मान्यताओं के ऊहापोह को प्रस्तुत करने वाला काव्य है। परस्पर संघर्ष विपरीत मूल्यों और मान्यताओं को समकालीन मूल्यों की कसौटी पर कसने का प्रयास किया है।

महाप्रस्थान में "युधिष्ठिर के महप्रस्थानिक आख्या न के माध्यम से 'मेहता' जी ने जिन संदर्भों को उठाया है उसमें चाहे अंधे धृतराष्ट्र की कुटिलता हो या भीष्म या द्रोण जैसे आचार्यों का असत्य के प्रति पक्षधर होना या दुर्योधन का कुटिल दंभ, अट्टारह दिन का महायुद्ध जिसमें विजयी और पराजित सभी अकिंचन से हो गए। आज के संदर्भ में उतना ही प्रासंगिक है।" ⁷

मेहता जी कहते हैं- "राजन के नहीं धर्म के नियमों पर समाज आधारित है/ राज्य पर अंकुश बनें रहने के लिए/ धर्म और विचार को/स्वतंत्र रहने दो पार्थ!" ⁸

इस कथन के द्वारा मानवीय मूल्य व संवेदना ही उभर कर सामने आती है। साथ ही समकालीन बोध भी प्रस्तुत किया है इस प्रकार युधिष्ठिर मूल्यान्वेषी व्यक्ति के रूप में है। प्रवाद पर्व के माध्यम से कवि श्री नरेश मेहता ने आधुनिकता के संदर्भ में व्यक्ति की इयता, मानवीय गरिमा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व उसके मूल्य आदि के रूप में अनेक समसामयिक संदर्भों को कृति का कथ्य बनाया है-

"जब भी/ऐसी तर्जनी उठती है। तब/राजतंत्र और इतिहास कोलाहल से भर उठते हैं/ क्योंकि वह मात्र अंगुली नहीं होती राम! उसका एक प्रतिऐतिहासिक व्यक्तित्व होता है/ महत्व भी!" ⁹

“मानवीय स्वातंत्र्य/मानवीय भाषा और/मानवीय अभिव्यक्ति के प्रति इतिहास का सामना/वैसे ही/मानवीय प्रतिगरिमा के साथ करना होगा लक्ष्मण।”¹⁰

नरेश मेहता के राम ने मानव के प्रत्येक अभिव्यक्ति को बल दिया है तथा मानवीय मूल्यों को पूर्णतः संदर्भित भी किया है। राम के माध्यम से मानव कल्याण की भावना को-सीता के परित्याग से और बल मिला है।

स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि युग जीवन के यथार्थ एवं मानवीय मूल्य व संवेदना की अभिव्यक्ति कवि श्री नरेश मेहता के काव्य संसार का प्रमुख उद्देश्य रहा है। नरेश मेहता जी ने अपने काव्यों के द्वारा मानवीय मूल्य, युगीन संवेदना, संघर्षशील आस्था, मूल्यगत संक्रमण, व स्वयं से निर्मित मूल्य बोध को बखूबी चित्रित किया है। मानवीय मूल्य के इस परिचर्चा में मानवीय नियति को मेहता जी संकुचित भाग्यवादी दृष्टि से न देखकर व्यापक आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है। मेहता जी के काव्य मानवीय मूल्यों की वास्तविक व्यंजना करती हैं। मेहता जी के काव्य लोक-मंगल की भावना से ओतप्रोत है। अतएव मेहता जी के काव्य की प्रासंगिकता आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शाश्वत और सार्वकालिक सिद्ध होंगे ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

संदर्भ :-

1. किरण, चांद. (2006). *शिक्षा : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य*. दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृ. 424
2. मेहता, श्रीनरेश. (2012). *संशय की एक रात*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
3. शंभुनाथ. (2019). *हिन्दी साहित्य ज्ञानकोश, खंड: 5*. कोलकाता : भारतीय भाषा परिषद. पृ. 2917
4. वर्मा, लक्ष्मीकान्त. (1957). *नयी कविता के प्रतिमान*. इलाहाबाद : भारतीय प्रेस प्रकाशन. पृ. 259
5. मेहता, श्रीनरेश. (2012). *संशय की एक रात*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 22-23
6. मेहता, श्रीनरेश. (2012). *संशय की एक रात*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 51
7. कुमारी, अनीता. (1997). *कविता में नरेश मेहता एक अनुशीलन*. दिल्ली : लोकवाणी संस्थान. पृ. 83
8. कुमारी, अनीता. (1997). *कविता में नरेश मेहता एक अनुशीलन*. दिल्ली : लोकवाणी संस्थान. पृ. 110
9. मेहता, श्रीनरेश. (2012). *प्रवाद पर्व. संशय की एक रात*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 13
10. मेहता, श्रीनरेश. (2012). *प्रवाद पर्व. संशय की एक रात*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ.38

गांधी दृष्टि में आत्मनिर्भर ग्राम

गुलशन कुमार¹

gulshan15785@gmail.com

सारांश :

महात्मा गांधी जी गाँवों के विकास एवं आत्मनिर्भर हेतु एक अग्रणी व्यक्ति थे। गांधी जी की संकल्पना थी कि गाँवों को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाया जाए। वे आज की तरह बड़े उद्योगों में विश्वास नहीं करते थे। उनका मानना था कि गाँवों को लघु एवं कुटीर उद्योगों के मध्यम से ही आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है और गाँवों के आत्मनिर्भर होने से ही देश आत्मनिर्भर होगा। इस शोध पत्र में विभिन्न स्रोतों से साक्ष्य के आधार पर गांधीजी के आत्मनिर्भर भारत के संकल्पना को विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : गांधी, दृष्टि, आत्मनिर्भर, ग्राम।

प्रस्तावना :

भारत एक विशाल देश है, जिसकी कुल जनसंख्या का अधिकांश (70%) भाग गाँवों में रहता है। भारतीय गाँवों में इतिहास की दृष्टि से देखा जाए तो अच्छे संस्कार, सभ्यता और सुसंस्कृति की महत्ता मिलती है। भारतीय समाज मुख्यतः दो भागों- ग्रामीण और शहरी समाज में विभाजित है। भारत में गाँव सदैव समाज का अभिन्न अंग रहा है। गाँवों की संकल्पना के बारे में किसी निश्चित समय-सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है। हालाँकि, प्राचीन काल में गाँव की अवधारणा मौजूद नहीं थी। अब तक सिंधु घाटी सभ्यता को भारत की सबसे प्राचीन सभ्यता के रूप में जाना जाता है।

भारतीय गाँवों का इतिहास वैदिक काल से मिलता है, उस समय राज्यों में एक प्रमुख शहर और कई गाँव शामिल होते थे। गाँव में घरों का एक समूह होता था और आस-पास की भूमि पर ग्रामीणों द्वारा खेती की जाती थी। भारत में गाँवों की अवधारणा उत्तर वैदिक काल या मौर्यों के शासनकाल के दौरान विकसित हुई। उस समय गाँव भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक प्रमुख हिस्सा था। मौर्य राजवंश के दौरान गाँवों का प्रशासन ग्राम सभा के माध्यम से एक संरचित तरीके से किया जाता था। गाँवों के धार्मिक और सांस्कृतिक परिदृश्य पर मुख्य रूप से हिंदुओं, विशेषकर ब्राह्मणों का वर्चस्व था। हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था उस अवधि के दौरान सख्ती से बनाया गया था।¹

भारतीय गाँवों के इतिहास में शैक्षिक क्षेत्र में परिवर्तन देखे गए हैं। प्राचीन काल में भारतीय ग्रामीणों को ब्राह्मणों द्वारा वैदिक और अन्य हिंदू धर्मग्रंथ पढ़ाए जाते थे। उस समय शास्त्र ही शिक्षा के एकमात्र साधन

¹ पी-एच. डी. शोधार्थी, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, म. गां. अं. हिं. वि. वि. वर्धा, महाराष्ट्र

थे। प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। हालाँकि, मध्यकाल में मुस्लिम शासकों ने महिला शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया। ब्रिटिश काल ने भारतीय गाँवों की संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में भारी बदलाव लाया। उन्होंने भारतीय लोगों को अंग्रेजी भाषा से परिचित कराया और मिशनरियों ने ब्रिटिश शासकों द्वारा स्थापित कई स्कूलों के माध्यम से ईसाई धर्म का प्रचार करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश शासकों ने चिकित्सा शिक्षा, इंजीनियरिंग शिक्षा, तकनीकी शिक्षा आदि जैसी शिक्षा की शुरुआत की।

प्राचीन काल में कृषि भारतीय ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय था। अन्य व्यवसायों में राजा के दरबार में लिपिक की नौकरी करना या सम्राटों के लिए सैनिकों के रूप में काम करना शामिल था। ब्रिटिश काल तक कई शताब्दियों तक भारतीय ग्रामीण कृषि पर निर्भर रहे। हालाँकि, ब्रिटिश शासन के दौरान कई उद्योगों की शुरुआत के साथ परिदृश्य बदल गया। ग्रामीण अपने पारंपरिक व्यवसाय कृषि को छोड़कर शहरी क्षेत्रों की ओर जाने लगे। वे श्रमिक या मजदूर के रूप में विभिन्न औद्योगिक संगठनों में शामिल हो गए और वैकल्पिक व्यवसाय ढूँढ लिया। हालाँकि, भारत के अधिकांश गाँवों में कृषि अभी भी प्रमुख व्यवसाय है।

भारतीय गाँवों के राजनीतिक परिदृश्य में संभवतः अब तक का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया है। जबकि प्राचीन और मध्ययुगीन काल के अधिकांश हिस्सों में भारतीय ग्रामीण राजनीतिक रूप से अनभिज्ञ थे, अब वे राजनीतिक रूप से बहुत सक्रिय हो गए हैं। वे आम चुनावों के दौरान अपना वोट डालकर भारत की लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। वे भारत में स्थानीय शासन प्रणाली में भी सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। भारतीय गाँवों के इतिहास में परिवहन व्यवस्था में भी व्यापक परिवर्तन देखे गए हैं। भारतीय ग्रामीण अब परिवहन के लगभग सभी आधुनिक साधनों का लाभ उठा रहे हैं।

प्राचीन काल में परिवहन व्यवस्था की दृष्टि से देखा जाए तो पैदल चलना ही परिवहन का एकमात्र साधन था। उस समय जब तक बैलगाड़ी, पालकी, घोड़ागाड़ी, नाव, जहाज आदि वाहन अस्तित्व में नहीं थे, तब तक ग्रामीणों के लिए कोई वैकल्पिक परिवहन की व्यवस्था नहीं थी। वस्तुतः ये साधन मध्यकाल के अंत तक परिवहन के प्रमुख साधन बने रहे। हालाँकि, ब्रिटिश शासकों ने बसों, ट्रेनों और अन्य ऑटोमोबाइल की शुरुआत करके भारतीय गाँवों की परिवहन व्यवस्था में भारी बदलाव लाया।

गांधी जी की ग्रामीण व्यवस्था :

“भारत गाँवों का देश है और इसकी आत्मा गाँवों में निवास करती है।”² इस वक्तव्य को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था। वस्तुतः गांधी जी गाँवों की स्थिति को बहुत ही निकट से देखा था। गाँव में रहने वाले लोग, उनके रहन-सहन, खान-पान और उनके परिश्रम को देखकर बहुत दुखी होते थे क्योंकि देश को मजबूती प्रदान करने में गाँवों की भूमिका शहरों की अपेक्षा अधिक है फिर भी हम गाँव को कम महत्त्व देते हैं। गांधीजी ने भारत के गाँवों को आत्मनिर्भर एवं विकास हेतु अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 6 मई 1939 को उन्होंने वृंदावन में कहा था, “यह देखकर मुझे बहुत दुख होता है कि आप लोगों में से अधिकांश या तो शहर से आए हैं

या शहरी जीवन के अभ्यस्त हैं, जब तक आप अपना मन शहर से हटाकर गाँव में नहीं लगाएंगे तब तक गाँव के लोगों की सेवा आप नहीं कर सकते। आपको यह भी समझ लेना चाहिए कि हिंदुस्तान गाँव से बना है, शहरों से नहीं और जब तक आप ग्रामीण जीवन को तथा गाँव के कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवित नहीं कर सकते तब तक आप उनका पुनर्निर्माण नहीं कर सकते। हमारे गाँव में जीवन का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है और यह मृतप्राय है। औद्योगीकरण उनमें प्राणों का संचार नहीं कर सकता है। अपनी झोपड़ी में रहने वाले किसान को जीवन तभी मिलेगा जब उसे अपने घरेलू उद्योग फिर से वापस मिलेंगे तथा तब अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए वह गाँव पर ही निर्भर रहेगा, शहरों पर नहीं, जैसा कि आज उसे विवश होकर करना पड़ रहा है। इस आधारभूत सिद्धांत को यदि आप आत्मसात नहीं करते तो ग्राम पुनर्निर्माण के उस कार्य में लगने वाला सारा समय व्यर्थ जाएगा।³ अतः गांधी जी ने देखा कि लोग जो हमें सुन रहे हैं, वे गाँवों में निवास करते हैं परंतु उनका मन और आत्मा शहरों के वेश-भूषा और भाषा शैली को अपनाने में लगा हुआ है। यहाँ पर आत्मनिर्भरता एवं गाँव के विकास से संबंधित गांधी जी के विचार हैं कि यदि हम गाँव के रहन-सहन, जीवन शैली को नहीं अपनाएंगे तो एक दूसरे की सेवा कैसे करेंगे, गाँवों के मुख्य व्यवसाय लघु एवं कुटीर उद्योगों का पुनर्निर्माण नहीं करेंगे तो आत्मनिर्भर ग्राम कैसे होगा?

वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि गांधीजी गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए जीवनभर प्रयास करते रहे। गांधीजी का चरखा गाँवों को आत्मनिर्भर होने के लिए प्रेरित करता है। महात्मा गांधी के पूर्व तथा बाद में भी ग्रामीण विकास एवं आत्मनिर्भर हेतु प्रयास होते रहे हैं। गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने हेतु मुगल काल से पूर्व, मुगल शासन काल में तथा ब्रिटिश काल में भी इस दिशा में कार्य होते रहे हैं। भारत में आत्मनिर्भर की प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आ रही है। फिर भी भारत के गाँवों पर एक दृष्टि डालें तो पाएंगे कि राजाओं एवं शासकों ने अपने स्वार्थ हेतु गाँवों का दोहन भी किया है। परंतु गाँवों को आत्मनिर्भर एवं विकास हेतु वास्तविक प्रयास स्वाधीनता के पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से किए गए हैं।

गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए महात्मा गांधी जी ने सर्वप्रथम पहल किया था। गांधी दर्शन के अंतर्गत आत्मनिर्भर गाँव की संकल्पना को देखा गया है। वस्तुतः गांधी जी की दृष्टि से देश के विकास में गाँवों की भूमिका प्रमुख रही है। क्योंकि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति ग्राम केंद्रित है इसलिए शहरों की अपेक्षा गाँवों की भूमिका प्रमुख है। ग्रामीण व्यवस्था के बारे में गांधी जी का कहना है कि, “स्वतंत्र भारत के पुनर्निर्माण की योजना में गाँवों को आज की तरह शहरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए बल्कि इसके विपरीत शहरों का अस्तित्व सिर्फ गाँव के लिए और गाँव के हित के लिए होना चाहिए। इसलिए चरखे को केंद्र का गौरवपूर्ण स्थान देकर उसके इर्द-गिर्द गाँवों को जीवन देने वाले गृह उद्योग संगठित किए जाएं।”⁴ महात्मा गांधी भारत जैसे विशाल देश में बड़े उद्योगों के विरोध में हमेशा रहते थे। उनका मानना था कि भारत की इतनी बड़ी जनसंख्या वाले देश में हर व्यक्ति के हाथ में काम मिलना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। क्योंकि बड़े उद्योगों में स्वचालित मशीनें लगाई जाती हैं जो कि वे अनेक व्यक्तियों के बराबर कार्य करती हैं। इसलिए गाँवों को शहरों पर निर्भर न होकर

स्व-निर्भर हेतु चरखा, खादी ग्रामोद्योग और लघु उद्योगों को अपनाने की बात गांधी जी करते हैं। इससे हर व्यक्ति के हाथ में काम होगा और काम या ज्यादा पैसा भी होगा।

गांधी जी कहते हैं कि जब बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा उत्पादन किया जाता है, तो उद्योगों का संचालन/नियंत्रण पूंजी-पतियों के हाथों में चला जाता है। उन्हीं के हाथों में समाज का धन भी केंद्रित हो जाता है। धन का असमान वितरण और संचयन होने से शोषण, गरीबी, भुखमरी और आर्थिक विषमता बढ़ती चली जाती है। इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर राज्य कार्य करते हैं। इससे अंतरराष्ट्रीय तनाव, अशांति और महायुद्ध उत्पन्न होते हैं। इस व्यापक एवं नग्न हिंसा के तांडव को रोकने के लिए आर्थिक क्षेत्र में भी विकेंद्रीकरण होना चाहिए। वृहत मशीनों के उद्योगों के स्थान पर लघु ग्राम उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसलिए राजनीतिक विकेंद्रीकरण के अंतर्गत ग्राम-पंचायतों को स्वशासन के समस्त अधिकार दे दिए जाने चाहिए। इनके मामलों में राष्ट्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों का हस्तक्षेप एवं नियंत्रण नहीं होना चाहिए। उन्हें राजनीतिक दृष्टि से स्वशासी तथा आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाया जाना चाहिए। उन्होंने 'हिंद-स्वराज' में अपने आदर्श ग्राम-स्वराज का चित्रांकन करते हुए बताया है कि उसमें प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य होगा। यह अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए पड़ोसी राज्यों पर निर्भर नहीं होगा। वह अपने खाने के लिए अन्न और कपड़ों के लिए रूई उत्पन्न करेगा। पशुओं के लिए पर्याप्त गोचर भूमि होगी। उसमें अपनी नाट्यशाला, सार्वजनिक भवन, पाठशाला, जलाशय, कूप आदि होंगे। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य होगी और प्रत्येक कार्य सहकारिता के आधार पर किया जाएगा। अपराधियों के लिए दंड के स्थान पर अहिंसा मूलक सत्याग्रह और असहयोग से काम लिया जाएगा। ग्राम रक्षकों का एक दल होगा जो ग्रामवासियों में ही बारी-बारी से चुना जाएगा। उस ग्राम का शासन पाँच व्यक्तियों की एक पंचायत द्वारा संचालित किया जाएगा। इन पंचों के लिए न्यूनतम योग्यताएं रखना आवश्यक होगा। इनका निर्वाचन प्रतिवर्ष सभी वयस्क स्त्री-पुरुषों द्वारा होगा। पंचायत ही ग्राम की व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका आदि सभी कुछ होगी। इस व्यवस्था का मूल आधार स्वतंत्र रूप से व्यक्ति ही होगा। इस प्रकार प्रत्येक गाँव, अपने शासन, उत्पादन, वितरण आदि का स्वयं स्वामी होगा। आर्थिक क्षेत्र में, लघु-कुटीर उद्योगों, जैसे- खादी, गुड़, तेल-पानी आदि को प्रोत्साहित किया जाएगा। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था, बेरोजगारी, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, शोषण, असमानता आदि का विरोध किया जाएगा।⁵ जीवन को अधिक से अधिक सरल और सादा बनाने का प्रयास किया जाएगा। उसमें रेलों, मशीनों, कारखानों आदि का कोई स्थान नहीं होगा। इनका प्रयोग उसी अवस्था में किया जाएगा यदि ये औद्योगिक व्यवस्था में किसी प्रकार की हानि न हो।

आत्मनिर्भर ग्राम से अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास करने से है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त निर्धनता, बेरोजगारी, निरक्षरता तथा प्राकृतिक संसाधनों की समस्या बनी रहती है। इन समस्याओं को हल कर गाँवों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। अतः गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने की जरूरत है। क्योंकि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास में ग्रामीण क्षेत्र की भूमिका प्रमुख होती है।

गांधी जी का मानना था कि जब तक गाँवों को आत्मनिर्भर नहीं किया जाएगा तब तक कोई भी राष्ट्र आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था एवं बाजार को मजबूत किया जाए ताकि गाँवों को आत्मनिर्भर बनाया जा सके। गाँधी जी का चरखा, लघु एवं कुटीर उद्योग की जो संकल्पना थी, उस संकल्पना में देश के हर व्यक्ति के हाथ में काम होता और कम या ज्यादा सभी व्यक्तियों के हाथ में पैसा भी होगा। अतः इस प्रकार के कार्य व्यक्ति के सम्मान और राष्ट्र की समृद्धि, दोनों के लिए जरूरी होता है। क्योंकि किसी देश को आत्मनिर्भर होने में जो बाधा उत्पन्न होती है वह आर्थिक एवं बेरोजगारी से संबंधित होती है। इसे खत्म करने के लिए जरूरी है कि हर हाथ में काम का होना जरूरी है।

गांधी जी का विश्वास था कि भारत जैसे बड़ी आबादी वाले देश में लघु एवं कुटीर उद्योग के माध्यम से ही अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सकता है। फलस्वरूप छोटी मशीनों के साथ काम करने में व्यक्ति अधिक सरल एवं सहज महसूस करता है। महात्मा गाँधी का कहना है कि, “हमें मनुष्य को खत्म करने वाली मशीन नहीं चाहिए, हमें तो मनुष्य की क्षमता बढ़ाने वाली मशीन चाहिए।” इससे यह स्पष्ट है कि गांधी जी देश के हर व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। उन्हें देश के हर व्यक्ति के बारे में चिंता थी। उनका विचार था कि व्यक्ति को मशीन की तरह कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिदिन के कार्य के साथ-साथ खेल, स्वास्थ्य एवं मनोरंजन के लिए भी समय निकलना जरूरी है, जिससे व्यक्ति की क्षमता में वृद्धि हो सके।

गाँवों में लघु एवं कुटीर उद्योगों का प्रमुख लाभ पर्यावरण की सुरक्षा को लेकर भी है। इसमें न तो धुँआ उगलने वाली बड़ी मशीनें होती हैं और न ही नदी- नालों को गंदा करने वाला वेस्टेज ही निकलता है। इससे पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ वास्तविक रूप से गाँवों की आत्मनिर्भरता की संकल्पना भी पूर्ण होती है। फलस्वरूप उत्पादन खर्च कम होगा और शहरी उपभोक्ता पर आर्थिक बोझ भी नहीं बढ़ेगा। उत्पादन के लिए कच्चे माल की पूर्ति गाँव से ही होता है। चूँकि उसमें लागत भी कम आती है क्योंकि गाँवों में कच्चा माल आसानी से उपलब्ध हो जाता है, परिवार द्वारा निर्मित और ग्रामीणों द्वारा श्रम को भी नगण्य जोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों और बड़े उद्योगों में तैयार उत्पाद कई गुना महंगा होता है। वस्तुतः महंगे उत्पाद गाँव की पूँजी को भी खींच रहे हैं, जो कि सही मूल्य की दृष्टि से भी अनुचित होता है।

राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो, महात्मा गाँधीजी गाँवों को राजनीतिक आत्मनिर्भरता के लिए केंद्रीकृत शासन व्यवस्था के विरोधी हैं। गाँधी जी के अनुसार विकेंद्रीकरण की आवश्यकता इसलिए है, क्योंकि केंद्रीकृत व्यवस्था का मुख्य आधार हिंसा अथवा पाशविक शक्ति प्रदर्शन है, जिसका अहिंसात्मक समाज में कोई स्थान नहीं है। इसके अलावा, राज्य के अंतर्गत शक्तियों के केंद्रीकरण के कारण स्थानीय स्वशासन के अवसर कम होते हैं तथा व्यक्ति की नैतिक भावना कुंठित होकर उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध करती हैं। साथ ही व्यक्ति पर अनेक प्रतिबंध आरोपित कर उसका जीवन जटिल बना देती है। भारतीय संस्कृति पर हावी होती पश्चिमी सभ्यता के विरुद्ध गाँधी जी का तर्क है कि, “यूरोप की यांत्रिक और कृत्रिम सभ्यता जो हमारे देश में घर गई है, उसे हमें बाहर करना चाहिए। उसकी जरूरत हमें कतई नहीं है। हमारी जो प्राचीन संस्कृति थी मैं उसे

जीवित करना चाहता हूँ, उसी में हमारा सुख हमारी समृद्धि और शांति निहित है। यदि हम अपनी प्राचीन संस्कृति को अपना सकें तो जगत में शांति स्थापित करने का कार्य करेगी। वस्तुतः राष्ट्र को आज की अपेक्षा कल के लिए आत्मचिंतन करना चाहिए। परस्पर विरोध प्रतिस्पर्धा और धनवान कैसे बना जाए यह सब सोचने के बजाय हमें कौटुंबिक भावना का प्रसार करना चाहिए। आदर्श तो उसे ही कहा जा सकता है जिसमें मनुष्य मानवी ढंग से जीवन जी सके और उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करने का अवसर मिले।⁶ आत्मनिर्भर गाँव सही मायने में तभी आत्मनिर्भर होंगे जब वे न्यायिक पहलू से भी स्वनिर्भर होंगे। क्योंकि कई सालों तक कोर्ट-कचहरी के चक्कर काटकर और लाखों रुपये खर्च कर भी न्याय नहीं मिलता। ऊपर से प्रशासन पर दबाव भी बढ़ता है। गांधी जी का कहना था कि, 'ग्राम पंचायतें, राज्य के न्याय संबंधी कार्य में पर्याप्त कमी करते रहते हैं। गांधी जी स्वास्थ्य की आत्मनिर्भरता के प्रति सदैव भारत की पारम्परिक चिकित्सा पद्धति के समर्थक थे। जोहांसबर्ग में जब भारतीय खनिकों में काला प्लेग फैला तब गांधी जी मिट्टी और जल चिकित्सा से कुछ मरीजों को बचाने में सफल रहे। पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार आयुर्वेद, रस, सिद्ध जैसी भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के विकास और विस्तार में संलग्न है। ऐसे में पंचायतें इसका सबसे प्रभावी माध्यम साबित हो सकती हैं। ग्रामीण समाज परंपरागत रूप से इससे जुड़ा है और दूसरी तरफ जड़ी-बूटियों की उपलब्धता ग्रामीण क्षेत्रों में सुलभ है।' गांधी-दर्शन अपने बोध में ग्राम-आत्मनिर्भरता के परिपेक्ष्य में सदैव प्रासंगिक रहा है। इसी तर्क को पुष्ट करते हुए पट्टाभि सीतारमैया का यह कथन उद्धृत है, "गांधीवाद- सिद्धांतों या मतों का, नियमों या व्यवस्थाओं का, आदेशों या निषेधों का समूह नहीं है, वरन् जीवन की एक शैली है। यह जीवन की समस्याओं के प्रति एक नई धारणा का संकेत करता है, या किसी पुरानी धारणा की पुनः व्याख्या करता है, और वर्तमान समस्याओं के लिए पुरातन समाधान प्रस्तुत करता है।"⁷ वस्तुतः सीतारमैया जी के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि गांधीजी के सिद्धांत, नियम अथवा व्यवस्था नकारात्मक पहलू नहीं हैं बल्कि एक ग्राम-आत्मनिर्भरता के सकारात्मक पक्ष को दर्शाते हैं और इसे जीवन की तमाम समस्याओं के समाधान हेतु अपनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

महात्मा गांधी जी हमेशा गाँव के विकास एवं उद्धार की बात करते थे। क्योंकि वे यह मानते थे कि गाँव के विकास से ही देश का विकास होगा। वस्तुतः गांधीजी गाँव की जीवन-शैली, रहन-सहन को अपनाने की बात करते हैं। चूँकि गाँवों में आज भी लोग एक-दूसरे के साथ मिल-जुल कर रहते हैं तथा अपनी जीवन संबंधी आवश्यकताओं के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। वे अपनी जरूरतों की चीजों को स्वयं से उत्पादित करते हैं। गाँव के लोग स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं परंतु उन्हें स्वनिर्भर होने के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों को अपनाने की जरूरत है। वस्तुतः गाँव में हमेशा काम नहीं होता है जिससे उनके पास पैसे की कमी रहती है। गाँव वालों के लिए काम के साथ-साथ मनोरंजन के साधन होने चाहिए, बच्चों के लिए खेल के स्थान, पशुओं के लिए उनका अपना चरागाह होना चाहिए। महात्मा गांधी जी गाँवों को एक आदर्श एवं आत्मनिर्भर गाँव बनाना चाहते थे। ऐसे गाँवों में पूरी साफ-सफाई की व्यवस्था, मकान की बनावट ऐसी होनी चाहिए जिसमें हवा के

लिए रोशनदान, आंगन आदि की व्यवस्था हो, गाँव की गलियों के रास्ते में धूल मिट्टी न हो। जरूरत के अनुसार पानी पीने के लिए गाँव के बाहर कुएं की व्यवस्था होनी चाहिए, पूजा स्थल होना चाहिए, एक ग्रामसभा स्थान होना चाहिए, प्राथमिक और माध्यमिक पाठशाला भी होनी चाहिए, स्वयं के झगड़े निपटाने हेतु पंचायतें होनी चाहिए, अनाज, साग-भाजी, फल और अपनी खादी स्वयं से तैयार करना आदि बातें गांधीजी के आदर्श गाँव में शामिल थे। इन सभी व्यवस्थाओं के माध्यम से एक आत्मनिर्भर गाँव की कल्पना की जा सकती है। अतः गांधी जी मनाते थे कि गाँवों को आत्मनिर्भर बनाए बिना देश को आत्मनिर्भर बनाने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

संदर्भ :

- ¹History of Indian Villages. Retrieved (22.04.2023) form https://www.indianetzone.com/41/history_indian_villages.htm
- ²यंग इंडिया, 23-4-1931
- ³पंत, डी. सी. (2007). *भारत में ग्रामीण विकास*: त्रिलोपिया बाजार, जयपुर. कॉलेज बुक डिपो. पृ. सं. 01-07
- ⁴मो. क. (1948). *संपूर्ण गांधी वाङ्मय*. खंड 89 नई दिल्ली: पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार. पृ. 94
- ⁵पंत, डी. सी. (2007). *भारत में ग्रामीण विकास*: त्रिलोपिया बाजार, जयपुर. कॉलेज बुक डिपो. पृ. सं. 11-17
- ⁶गांधी, मो. क. (1948). *संपूर्ण गांधी वाङ्मय*. खंड 88 नई दिल्ली: पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार. पृ. 82
- ⁷राणा, शिवेन्द्र. (2023, April 11). *गाँधी दर्शन में ग्राम-आत्मनिर्भरता*. Retrieved from <https://www.loknitendra.com/village-self-sufficiency-in-gandhi-philosophy/>

अन्य संदर्भ :

- कुमारप्पा, ब. (2012). *सर्वोदय : अहमदाबाद*. नवजीवन प्रकाशन मंदिर. पृ. सं.140-147.
- देवपुरा, प्र.(2016). *गाँवों का विकास*: पटपड़गंज, दिल्ली. प्रगति संस्थान. पृ. सं. 09-29
- नाणावटी, अ. ठा.(2019). *हिन्द स्वराज*: राजघाट, वाराणसी. सर्व सेवा संघ –प्रकाशन. पृ. सं.77-86

मेलघाट क्षेत्र की कोरकू जनजाति में लोक चिकित्सीय देशज ज्ञान

महेंद्र कुमार जायसवाल¹

mahendrajaiswal712@gmail.com

प्रो. फरहद मलिक²

farhad.mollick@gmail.com

शोध सार

मेलघाट क्षेत्र में कोरकू जनजाति की बहुलता पायी जाती है, जो जंगलों के आस-पास के क्षेत्र में एक स्थाई जीवन जीने का प्रयास करते हैं। उन्हें इन वनों से अपनेपन की अटूट भावना है। जनजातीय समुदायों का जीवन वनों एवं जीव-जंतुओं और पशु-पक्षियों के साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। जनजातियों को वन जीवन से अलग व पृथक नहीं किया जा सकता है क्योंकि एक-दूसरे पर निर्भर होकर रहना ही उनकी प्रकृति एवं स्वभाव है। जंगल जनजातियों के रहने का मूल स्थान है, जंगल ही उनकी जीविका का मुख्य साधन है। जंगलों से उन्हें फल-फूल, कंदमूल, दाना-पानी, वन-औषधि, शहद, घर बनाने का समान आदि मिलता है। मेलघाट के कोरकू जनजातियों के पास अपना खुद का देशज या स्वदेशी लोक चिकित्सीय ज्ञान है, जो आधुनिक वैज्ञानिकों को कुछ नई चीजें सीखा सकती है। मेलघाट में निवास करने वाली जनजातीय आबादी के पास बहुत ही विविध और समृद्ध लोक चिकित्सीय सांस्कृतिक विरासत है, जिसका आस-पास के जंगलों के वनस्पतियों और जीवों के साथ सह-अस्तित्व बना के रखा है। ये अपना ज्यादातर उपचार अलौकिक शक्तियों से ही करते हैं।



बीज शब्द - मेलघाट क्षेत्र, कोरकू जनजाति, जंगल, लोक चिकित्सा, देशज ज्ञान, वन-औषधि, जड़ी-बूटी, पेड़-पौधे, दुर्लभ लोक वनस्पति।

शोध विस्तार

लोक तथा जनजातियों में पारंपरिक पारिस्थितिकी एवं स्थानीय लोक प्रचलित ज्ञान को देशज ज्ञान के रूप में देखते हैं जो मौखिक रूप में धार्मिक परंपराओं एवं रीति-रिवाजों, प्रथाओं, त्योहारों आदि में निहित होता है। लोक चिकित्सीय देशज ज्ञान का अस्तित्व कोरकू जनजातियों में आज भी जीवित है। कोरकू जनजाति में जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है तो लोक चिकित्सक (पड़ियार) उस बीमारी का उपचार वन-औषधि से भी करता है। कोरकू जनजाति का जंगलों में निवास होने के कारण वन-औषधियों से संपर्क बना रहता है। इन जड़ी-

¹ पी.एच. डी. शोधार्थी, मानवविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

² प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

बूटियों को घरेलू चिकित्सा के रूप में मान्यता होने के साथ ही साथ इन्हें धार्मिक दृष्टि से भी आदर का पात्र समझा जाता है। इन लोगों के अधिकांश देवी-देवताओं का निवास स्थान वृक्ष या पौधा एवं पहाड़ होता है। घरेलू चिकित्सा हेतु कोरकू लोग अपने लोक चिकित्सक (पड़ियार) की शरण में जाते हैं। पड़ियार अपना लोक चिकित्सीय ज्ञान सिर्फ अपने चेलों को ही देते हैं। विभिन्न बीमारियों के उपचार हेतु भिन्न-भिन्न वन-औषधियों का इस्तेमाल किया जाता है। कोरकू जनजाति अपनी उपचार पद्धति को अलौकिक विश्वास (*Super-Natural*), पादप (*Flora*), जैव (*Fona*), आदि तथ्यों का प्रयोग औषधि के तौर पर करते हैं।

जीव-जंतुओं से जुड़े स्थानीय लोक चिकित्सीय ज्ञान

कोरकू जनजाति में विभिन्न पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों का प्रयोग लोक औषधि के रूप में देखने को मिलता है। इनका प्रयोग अलग से अथवा वनस्पतियों के साथ संलग्न कर दिया जाता है। कोरकू लोग दमा व खांसी में ज्यादातर काला केकड़ा खिलाते हैं। इससे यह बीमारी ठीक हो जाता है। यह काला केकड़ा बरसात के मौसम में ही मिलता है, इसलिए लोग बरसात में काला केकड़ा खूब पकड़कर लाते हैं, और उसे कूट कर उसका पेय बनाकर पीते हैं, या उसे तवे पर रखकर आमलेट की तरह बनाकर खाते हैं। कोरकू लोग ज्यादातर टी. बी. के बीमारी में घरेलू उपचार के रूप में केकड़ा खूब खिलाते हैं, जिससे यह रोग ठीक हो जाता है। सर्दी के उपचार के लिए भी कोरकू लोग सर्दी होने पर सबसे ज्यादा केकड़े की सूप बनाकर पीते हैं। इनका मानना है कि केकड़ा खाने से सर्दी जल्दी ठीक हो जाता है। ये लोग केकड़े को कूटकर इसका आमलेट जैसा बनाते हैं और उसे बच्चों या जिसको सर्दी हुई है उसे खिलाते हैं। कोरकू लोग ज्यादातर केकड़े को भूनकर खाना ज्यादा पसंद करते हैं। कोरकू लोग सीना दर्द करने पर केकड़े को कूटकर उसका जूस बनाकर पीते हैं, इससे सीने का दर्द चला जाता है।



काला केकड़ा

एक बच्चे को आंते खिसकने की बीमारी थी। उसकी माँ (शोभना) ने नदी का केकड़ा पकड़कर उसे भूना और बच्चे को खाने के लिए दिया और वह बच्चा ठीक हो गया। एक बच्चे को भालू ने बुरी तरह से घायल कर दिया था जब वह बकरियों, मुर्गियों एवं बैलों की देखभाल कर रहा था। माँ-बाप ने एक जंगली सुअर को मारकर बच्चे के जख्मों को गर्म खून में धुला, और उसकी खाल से पट्टी बनाकर इस्तेमाल किया। यह

उपचार भी कारगर रहा। जब किसी व्यक्ति को पेशाब करते समय पेशाब के रास्ते में बहुत दर्द होता है, तब कोरकू लोग सावल नाम की मछली जिसके अंदर एक विशेष प्रकार का पत्थर पाया जाता है, जिसे ये लोग कोरकू बोली में खेड़ा पत्थर बोलते हैं। कोरकू लोग मछली के अंदर से उसको निकाल लेते हैं और उसे धुलकर थोड़ा धूप दिखा देते हैं, जब वह सूख जाता है, तब कोरकू लोग उसको पत्थर पर रगड़कर उसको बारीक कर लेते हैं, और उसके पाउडर नुमा को पानी में घोलकर उस व्यक्ति को पिलाते हैं, जिसको यह समस्या हुई है। वह व्यक्ति अगले दिन ही पेशाब के दर्द में उसे आराम महसूस होने लगता है। यही कारण है कि, इस मछली की कीमत आज बहुत बढ़ गयी है। जंगलों में उपलब्ध पशुओं के सींग, पंख, अस्थि, दाँत, चर्बी तथा मांस का उपयोग लोक समाज के सदस्य दवा के रूप में करते आ रहे हैं। जैसे :-

सावल मछली

जब किसी व्यक्ति को पेशाब करते समय पेशाब के रास्ते में बहुत दर्द होता है, तब ये लोग सावल नाम की मछली जिसके अंदर एक विशेष प्रकार का पत्थर पाया जाता है, जिसे हम लोग कोरकू बोली में खेड़ा पत्थर बोलते हैं। हम लोग मछली के अंदर से उसको निकाल लेते और उसे धुलकर थोड़ा धूप दिखा देते हैं, जब वह सूख जाता है, तब हम लोग उसको पत्थर पर रगड़कर उसको बारीक कर लेते हैं, और उसके पाउडर नुमा को पानी में घोलकर उस व्यक्ति को पिलाते हैं, जिसको यह समस्या हुई है। वह व्यक्ति अगले दिन ही पेशाब के दर्द में उसे आराम महसूस होने लगता है। यही कारण है कि, इस मछली की कीमत आज बहुत बढ़ गयी है।

पेड़-पौधों से जुड़ी स्थानीय लोक चिकित्सीय ज्ञान

कोरकू जनजाति के लोक चिकित्सक अपने क्षेत्र में पाए जाने वाली अनेक वनस्पतियों को वन-औषधि के रूप में उपयोग करते हैं। पादप तथ्यों के अंतर्गत विभिन्न पेड़-पौधों व जड़ी-बूटियों आदि के विभिन्न भागों का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी मात्र एक ही प्रकार के पादप के किसी विशिष्ट भाग यथा जड़, फूल अथवा पत्ती आदि का प्रयोग किया जाता है, लेकिन अधिकांशतया कई पादप तथ्यों को मिलाकर औषधि के तौर पर प्रयोग किया जाता है। औषधीय पौधों, लताओं, वृक्षों की जड़, छाल, पत्ती, फूल, फल तथा बीज का उपयोग विशेष प्रकार की बीमारी को दूर करने के लिए किया जाता है। अब यहाँ उन कुछ प्रमुख औषधीय महत्त्व के पौधों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिनके अलग-अलग भागों का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है, जो निम्नवत है-

डोंगेर बबेरी

जंगली तुलसी (*बबेरी*) यह पौधा एक प्रकार से तुलसी पौधे के जैसा ही होता है, और इसमें बीज बहुत लगते हैं। कोरकू लोग इसके बीज का इस्तेमाल चना बोते समय उसके साथ मिलाकर बोते हैं, जिससे चने में मर रोग नहीं लगता है, और न ही कीड़े लगते हैं।

जंगली भाजी

जंगली भाजी मेलघाट के कोरकू क्षेत्र में बहुतायात से पायी जाती है। इसे बतौर सब्जी के रूप में खाया जाता है। इस सब्जी को बहुत ही शक्तिवर्धक माना जाता है।

पत्थरचटी

पत्थर चटी एक छोटा सा पौधा है जिसका उपयोग नपुंसकता को दूर करने के लिए किया जाता है।

झगडालू

इस पौधे का उपयोग कोरकू लोग हाथ-पैर के कटने, मवादयुक्त घावों पर इसके रस एवं लेप का उपयोग प्रभावकारी होता है।

हाथा जोड़ी

यह एक प्रकार का पौधा है जो साधारण तौर पर जहां झरने जैसे जलस्रोत होते हैं वहाँ यह अधिक पायी जाती है। इसे श्वास संबंधी रोगों के उपचार में इस्तेमाल किया जाता है।

पत्थर धनिया

पत्थर धनिया को मुख्यतः मलेरिया एवं पीलिया के उपचार में उपयोग किया जाता है।

डोडरी

यह भी एक प्रकार का पौधा है जो गीले एवं छायादार स्थानों में उगती है। इसका उपयोग शक्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है।

मोरपंखी

यह एक प्रकार का छोटा पौधा होता है जो कि केवल पथरीले इलाकों में पैदा होती है। इसका उपयोग पेट में कीड़ों की दवा के रूप में उपयोग किया जाता है। कुछ अन्य रोगों के उपचार में भी इसका इस्तेमाल होता है।

हाड़जोड़

यह नमी व शीलन क्षेत्रों में पायी जाने वाली एक प्रकार पौधा है। इस पौधे के दो उपयोग है पहला उपयोग किडनी से संबंधित बीमारियों में है और दूसरा हड्डी टूटने में।

जटा शंकरी

यह एक बड़ा पौधा होता है जिसका उपयोग झाड़-फूँक विशेषज्ञ अलौकिक बीमारियों के उपचार में करते हैं।

हंसराज

इस पौधे की मूसला जड़ को सुखाकर उसका चूर्ण बनाया जाता है। यह बहुत ही शक्तिवर्धक होता है। इसे गर्भवती महिलाओं को विशेष रूप से सेवन करने के लिए दिया जाता है।

बीमारी संबंधित लोक चिकित्सीय ज्ञान

बीमारी और उपचार

सारे बीमारियों के नाम वैद्य के डेली रजिस्टर से संकलित किया गया है।

क्रं.	बीमारी	स्थानीय नाम	लक्षण	उपचार विधि	परहेज (निषेध)
1.	पथरी (किडनी स्टोन)	मूतखड़ा	पेट में दर्द सा बना रहना	सबसे पहले पत्थर के टुकड़े करने की दवा दी जाती है। दूसरी बार प्रेषर से निकालने वाले अर्क दिये जाते और इसमें मिशरी शक्कर भी डाला जाता है। इसके बाद ही सिलीगेटी की भाजी और उसके गुलाबी व सफ़ेद रंग के फूल से अर्क बना कर बासी मुंह रोज सुबह पीना पड़ता है।	इस बीमारी में आयरन व कैल्शियम वाला खाद्य पदार्थ नहीं खाना है। जैसे पालक, दूध, बैंगन, टमाटर आदि। मूंग की दाल व मक्के की रोटी खा सकते हैं।
2.	बवासीर, भगंदर (पाईल्स)	चूमल	मलगुहा में दर्द व खून निकलना	पीला धूतरा व कमरमोड़ी का चूर्ण बनाकर सुबह बासी मुंह खाना पड़ता है। मशरूम की धूनी देकर भी उपचार किया जाता है। साथ ही तुंबा का टोटका रखकर न्योता देना पड़ता है।	इस बीमारी में गरम व तरल पदार्थों जैसे- मटन, मुर्गा, मछली, तेल, आचार, ठेसा, तेज चटनी, मशाला आदि से दूरी बना के रखना पड़ता है। बल्कि ठंडे तासीर की चीजे खिलाना है जैसे चावल, केला, मूंग दाल आदि।
3.	शुगर (डाय बिटीज़)	शक्कर बीमारी	कमजोरी व वजन घटना	सागरगोटी, जामुन का बीज व गिलोय को पीसकर उसके चूर्ण का काढ़ा बनाकर सुबह खाली पेट लेना पड़ता है।	सभी मीठा खाद्य पदार्थ से निषेध
4.	कैंसर	कैंसर	तेज दर्द का बना रहना	दगड़या का जड़ (झगड़ा झाड़) के अर्क को सुबह खाली पेट पीना पड़ता है।	इसमें बादी चीज नहीं खिलाना है जैसे मसूर की दाल, फल्लीदाना, हड्डी युक्त मांस आदि नहीं खाना है।
5.	लकवा (पैरा लिसिस)	लकवा	शरीर का अंग मरणासन्न होना	देव पीपल के झाड़ के जड़ को व्यक्ति के कमर में बाधा जाता है ताकि नसचोक खुल सके। और इसके साथ ही सत्यानाश व विद्यानाश (जड़ी लकवा), अर्जुन छाल (कहु), भुई पलसा (वोटे परसा) के अर्क को खून पतला करने के लिए व्यक्ति को सुबह खाली पेट दिया जाता है।	इस बीमारी में व्यक्ति को ठंडी चीजे नहीं खाना है बल्कि जितना हो सके गरम चीजे खाये जैसे- अंडा, मुर्गा, मटन, गरम सूप आदि। मछली व दारू से पूरी जिंदगी दूर रहना है।

6.	हृदयघात (हार्ट अटैक)		अचानक से हृदय में झटके आना	भुई आंवला का चूर्ण सुबह खाली पेट लेना पड़ता है।	उस व्यक्ति को किसी भी प्रकार का टेंशन न दे और उन्हे शांत स्थान पर रखे।
7.	बुखार	रुआ	शरीर व माथा में तपन	नीम की पत्ती और उसके छाल को उबालकर उसका काढ़ा बनाकर पीने से बुखार में आराम मिल जाता है।	खटाई नहीं खाना है।
8.	खांसी	खांसी	तेज तेज खाँसना	रगतबीड़ा, हरे (हिल्डा), दमा बेल (सांस बेल) का चूर्ण बनाकर सुबह खाली पेट लेना पड़ता है।	ठंडी चीजे नहीं खाना है। पानी उबालकर पिये।
9.	घाव	घाव	शरीर में घाव होना	तिनस (रूठ) का छाल, कमरमोड़ी (टाकली झाड़) को कूटकर घाव में लगाना पड़ता है। घाव में दर्द होने पर सोसो (भिलवा का बीज) रखने से दर्द दूर हो जाता है।	पानी से बचाकर रखे
10.	टी. बी.	टी. बी.	शरीर कमजोर होना	इस बीमारी में व्यक्ति को चालीस दिन तक बकरी के घर में रहना पड़ता है। और उसे बकरे की बोदरा (पचौनी), बकरे का पीत, मुंडी व पैर का सूप पिलाया जाता है।	चावल, शक्कर, दही, खटाई व मूला से निषेध रखना है।

मलेरिया

मेलघाट जंगली क्षेत्र होने के कारण यहाँ बहुत बड़े-बड़े मच्छर लगते हैं, और इनके काटने पर शरीर में बड़े बड़े चकते पड़ जाते हैं। यहाँ के कोरकू लोग इसका निदान अपने देशज मौखिक ज्ञान से करते हैं। ये लोग शाम के समय में ही एक कढ़ाई नुमा बर्तन में कुछ सूखी लकड़ियाँ, गोबर के कंड़े, खर-पतवार एवं ऊपर से ढेर सारी नीम की सूखी पत्तियों को उसमें रखकर सुलगा देते हैं। जिससे धुआँ तेजी से फैलने लगता है। और मच्छर बहुत तेजी से भागने लगते हैं, क्योंकि यह आँखों में बड़ी तेजी से लगता है। और मच्छर धुआँ में फसकर तेजी से मरने लगते हैं, मच्छर वह स्थान छोड़कर भाग जाते हैं। और ये लोग रात को चैन से सो पाते हैं। और अब कोरकू लोग मच्छर से बचने के लिए मच्छरदानी का भी उपयोग धीरे धीरे करने लगे हैं।

पीलिया

इस बीमारी के उपचार हेतु वंदुरिया बेल खिलाई जाती है। इसके साथ ही साथ झाड़-फूँक भी की जाती है। पीड़ित व्यक्ति को मिर्च मशाला, तेल आदि खाने से परहेज करने के लिए कहा जाता है।

लकवा

पड़ियार का मानना है कि “लकवा का उपचार भी हम मंत्र से ही करते हैं। लकवा से प्रभावित स्थान पर मंत्र पढ़कर फूँकते हैं, और पानी में मंत्र फूँककर उसे पीने के लिए भी देते हैं, जिससे लकवा में सुधार होने

लगता है। गठिया का इलाज कोरकू लोग इस प्रकार करते थे- वे एक ऐसा बच्चा ढूँढते थे जो पैरों के बल पैदा हुआ हो। इस बच्चे के बाएँ पैर से मरीज के शरीर का वह हिस्सा छुआया जाता था, जहां गठिया का दर्द हो। साथ ही बाघ की चर्बी गठिया और मोच की अचूक दवा है।

दमा व खांसी

हम लोग दमा व खांसी में ज्यादातर काला केकड़ा खिलाते हैं। इससे यह बीमारी ठीक हो जाता है। यह काला केकड़ा बरसात के मौसम में ही मिलता है, इसलिए लोग बरसात में खूब पकड़कर लाते हैं, और उसे कूट कर उसका पेय बनाकर पीते हैं, या उसे तवे पर रखकर आमलेट की तरह बनाकर खाते हैं। कोरकू लोग खांसी में कच्चा लहशुन खाते हैं, और घासलेट (मिट्टी का तेल) से सीने की मालिश करते हैं। इससे खांसी में बहुत आराम मिलता है। गूलर का दूध गरम पानी में मिलाकर पीने से खांसी में काफी लाभ मिलता है। खांसी में अदरक व तुलसी का रस और शहद घोलकर पीने से भी बहुत आराम मिलता है।

चक्कर आना

लड़ईया का पत्ता सुंघाने से चक्कर आना बंद हो जाता है।

आंते खिसकना

एक बच्चे को आंते खिसकने की बीमारी थी। उसकी माँ (शोभना) ने नदी का केकड़ा पकड़कर उसे भूना और बच्चे को खाने के लिए दिया। और वह बच्चा ठीक हो गया। एक बच्चे को भालू ने बुरी तरह से घायल कर दिया था जब वह बकरियों, मुर्गियों एवं बैलों की देखभाल कर रहा था। माँ-बाप ने एक जंगली सुअर को मारकर बच्चे के ज़ख्मों को गर्म खून में धुला जाता है, और उसकी खाल से पट्टी बनाकर इस्तेमाल किया जाता है। यह उपचार भी कारगर रहा। पड़ियार (मनसा राम) का कहना है कि, माँ के स्तन से दूध सीधे आँख में डालकर वह मोतियाबिंद का इलाज करने की कोशिश करते रहे हैं।

पेट फूलने की बीमारी

चिटकी नमक पौधे की जड़े एवं पत्तों को पीसकर महलोन पत्ते में पेट पर बांधने से पेट फूलना बंद हो जाता है।

मोतीझिरा

इस बीमारी के इलाज हेतु वनछूरिया बेल की जड़ खिलाई जाती है। इसके अलावा लिपरिस कांदा पीसकर खिलाया जाता है। उक्त जड़ी-बूटी के साथ-साथ मुरलिव की पत्ती भी खिलाई जाती है।

चोट

रूटू पेड़ के छाल को कूटकर चोट में लगाने पर बहुत आराम मिलता है। भिलवा के बीज सोसो को चोट पर लगाने से चोट अच्छा हो जाता है। भिलवा का बीज दर्द में भी बहुत आराम करता है। जिसका फल खाने और उसके तेल के डमे से दर्द का उपचार किया जाता है।

बुखार

कोरकू लोग बुखार होने पर पीड़ित व्यक्ति को खाना देना बंद कर देते हैं और उसको कुटकी के चावल को उबालकर उसके मांड में हल्दी मिलाकर गरम-गरम पीने के लिए दिया जाता है। इससे बुखार में काफी आराम मिलता है। कुछ लोग बुखार में ठीक होने के लिए गिलकी की सब्जी खाते हैं, क्योंकि यह ठंडी ताशीर की होती है। बुखार में पड़ियार उस व्यक्ति की स्थिति की जानकारी लेकर उसके उपचार हेतु एक लोटा पानी लेकर पड़ियार अपने सभी देवों की अर्जी लगाता है, और मंत्र पढ़ते हुए पानी में फूँक मारता है, और मन्नत करता है और उस पानी को बुखार से पीड़ित व्यक्ति को पिलाता है। जिससे वह एक दो दिन में अच्छा हो जाता है। बुखार में लड़ईया का पत्ता भी सुंघाया जाता है।

सीने में दर्द

कोरकू लोग सीना दर्द करने पर केकड़ा को कूटकर उसका जूस बनाकर पीते हैं, इससे सीने का दर्द चला जाता है।

दाद-खाज-खुजली

बल्लार की पत्ती को दाद में रगड़ने से दाद ठीक हो जाता है।

सर्दी

सर्दी में कोरकू लोग चावल नहीं खाते हैं, और गरम पानी पीते हैं। सर्दी के उपचार के लिए कोरकू लोग सर्दी होने पर सबसे ज्यादा केकड़े की सूप बनाकर पीते हैं। इनका मानना है कि केकड़ा खाने से सर्दी ठीक हो जाता है। ये लोग केकड़े को कूटकर इसका आमलेट जैसा बनाते हैं, और उसे बच्चों या जिसको सर्दी हुई है, उसे खिलाते हैं। ये लोग ज्यादातर केकड़े को भूनकर खाना ज्यादा पसंद करते हैं। कुछ लोग सर्दी में कच्चे लहशुन को छीलकर उसका माला बनाकर गले में पहनते हैं। उनका कहना है कि कच्चे लहशुन की गर्मी से सर्दी धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। कुछ लोग काढ़ा बनाकर पीते हैं, जिसमें ये लोग कालीमिर्च, हल्दी, दालचिन्नी, लौंग, छोटी इलायची, तुलसी, अदरक व गुड़ को साथ में मिश्रित करके उबाल कर पीने से सर्दी में बहुत राहत देता है।

टी. बी. रोग

कोरकू लोग ज्यादातर टी. बी. के बीमारी में घरेलू उपचार के रूप में केकड़ा खूब खिलाते हैं, जिससे यह रोग ठीक हो जाता है।

फोड़ा

कोरकू लोगों की मान्यता है कि, जो व्यक्ति कच्चा पपीता खा लेता है, जिसमें अभी दूध निकलता हो उस व्यक्ति को फोड़ा निकल जाता है। इसलिए कोरकू लोग पेड़ से पपीता तभी तोड़ते हैं, जब तक वह दिल खोलकर पक नहीं जाता है।

पेचिश

कपास की पत्ती पीसकर पिलाने से पेचिश में आराम मिलता है। बुखार एवं पीलिया में कोरकू लोग कपास की पत्ती और हिरंडी की पत्ती को आपस में मिलाकर उसे कूटकर उसके रस को पिलाने से बहुत आराम मिलता है।

शोध-निष्कर्ष

जंगल और मनुष्य के बीच घनिष्ठ संबंध रहा है। मनुष्य ने जंगल से खाद्य-संकलन, शिकार, खेती, पशुपालन व ईंधन का ही ज्ञान अर्जित नहीं किया है बल्कि उसने जंगल के पेड़-पौधों के औषधीय गुणों को भी पहचाना है और उनका उपयोग अपनी बीमारियों को दूर करने के लिए भी किया है। मानव पौधों का उपयोग औषधियों के रूप में प्रागैतिहासिक काल से करता आ रहा है। मानव ने इन वनस्पतियों का प्रयोग अलग-अलग रूपों में किया है चाहे वह औषधियों के रूप में या अन्य खाद्य रूपों में, लेकिन यह कह पाना कठिन है कि मानव ने बीमारियों के इलाज के लिए पौधों का उपयोग कब से किया होगा? शायद कई बार प्रयोग करने से उसे पता चला होगा कि इन वनस्पतियों में प्रयुक्त गुण जो अनेक बीमारियों का उपचार करते हैं वही ज्ञान ही चिकित्सा के रूप में विकसित हुआ होगा। इस संदर्भ में कृपनर (2003) का मानना है कि “लोक चिकित्सा उपचार का अभ्यास एक जटिल बहुविषयक पद्धति के रूप में कार्यरत है, जिसमें सदियों से लोग औषधीय पौधों, प्राकृतिक वातावरण और अलौकिक शक्तियों का उपयोग करते आ रहे हैं।”

लोक तथा जनजाति में पारंपरिक पारिस्थितिकी एवं स्थानीय लोक प्रचलित ज्ञान को देशज ज्ञान के रूप में देखते हैं जो मौखिक रूप में धार्मिक परंपराओं एवं रीति-रिवाजों, प्रथाओं, त्योहारों आदि में निहित होता है। लोक चिकित्सीय देशज ज्ञान का अस्तित्व कोरकू जनजातियों में आज भी जीवित है। उदाहरण स्वरूप जंगली ‘बबेरी’ यह पौधा एक प्रकार से तुलसी पौधे के जैसा ही होता है, और इसमें बीज बहुत लगते हैं। कोरकू लोग इसके बीज का इस्तेमाल चना बोते समय उसके साथ मिलाकर बोते हैं, जिससे चने में मर् रोग नहीं लगता है, और न ही कीड़े लगते हैं। वही ‘रूटू’ पेड़ के छाल को कूटकर चोट में लगाने पर बहुत आराम मिलता है। भिलवा के बीज सोसो को चोट पर लगाने से चोट अच्छा हो जाता है। भिलवा का बीज दर्द में भी बहुत आराम करता है। बल्लार की पत्ती को दाद में रगड़ने से दाद ठीक हो जाता है। कोरकू लोग खांसी में कच्चा लहसुन खाते हैं, और घासलेट (मिट्टी का तेल) से सीने की मालिश करते हैं। इससे खांसी में बहुत आराम मिलता है। गूलर का दूध गरम पानी में मिलाकर पीने से खांसी में काफी लाभ मिलता है। खांसी में अदरख व तुलसी का रस और शहद घोलकर पीने से भी बहुत आराम मिलता है। कपास की पत्ती पीसकर पिलाने से पेचिश में आराम मिलता है। बुखार एवं पीलिया में कोरकू लोग कपास की पत्ती और हिरंडी की पत्ती को आपस में मिलाकर उसे कूटकर उसके रस को पिलाने से बहुत आराम मिलता है।

लोक चिकित्सा एक ऐसी विलक्षण और महत्वपूर्ण विरासत है, जो कि अभी नहीं तो कभी नहीं की स्थिति में व्याप्त है। जब हम गहराई से देखते हैं तो पाते हैं कि आधुनिक जीवन शैली का व्यापक प्रभाव परंपरागत ज्ञान पर पड़ा है। लोक चिकित्सा जनजातीय समाज में अलिखित स्वरूप में प्रचलित देखने को मिलती है। यह समाज द्वारा मान्यता प्राप्त सामाजिक औषधि प्रणाली है, जो मौखिक रूप में अथवा जन-परम्पराओं के माध्यम से विभिन्न निषेधों, टोटम, विश्वास, नियम कानून और प्रथाएं इत्यादि के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती रहती है। जनजातियों में रोगों का वर्गीकरण और उनके उपचार के तरीके उनकी सांस्कृतिक प्रणाली का एक हिस्सा है। लोक चिकित्सा प्रणाली प्रत्येक आदिवासी संस्कृति का अभिन्न अंग है, जो कि बदलती जनजाति संस्कृति के साथ विलुप्त हो रही है। अर्थात् यह ज्ञान अलिखित रूप में होने के कारण इसका दिन प्रतिदिन हास हो रहा है।

संदर्भ :-

गांधी, महात्मा (1954). *कुदरती उपचार*. अहमदाबाद : नवजीवन मुद्रणालय.

अमानुल्लाह, मो. तथा अन्य (1990). *मंडला जिले की बैगा जनजाति में परंपरागत चिकित्सा पद्धति*. भोपाल: आदिमजाति अनुसंधान संस्थान.

बसु, बिमान (2000). *मानव की कहानी*. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत.

गोगुलवार, सतीश एवं प्रेमचंद गोलछा (2001). *गोंडवाना की वन-औषधियाँ (द्वितीय संस्करण)*. चंद्रपुर : हरिवंश प्रकाशन.

कुमार, विनय (2004). *जौनसर बावर जनजाति के अजूबे चिकित्सा पद्धति*. वन्यजाति, वैल्यूम 52, न. 4, पृ. 40-48.

टोप्पो, बिरेन्द्र (2006). *उरांव समाज में परंपरागत चिकित्सा पद्धति का मानव वैज्ञानिक अध्ययन*. कोलकाता : भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण.

खनूजा, जुर्गिंदर कौर (2006). *प्राकृतिक चिकित्सा*. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.

पाण्डेय, गया (2007). *भारतीय जनजातीय संस्कृति*. नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी प्रा. लि. पृ. 512-513.

शर्मा, अवधेश एवं निवेदिता शर्मा (2012). *सामाजिक-सांस्कृतिक मानव विज्ञान*. इलाहाबाद: अभिव्यक्ति प्रकाशन. पृ. 512-513.

गौतम, राजेश कुमार (2012). *छत्तीसगढ़ के पहाड़ी कोरवाओं पर पारंपरिक चिकित्सा अध्ययन*. कोलकाता : भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण.

प्रेमी, जितेंद्र कुमार (2015). *मंझवार जनजाति की धार्मिक मान्यताएँ एवं क्रियाकलाप*. रायपुर : ए & वी पब्लिकेशन्स.

- बिश्वास, नरेश (2015). *सोयेल: जंगल के खान-पान और पोषण*. मंडला: निर्माण वैकल्पिक विकास एवं सहभागी शोध संस्थान.
- बिश्वास, नरेश (2015). *कांदा: जंगल के खान-पान और पोषण*. मंडला: निर्माण वैकल्पिक विकास एवं सहभागी शोध संस्थान.
- बिश्वास, नरेश (2015). *ब्रम्हरकास: जंगल के खान-पान और पोषण*. मंडला: निर्माण वैकल्पिक विकास एवं सहभागी शोध संस्थान.
- मीणा, गंगा सहाय (2016 जुलाई - नवंबर). *आदिवासी साहित्य (आदिवासी दर्शन और समकालीन साहित्य सृजन त्रैमासिकी)*. नई दिल्ली : 81 न्यू ट्रांजिट हाउस एवं क्विक ऑफसेट. वर्ष-2, अंक-7-8.
- शलभ, शशिभूषण (2016). *जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियां*. दिल्ली : राजा पॉकेट बुक्स.
- तुमराम, विनायक (2016). *आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म*. वर्धा: सुधीर प्रकाशन.
- पाण्डेय, गया (2017, मार्च-जून). *चिकित्सात्मक मानवशास्त्र*. नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी प्रा. लि.
- पाण्डेय, वंदना एवं अशोक मिश्र (2017). *चौमासा*. भोपाल: आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद. वर्ष-33, अंक-103.
- हरारी, युवाल नोआ (2018). *सेपियंस मानव-जाति का संक्षिप्त इतिहास*. नई दिल्ली: मंजुल पब्लिशिंग हाउस.
- चौधरी, विश्वस्वरूप राय (2018). *हॉस्पिटल से जिंदा कैसे लौटे*. नई दिल्ली: डायमंड बुक्स.
- पाण्डेय, वंदना एवं अशोक मिश्र (2018). *सम्पदा: मध्यप्रदेश की जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का साक्ष्य*. भोपाल: आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी.
- शर्मा, रामगोपाल (2018). *प्राकृतिक चिकित्सा*. नई दिल्ली : ग्रंथ अकादमी.

भारत छोड़ो : आजादी के लिए एक ऐतिहासिक जन आंदोलन

प्रविण दामोदरराव कोल्हे¹

pravinkolhe036@gmail.com

परिचय

भारत छोड़ो आंदोलन, जिसे 'अगस्त क्रांति' के नाम से जाना जाता है, स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी द्वारा शुरू किया गया एक सविनय अवज्ञा आंदोलन था। इसका उद्देश्य निष्क्रिय प्रतिरोध के माध्यम से ब्रिटिश सरकार को बातचीत की मेज पर लाना था। यह ऐतिहासिक आंदोलन द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में चला। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ। इस युद्ध में ब्रिटेन भी अपने सहयोगी देशों के साथ शामिल था चूंकि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था इसलिए ब्रिटिश शासन ने बिना भारतीयों से सलाह मशवरा किये बिना इस बात की घोषणा कर दी की भारत भी इस युद्ध में शामिल है। इस एकतरफा फैसले पर कांग्रेस वर्किंग कमिटी (CWC) और महात्मा गाँधी जी ने अपनी नाखुशी जाहिर की और घोषणा की कि भारत इस युद्ध का हिस्सा नहीं है, क्योंकि यह युद्ध फासीवाद और सम्राजवाद के खिलाफ था लेकिन ब्रिटेन खुद एक साम्राजवादी सत्ता थी, इसी बीच इंग्लैंड में महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हुआ, विस्टन चर्चिल प्रधानमंत्री के रूप में सत्ता में आए। वह एक रूढ़िवादी नेता होने के कारण वह भारतीयों के मांगों से प्रभावित नहीं हुए, उन्होंने कांग्रेस द्वारा की गई मांगों को अस्वीकार किया। इससे समूचे भारत वर्ष में असंतोष की लहर उमड़ पड़ी इसी के चलते भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और गांधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन चलाये जाने का फैसला किया।¹

मार्च 1942 में, ब्रिटिश सरकार ने स्टेफर्ड क्रिप्स के तहत भारत में एक प्रतिनिधिमंडल भेजा, जिसे क्रिप्स मिशन के रूप में जाना जाने लगा। मिशन का उद्देश्य युद्ध के दौरान कुल सहयोग प्राप्त करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ बातचीत करना था। वार्ता विफल हो गई क्योंकि उन्होंने प्रमुख मांग को संबोधित नहीं किया। इसने केवल सीमित प्रभुत्व-स्थिति की पेशकश की जो कांग्रेस पार्टी के लिए पूरी तरह से अस्वीकार्य थी।² क्रिप्स मिशन से पहले, उसके दौरान और बाद में, भारत सरकार "सामान्य राजनीतिक और सार्वजनिक गतिविधियों को भी दबाने में लगी हुई थी।"³ इसके अलावा, अन्य कारक भी थे। जिसने संघर्ष को अपरिहार्य और आवश्यक दोनों बना दिया। लोकप्रिय असंतोष, बढ़ती कीमतों और युद्ध के समय उत्पादन में कमी, धीरे-धीरे उच्च-स्तरीय सरकारी कार्रवाइयाँ जैसे कि बंगाल और उड़ीसा में नाव बनाने वाले उद्योग पर कड़े प्रतिबंध लगाए ताकि जापानी इन नावों का इस्तमाल न कर सके। इसने लोगों में काफी रोष पैदा कर दिया था। दक्षिण-पूर्व एशिया और बर्मा से मित्र देशों की वापसी और ब्रिटिश वापसी की खबर और असम-बर्मा सीमा से घायल सैनिकों को लाने वाली ट्रेनों ने इस भावना की पुष्टि की।⁴

मई 1942 में, महात्मा गांधी ने ब्रिटेन से आह्वान किया कि "भारत को ईश्वर पर छोड़ दें। यदि यह बहुत अधिक है तो उसे अराजकता पर छोड़ दें।" जुलाई 1942 में वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई। यहां

¹ पी-एच. डी. शोधार्थी, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

एक प्रस्ताव पारित किया गया। वर्धा प्रस्ताव को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के नाम से भी जाना जाता है। प्रस्ताव में मांग की गई कि "भारत में ब्रिटिश शासन तुरंत समाप्त होना चाहिए" और इसने घोषणा की कि स्वतंत्र भारत "स्वतंत्रता के संघर्ष में और नाजीवाद, फासीवाद और साम्राज्यवाद के आक्रमण के खिलाफ अपने महान संसाधनों को लगाकर सफलता सुनिश्चित करेगा।"⁵ प्रस्ताव में आगे कहा गया है कि भारत के लिए और राष्ट्रसंघ के उद्देश्य की सफलता के लिए भारत में ब्रिटिश शासन की तत्काल समाप्ति एक तत्काल आवश्यकता है। इस प्रस्ताव को बंबई सत्र में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में मामूली संशोधनों के साथ अनुमोदित किया गया था और गांधी के नेतृत्व में एक अहिंसक जन संघर्ष को मंजूरी दी गई थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का ऐतिहासिक सत्र 7 अगस्त को शुरू हुआ और बॉम्बे के गोवालिया टैंक मैदान में 8/9 अगस्त 1942 की मध्यरात्रि के बाद संपन्न हुआ। आंदोलन अहिंसक तर्ज पर एक बड़े पैमाने पर विरोध के साथ था, जिसमें गांधी ने "भारत से एक व्यवस्थित ब्रिटिश वापसी" का आह्वान किया था। अपने भावुक भाषणों के माध्यम से, गांधी ने "प्रत्येक भारतीय जो स्वतंत्रता की इच्छा रखता है और इसके लिए प्रयास करता है, उसका अपना मार्गदर्शक होना चाहिए" की घोषणा करके लोगों को प्रेरित किया। जिस दिन भारत छोड़ो आंदोलन की घोषणा की गई थी। उन्होंने सबसे पहले यह स्पष्ट किया कि वास्तविक संघर्ष इसी क्षण शुरू नहीं होता है। आपने केवल अपनी सारी शक्तियाँ मेरे हाथों में सौंप दी हैं। अब मैं वायसराय से कांग्रेस की मांग को स्वीकार करने के लिए विनती करूंगा। इस प्रक्रिया में दो या तीन सप्ताह लगने की संभावना है।" लेकिन उन्होंने आगे कहा: "आप मुझसे यह मान सकते हैं कि मैं मंत्रालयों और इस तरह के लिए वायसराय के साथ सौदेबाजी नहीं करने जा रहा हूँ। मैं पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी चीज से संतुष्ट नहीं होने जा रहा हूँ। हो सकता है, वह नमक कर, शराब की बुराई आदि को समाप्त करने का प्रस्ताव करे। लेकिन मैं कहूंगा: "स्वतंत्रता से कम कुछ भी नहीं।" उन्होंने लोगों से कहा, "एक मंत्र है, छोटा है, जो मैं आपको देता हूँ। अपने दिल और अपनी हर सांस को इसकी अभिव्यक्ति दें। मंत्र है "करो या मरो"। भारतीयों को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एक आखिरी संघर्ष करना है या उस प्रयास में मरना है। हम या तो भारत को आज़ाद करेंगे या इस प्रयास में मरेंगे हम अपनी दासता को स्थायी होते देखने के लिए जीवित नहीं रहेंगे।"⁶ उसी रात पुलिस ने महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया और गांधीजी के भाषण के चौबीस घंटे से भी कम समय में पूरे कांग्रेस नेतृत्व को कारावास में डाल दिया गया, और बड़ी संख्या में कांग्रेसी नेताओं को शेष समय जेल में बिताना पड़ा। महात्मा गांधी को पुणे में आगा खान पैलेस ले जाया गया और कांग्रेस कार्य समिति के सदस्यों को अहमदनगर किले में भेजा गया। कांग्रेस पार्टी को एक अवैध संगठन घोषित किया गया। पूरे भारत में इसके कार्यालयों पर छापा मारा गया और धन को रोक दिया गया। प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के कारण, एक युवा और तब तक अपेक्षाकृत अज्ञात रही अरुणा आसफ अली ने 9 अगस्त, 1942 को एआईसीसी सत्र की अध्यक्षता की। सरकार ने सार्वजनिक जुलूसों, बैठकों और सभाओं पर प्रतिबंध लगाने का आदेश जारी किया। पुलिस की चेतावनी के बावजूद गोवालिया टैंक मैदान में काफी भीड़ जमा हो गई थी। अरुणा आसफ अली ने मैदान में तिरंगा फहराया।

आंदोलन और सरकार द्वारा दमन

प्रत्यक्ष नेतृत्व के अभाव के बावजूद पूरे देश में बड़े पैमाने पर विरोध और प्रदर्शन हुए। कर्मचारी अनुपस्थित रहे और हड़तालों का आह्वान किया गया। सभी प्रदर्शन शांतिपूर्ण नहीं थे। कुछ स्थानों पर बम विस्फोट हुए, सरकारी भवनों में आग लगा दी गई, बिजली काट दी गई और परिवहन तथा संचार लाइनें तोड़ दी गईं। राम

मनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, एस.एम. जोशी, रामानंद मिश्र, जयप्रकाश नारायण और सुचेता कृपलानी और सादिक अली सहित 'कांग्रेस कार्यसमिति' के पदाधिकारी ने भूमिगत होकर भारत छोड़ो आंदोलन को आगे बढ़ाने का फैसला किया। आंदोलन में शामिल होने के लिए छात्रों ने अपने स्कूल और कॉलेज छोड़ दिए। मजदूरों, किसानों आदि के अलावा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, अन्नामलाई विश्वविद्यालय आदि के छात्रों ने इसे एक स्वतःस्फूर्त जन-आंदोलन को जन विद्रोह में बदल दिया। कई राष्ट्रीय नेता भूमिगत हो गए और गुप्त रेडिओ स्टेशनो पर से सन्देश प्रसारित करके, पर्चे बाँट कर और कहीं जगह पर सामानांतर सरकारों की स्थापना कर अपना संघर्ष जारी रखा। ब्रिटिश सरकार ने इसके विरोध में कई गिरफ्तारियां की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में हुई। इस चरण में विशेष रूप से प्रतिरोध के महत्वपूर्ण केंद्र पूर्वी यूपी में आजमगढ़, बलिया और गोरखपुर और बिहार में गया, भागलपुर, सारण, पूर्णिया, शाहाबाद, मुजफ्फरपुर और चंपारण रहे।⁷

भारत छोड़ो आंदोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि देश के कुछ हिस्सों में समानांतर सरकारों के रूप में जाना जाने वाली सरकारों का उदय हुआ। इसमें सबसे पहले चित्तू पांडे के नेतृत्व में बलिया, पूर्वी यूपी में 'समानान्तर सरकार' की घोषणा की गई, जो खुद को गांधीवादी कहते थे। बंगाल के मिदनापुर जिले में तामलुक, क्षेत्र में सतीश चंद्र सामंत, सुशील कुमार धरा, अजोय मुखर्जी और मतंगनी हाजरा आदि के नेत्रित्व में जातीय सरकार 17 दिसंबर 1942 को अस्तित्व में आई और सितंबर 1944 तक चली। तामलुक एक ऐसा क्षेत्र था जहां गांधीवादी रचनात्मक कार्यों ने काफी प्रगति की थी और यह पहले के जन संघर्षों का स्थल भी था। सतारा (महाराष्ट्र) में क्रांतिसिंह नाना पाटील के नेत्रित्व में समानांतर सरकार का गठन किया गया, जो सबसे लंबे समय तक चलने वाली और प्रभावी समानांतर सरकार के आधार के रूप में उभरी।

भारत सरकार ने आंदोलन को दबाने के लिए अपनी पूरी मशीनरी को काम में लगा दिया। इस आंदोलन को कुचलने के लिए पूरे देश से कुल 100,000 से अधिक गिरफ्तारियां की गईं, बड़े पैमाने पर जुर्माना लगाया गया।⁸ पुलिस और सेना की गोलियों ने सैकड़ों प्रतिरोधियों और निर्दोष लोगों को मार डाला। वर्ष (1942) के अंत तक, पुलिस और सेना ने 538 बार गोलीबारी की, जिसके परिणामस्वरूप 40 लोग मारे गए, और 1630 घायल हुए। इसी अवधि के दौरान लगभग 26,000 लोगों को दोषी ठहराया गया और 18,000 को हिरासत में लिया गया। लोगों से जुर्माने के रूप में 25,000,000 रु. एकत्र किए गए।⁹

कांग्रेस रेडियो: एक अनोखा प्रयोग:

14 अगस्त 1942 को उषा मेहता और उनके कुछ करीबी सहयोगियों ने गुप्त कांग्रेस रेडियो की शुरुआत की जिसका पहला प्रसारण 27 अगस्त 1942 को हुआ। इस रेडियो ने गांधीजी के रिकॉर्ड किए गए राष्ट्रवादी गीतों और क्रांतिकारियों एवं भारत भर के अन्य प्रख्यात नेताओं के उत्तेजित भाषानो को प्रसारित किया इस रेडियो स्टेशन के जरिये भूमिगत गतिविधियों की खबरें प्रसारित की जाती थी और स्वतंत्रता सेनानियों को उनके संघर्ष में निर्देशित करता था। यह 'बंबई में कई जगह पर स्थित था। और बार-बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था। इस शानदार गतिविधि के पीछे डॉ. उषा मेहता का दिमाग था; वह तब बंबई में एक छात्रा थीं।

गांधीजी का उपवास और जेल से रिहाई

तीन साल से अधिक समय तक कांग्रेस का पूरा नेतृत्व बाकी दुनिया से कटा रहा। गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा गांधी और उनके निजी सचिव महादेव देसाई की कुछ ही महीनों में मृत्यु हो गई, और गांधी का अपना स्वास्थ्य खराब होता जा रहा था। इसके बावजूद, गांधीजी ने “21 दिन का उपवास” किया और अपने प्रतिरोध को जारी रखने के लिए एक अलौकिक संकल्प बनाए रखा, गांधीजी गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। लॉर्ड वेवेल ने अक्टूबर 1943 में लिनलिथगो से वायसराय का पदभार ग्रहण किया। गांधीजी को जेल में मरते देखने के बजाय लॉर्ड वेवेल ने उन्हें 6 मई, 1943 को रिहा करना पसंद किया। चिकित्सा आधार पर गांधीजी की रिहाई के साथ, राजनीतिक गतिविधि फिर से तेज हो गई। कांग्रेस मशीनरी के पुनर्गठन पर विशेष जोर देने के साथ रचनात्मक कार्य कांग्रेस की गतिविधि का मुख्य केंद्र बन गया। कांग्रेस समितियों को अलग-अलग नामों से पुनर्जीवित किया गया। कांग्रेस कार्यकर्ता सभाएं या कांग्रेसियों की प्रतिनिधि सभाओं के तहत पुनर्जीवित किया गया जिससे कांग्रेस समितियों पर लगा प्रतिबंध अप्रभावी हो गया। कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने, सदस्यता अभियान चलाने और कोष संग्रह का कार्य हाथ में लिया गया। रचनात्मक कार्यक्रम की आड़ में कांग्रेस के इस पुनर्गठन को सरकार द्वारा गंभीर संदेह के साथ देखा जाने लगा, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने किसी दमनकारी कार्रवाई पर विचार नहीं किया गया और वायसराय को एक प्रस्ताव तैयार करने की दिशा में निर्देशित किया गया (जिसे वेवेल ऑफर या शिमला सम्मेलन के रूप में जाना जाता है), जो एक समझौते को प्रभावित करके संघर्ष को रोक सके। जापान के साथ युद्ध समाप्त होने से पहले कांग्रेस के नेताओं को जून 1945 में शिमला सम्मेलन में भाग लेने के लिए रिहा कर दिया गया। जिससे अगस्त 1942 से चल रहे टकराव के दौर की समाप्ति हो गई।¹⁰

इस आंदोलन के प्रति भारत के अन्य राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण:

आंदोलन की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि 1942 के आंदोलन में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) शामिल नहीं हुई थी। वे इसे 'जनयुद्ध' के रूप में मानने लगे। उन्होंने युद्ध के प्रयासों में सरकार के लिए पूर्ण समर्थन की वकालत की और कांग्रेस पार्टी द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव को वापस लेने की मांग की। वे यह भी चाहते थे कि कांग्रेस पाकिस्तान के मुद्दे पर मुस्लिम लीग के साथ बातचीत शुरू करे। सरकार ने अब उन कम्युनिस्ट नेताओं को रिहा कर दिया, जिन्हें युद्ध के शुरुआती चरणों में कैद कर लिया गया था। और अंग्रेजों ने पार्टी पर से प्रतिबंध हटा लिया। “मुस्लिम लीग ने पूरे आंदोलन के दौरान स्थिति का फायदा उठाने की कोशिश की। और सरकार के प्रति “परोपकारी तटस्थता” का रवैया बनाए रखा।”¹¹

“हिंदू महासभाने खुले तौर पर भारत छोड़ो आंदोलन के आह्वान का विरोध किया और आधिकारिक रूप से इसका बहिष्कार किया। जिस दिन गांधीजी और कांग्रेस के नेताओं को गिरफ्तार किया गया उसी समय हिंदू महासभा ने लोगो से यह आह्वान किया की “कांग्रेस के इस कदम के लिए कोई भी समर्थन ना करे”¹² बंगाल में हिंदू महासभा के नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने ब्रिटिश सरकार को एक पत्र लिखा कि अगर कांग्रेस ने ब्रिटिश शासकों को भारत छोड़ो का आह्वान किया तो उन्हें कैसे प्रतिक्रिया देनी चाहिए। 26 जुलाई, 1942 के इस पत्र में उन्होंने लिखा था: “अब मैं उस स्थिति का उल्लेख करता हूँ जो कांग्रेस द्वारा शुरू किए गए किसी भी व्यापक आंदोलन के परिणामस्वरूप प्रांत में पैदा हो सकती है। कोई भी, जो युद्ध के दौरान, जन भावना को

भड़काने की योजना बनाता है, जिसके परिणामस्वरूप आंतरिक गड़बड़ी या असुरक्षा होती है, तो सरकार को ऐसे तत्वों के खिलाफ उचित कार्यवाही करनी चाहिए।

आंदोलन का महत्व

भारत छोड़ो आंदोलन ने ब्रिटिश और भारतीय जीवन शैली के कई पहलुओं को प्रभावित किया। भारत छोड़ो आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक यह थी कि इसने इस चुनौती पूर्ण समय में कांग्रेस पार्टी को एकजुट रखा। इस ऐतिहासिक आंदोलन का बड़ा महत्व यह था कि इसने स्वतंत्रता की मांग को राष्ट्रीय आंदोलन के तत्काल एजेंडे पर रखा। भारत छोड़ो के बाद कोई पीछे नहीं हट सकता था। ब्रिटिश सरकार के साथ भविष्य की कोई भी बातचीत सत्ता के हस्तांतरण के तरीके पर ही हो सकती थी। स्वतंत्रता अब सौदेबाजी का विषय नहीं रह गई थी। यह आंदोलन स्वतंत्रता के अंतिम चरण को इंगित करता है इसने गाँव से लेकर शहर तक ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी, इससे भारतीय जनता के अंदर आत्मविश्वास बढ़ा और समानांतर सरकारों के गठन से जनता काफी उत्साहित हुई इसमें महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और जनता ने नेतृत्व अपने हाथ में लिया जो राष्ट्रीय आंदोलन के परिपक्व चरण को सूचित करता है इस आंदोलन के दौरान पहली बार राजाओं को जनता की संप्रभुता स्वीकार करने को कहा गया।¹³ इस आंदोलन में राम मोहन लोहिया, जय प्रकाश नारायण, अरुणा आसफ अली, बीजू पटनायक, सुचेता कृपलानी, अदि नेताओं ने भूमिगत गतिविधियों को अंजाम दिया। जिसके वजह से ही इस आंदोलन को लम्बे समय तक चलाया जा सका। आगे चल कर यह सब प्रमुख नेताओं के रूप में उभरे। इस आंदोलन में महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और उषा मेहता जैसी महिला नेता ने भूमिगत रेडियो स्टेशन स्थापित करने में मदद की, जिससे आंदोलन के बारे में लोगों को जागरूक किया जा सका।

संदर्भ

¹ 8th August 1942: Mahatma Gandhi Launches the Quit India Movement in Mumbai. retrieved from <https://www.mapsofindia.com/on-this-day/8th-august-1942-mahatma-gandhi-launches-the-quit-india-movement-in-mumbai>

² 8th August 1942: Mahatma Gandhi Launches the Quit India Movement in Mumbai. retrieved from <https://www.mapsofindia.com/on-this-day/8th-august-1942-mahatma-gandhi-launches-the-quit-india-movement-in-mumbai>

³ Neharu, Jawaharlal. (1985). Discovery of India, New Delhi: oxford university press, p. 478

⁴ चंद्र, बिपिन. (1996). *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*. नई दिल्ली : पेग्विन बुक. पृ. 475

⁵ Quit India Movement. (2020, August 10). <https://www.drishtiiias.com/daily-news-analysis/quit-india-movement-1>

⁶ Quit India Movement. (2020, August 10). <https://www.drishtiiias.com/daily-news-analysis/quit-india-movement-1>

⁷ SitaRamaiah, Pattabhi, (1935). The history of the indian national congress (1885-1985), The working committee of the congress, New Delhi, p. 734-8

⁸ चंद्र, बिपिन. (1996). *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*. नई दिल्ली : पेग्विन बुक. पृ. 463

⁹ SitaRamaiah, Pattabhi, (1935). The history of the indian national congress (1885-1985), The working committee of the congress, New Delhi, p. 374

¹⁰ SitaRamaiah, Pattabhi, (1935). The history of the indian national congress (1885-1985), The working committee of the congress, New Delhi, p. 462

¹¹ Mookharjee, Shama Prasad. *Leaves from a deiry*. New Delhi: oxford university press, p. 179

¹² Bandopadhyay Shekhar. (2015) *From Plassey to partaion: A history of morden india*. New Delhi: orient blackswan. p.422

¹³ चंद्र, बिपिन. (1996). *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*. नई दिल्ली : पेग्विन बुक. पृ. 475

अन्य संदर्भ :-

केतकर, कुमार. (1985). *कथा स्वातंत्र्याची*. पुणे : महाराष्ट्र राज्य पाठ्यपुस्तक निर्मिती व अभ्यासक्रम मंडल संशोधन. पृ. 264

प्रधान, ग. प्र. (2009). *गोष्ट स्वातंत्र्यलढ्याची*. पुणे : महाराष्ट्र राज्य पाठ्यपुस्तक निर्मिती व अभ्यासक्रम संशोधन. पृ. 63

घोरपडे बा. बा. राजे. (1988). *चलेजाव आंदोलन*, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृति मंडल, मुंबई, पृ. 8

चंद्र, बिपिन. (1996). *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*. नई दिल्ली : पेग्विन बुक. पृ. 475

सिंह फणीश (2012). *1942 की अगस्त क्रांति*. पटना : राजकमल प्रकाशन. पृ. 59

SOCIAL IMPLICATION OF VEDANTIC MAHĀ VĀKYAS

Dr. PRANAY DEB*

pranay.philosophy@gmail.com

Abstract

The *Mahāvākyas* are “The Great Statements” of the Upaniṣads, the foundational texts of Vedanta. They are the irrefutable and ultimate truths proclaimed by the Upaniṣads. There are altogether four *Mahāvākyas* in the Upaniṣads. These are: *Pra-jñānam Brahma* (Consciousness is Brahman), *Aham Brahmāsmi* (I am Brahman), *Tat Tvam Asi* (That is what you are), *Ayam Ātmā Brahma* (This Ātman is Brahman). Values pertaining to these *Mahāvākyas* have social implications to the day-to-day problems of common man. It is to realize individual’s highest reality in the society. There is only one ultimate Reality- *Brahman*. The world, or anything in it, is not an aspect of *Brahman*, but *Brahman* itself. ‘*Ekam sad viprā bahudhā vaddanti...*’ [Rig-Veda, 1. 164, 46] Vedanta teaches us to realize the fundamental unity of every being and to realize the divine nature within every being in the society.

Mahāvākyas are instrumental to the realization of self, leading to the *Jīvan-mukti*. Hence, it is through the spiritual upliftment of the individual, all kinds of discrimination, inequality and oppression can be removed from the society. And by this way social values will be developed in the society. This paper is an attempt to highlight social aspects of Vedantic *Mahāvākyas*.

Keywords: *Mahāvākya, Self-Knowledge, Brahman, Social Values.*

* Post-Doctoral Fellow, Indian Council of Philosophical Research, New Delhi

Department of Philosophy, Tripura University

Introduction

Our very nature is freedom. Happiness and welfare of the human society is based on promoting freedom and equality of all individuals. The desire to uplift others becomes well-established only when the lower self of an individual is erased and community consciousness promoted. The goal of life is Self-realisation. It is not the attainment of anything external to us, but it consists in our simply knowing or becoming aware of our eternal free nature, to realise that we are Existence-Absolute and eternally free. External world are nothing but the extension of the self within. Self-realization is the process of identifying with the whole eco-system. A person who has so identified with this environment has realized the ‘ecological self.’[†] It is the realisation of self-identity with the Absolute, the infinite. Between these two, complete identity exists and is taught by the Vedanta. The myths and parables down the centuries are meant to infuse sense of love, compassion and empathy in us for the rest of the creation. Everything is holy and has its rightful place in the cosmos which is an organic whole. Therefore, there remains no room for one to live at the cost of others.

The great Indian spiritual teacher and Philosopher Ādi Śankarāchārya, who was a renowned exponent of Vedanta, propounded its philosophy of Advaita or non-duality of spiritual truths. There is only one ultimate Reality. This Absolute Reality is Brahman. The world, or anything in it, is not an aspect of Brahman, but Brahman itself. ‘*Ekam sad viprā bahudhā vaddanti...*’- ‘The one reality is called by the wise in different ways.’ [Rg-Veda, 1. 164, 46] Same Supreme Reality has manifested itself in many forms, “One is that which manifests in all.” (*Ekam vā idam vibabhūva sarvam. Rgveda, 8/58/2.*) All distinctions between objects and objects, the subjects and the object, the self and God (Brahman) are the illusory creation of *Māyā*. So, illusion arises when any thought or thing in life is believed to be a separate reality apart from its substratum source, called Brahman. This is the stage of bondage in life. Realization of the knowledge of Brahman leads to liberation by knowledge of the identity of ātman and Brahman, the complete understanding of one’s real nature as Brahman in this life.

[†] Naess, Arne. *Self-realisation: An Ecological Approach to Being in the World*, The Trumpeter, 4, No.3, 1981, pp.39-40.

Advaita declares that, the Ātman, which is the focus of the Upaniṣad, is pure bliss, is eternal and is synonymous with the cosmic soul called Brahman. Brahman and Ātman are simply two different labels for one and the same ultimate reality. *Upanishadic* metaphysics construes the whole universe of the manifold diversities as varied expressions of one primordial consciousness, *Brahman*. Hence, everything is to be treated as *Potentially Divine*. This unity in the One Reality is asserted ever and again through certain key statements in the Upaniṣads, called *Mahāvākyas*.

The *Mahāvākyas*

The *Mahāvākyas* are “The Great Statements” of the Upaniṣads, the foundational texts of Vedānta. They are the irrefutable and ultimate truths proclaimed by the Upaniṣads. They are the great declarations, the divine commandments, the spiritual tenets, and the incontrovertible axioms and maxims of the Vedas and the Upaniṣads which are Absolute Truths, and they sum up the essence of their teachings. A *Mahāvākya* in an Upaniṣad indicates the ultimate unity of the individual soul (Ātman) with God (Brahman). There are altogether four *Mahāvākyas* in the Upaniṣads. Each Veda contains one *Mahāvākya*. The four *Mahāvākyas* are:

1. *Pra-jñānam Brahma* (Consciousness is Brahman).
2. *Aham Brahmāsmi* (I am Brahman).
3. *Tat Tvam Asi* (That is what you are).
4. *Ayam Ātmā Brahma* (This Ātman is Brahman).

To this a fifth is sometimes added:

5. *Sarvam Khalu idam Brahma* (All this is verily Brahman).

1. *Pra-jñānam Brahma*

This *Mahāvākya* is contained in the *Aitareya Upaniṣad* 3.3 of the *Rig-veda*. This explains the nature of Brahman or the Self. Self-consciousness is the same as the Supreme Reality or Truth behind the entire universe/creation. Any judgment of truth is the ultimate truth itself. It indicates that the Divine consciousness or intelligence is present within every individual and has the power to return every individual to the

Divine. Any innermost intelligence is that supreme intelligence through which one can unite into the Absolute.

2. *Aham Brahmasmi*

This *Mahāvākya* is contained in the *Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad* 1.4.10 of the *Yajur Veda*. This is the sentence for enquiry. This states the identity of the innermost consciousness of the individual with that of the Supreme Divine. Every individual consciousness is transcendental and identical with the Supreme. There is no lower consciousness or higher consciousness. It is impartial. The Absolute truth is not any great soul as God or the Lord or not any name and form of God is the supreme. It is formless and nameless. Every aspect of individual life, physical or mental is regarded as Being-Absolute Reality. Own self is the true Divinity, presence of the absolute within our heart and the entire universe.

3. *Tat Tvam Asi*

This *Mahāvākya* is contained in the *Chāndogya Upaniṣad* 6.8.7 of the *Sam Veda*. It is called a statement of advice to the seekers. This *Mahāvākya* occurs in the form of a dialogue between a father (Uddālaka) and his son (Śvetaketu). In this *Mahāvākya* the primary meaning of the term *tat* is Brahman which is regarded as the source of the universe and *tvam* is individual ātman conditioned by body-mind complex. This great utterance means that the infinite, all pervading, omniscient Supreme Truth or Reality is the consciousness or pure self within you. Whatever we see or think about, we are that Absolute. Not only the 'I' is 'That', the 'You' is also 'That'. We are that ultimate 'I' and Thou in all.

4. *Ayam Ātmā Brahma*

This is contained in the *Māṇḍūkya Upaniṣad* 1.2 of the *Atharva Veda*. It means that the Ātman which is self illuminated and the Supreme Reality or Brahman are one and the same (i.e. identical). Not only is our Self identical with the Divine, it is the same Self in all beings that is the same Absolute truth. Thus, Brahman means the Absolute principle as realized in the world as a whole; and ātman, the inmost essence of one's own self are identical.

5. *Sarvam Khalu idam Brahma*

This great statement [*Chāndogya Upaniṣad, 3.14.1*] identifies the objective universe with Brahman. The entire universe is the Divine, which includes our self. The Divine is not only the conscious principle in you and I, it is also the principle which resides in all things. It is the ultimate object as well as the inmost subject in all beings. It is one and all and all in one. This *Mahāvākya* expresses the realization of the entire manifest and unmanifest universe, the objects and people in the world around us, as well as our own body and mind as Brahman.

Conclusion

The whole purpose of the *Mahāvākya* is to bring home that realization in which the worldly man loses his identity of mortality. In Vedanta, this knowledge of identity is not the beginning of the spiritual journey, but the ultimate realization. There is an underlying unity behind all differences of the surface level, in respect of which we are all identical. The greater our comprehension of essential identity and togetherness, the greater is the validation behind our reverence for the whole creation. *Īsopanished* lays down the fundamental tenet of ethics, where it claims that the true fulfilment and happiness consists in renunciation i.e. living for others. A balance between indulgence (*bhoga*) and abstinence (*tyaga*) has been propounded (*Tena tyaktena bhūñīthāḥ mā gr̥dhaḥ kasya sviddhanam*. Yajurveda, 40/1.), so that there remains harmony between the external Nature as well as internal nature of man. Hence, these *Mahāvākya*s are the instrument of self-knowledge, leading to the *Jīvan-mukti*.

The *Mahāvākya*s teaches men two great ideas: i) One is the fundamental unity of every being and ii) the other is to realize the divine nature within every being in the society. If men are able to understand these ideas, it will encourage them to perform their duties with much care and affectionate way and they will look upon and behave to other fellow beings as one's own soul. This Advaita Vedantic spirit of oneness makes the individual identify himself with the community and serve it with a service motive without any personal gain. Hence, it is through the spiritual upliftment that all kinds of

discrimination, inequality and oppression can be removed from the society and we can build-up a liberated, free society open to all.

Bibliography:

1. Abhedananda, Swami. *Philosophy and Religion*. Ramkrishna Vedanta Math, 1951.
2. Bhatt, Siddheshwar Rameshwar. *Philosophical Foundations of Education- Lessons for India*. Singapore: Springer Nature, 2018.
3. *Brihadāraṇyaka Upaniṣad*
4. Chande, M. B. *Indian Philosophy in Modern Times*. New Delhi: Atlantic Publishers, 2000.
5. *Chāndogya Upaniṣad*
6. Dasgupta, R.K. *Swami Vivekananda's Neo-Vedanta*. Kolkata: The Asiatic Society, 1999.
7. Gambhirananda, Swami. *Eight Upanishads: With the Commentary of Shankaracharya*. Kolkata: Advaita Ashrama, 2010.
8. Panda, N. C. *Bhagavad Gita: A New Exposition in a Broader Spectrum*. New Delhi: D.K. Print world Ltd, 2009.
9. Prabhavanda, Swami. *The Spiritual Heritage of India*. New York: Vedanta Press, 1963.
10. Radakrishnan, S. *Indian Philosophy, (Vol- I & II)*. Oxford University Press.
11. Radhakrishnan, S. *The Principal Upanishads*. USA: Harpercollins, 2006.
12. Ranganathan, Shyam. *Ethics and the history of Indian philosophy*, Delhi: Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd., 2007.
13. Ranganathananda, Swami. *Science and Religion*. Kolkata: Advaita Ashrama, 2010.
14. *Religion and Its Practice* – by The first disciples of Shri Ramakrishna. Kolkata: Advaita Ashrama, 2005.
15. Sinha, J.N. *Indian Philosophy, (Vol. I- III)*. Delhi: Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd., 2016.
16. Vivekananda, Swami. *My India: the India eternal*. Kolkata: Ramakrishna Mission Institute of Culture, 1993.

Portrayal of women in NH 10 (2015)

Dr. Ashish Kumar*

baajve@gmail.com

Abstract-

‘NH10’(2015) is a thriller movie Directed by Navdeep Singh. In this film, an attempt has been made to show the condition of women in India, the anomalies of the male-dominated society, honour killings and the condition of the police system in India. At the centre of the film’s story is Meera (Anushka Sharma) who is a married woman. She lives in Gurgaon with her husband Arjun. Both husband and wife work in the corporate sector. On Meera’s birthday occasion Arjun and Meera are going out to celebrate birthdays. Traveling by car on the highway creates apprehensions in their mind. In this journey, the influence of law is less, and the dominance of jungle raj is increasing. As they move away from Gurgaon. NH10 brings trouble for them.

Keywords: Portrayal, Women, Stereotype, Cinema, Patriarchy

Introduction-

Indian cinema celebrated its 100th anniversary in 2013, but still most of the Hindi-films are hero-oriented and the heroism lies in their physical strength. This power is to suppress the villain and protect the female character. Protected by heroes (men), women (heroines) entertain them, soothe their sexual apps, and create heirs for them. Obviously, there is a depiction of life in films around these roles determined by the male society (Patriarchy). But, at least, there have been films that try to portray women beyond their traditional roles. There are ideological contradictions in such attempts. If they are supporting the rights of the woman in one issue, they may be standing in favour of the woman’s subjugation in another issue. Most of the films directed by post-2000 directors can also be placed in this category.

* Post-Doctoral Fellow (ICSSR, New Delhi)

Department of Performing Arts (Film and Theatre), M.G.A. Hindi Vishwavidyalaya, Wardha

Research Question - How do NH 10 film represent women?

Objective - To analyze the portrayal of women in NH 10 film. To analyze whether NH 10 film represent stereotypical image of women.

Methodology - The structure of the proposed research paper is descriptive, under which qualitative research method has been adopted. Under literature review important books, articles and necessary documents related to research including audio-visual resources have been reviewed.

Discussion-

‘NH10’ (2015) is a thriller movie Directed by Navdeep Singh. In this film, an attempt has been made to show the condition of women in India, the anomalies of the male-dominated society, honour killings and the condition of the police system in India. At the centre of the film’s story is Meera (Anushka Sharma) who is a married woman. She lives in Gurgaon with her husband Arjun. Both husband and wife work in the corporate sector. One day when Meera is going somewhere alone in the evening in connection with a meeting, she is attacked by motorcycle-borne goons but she somehow escapes from there in her car. After this incident, Arjun gifts her a pistol. When Meera and Arjun go to register the report of the above incident, the scene shot there, in a very short time, exposes the Indian police system and its ill-will towards women.

Inspector- Dekhiye bhaisaheb hum area me puchtaach kar rahe hain. Waise madam yadi aap unka registration number note kar leti to kaafi simple ho jaata.

Arjun- Sab kuch itna jaldi huaa ki...

Inspector- Inmen se koi nahi hain (Meera is looking at the files of criminals)

Meera- Nahi

Inspector- Yah Shahar badhta bacha hai sir, kud to lagayega hi. Waise aap inhen itni raat ko travel kyon karne dete hain? Waise aapki to DIG saheb se acchi pahchaan hai. Aap inke liye ek gun ka license kyon nahi apply kar dete?

Meera- Gun....

Through the above scene, the filmmaker has tried to make it clear that there is a discrimination between men and women in the society. And somewhere the woman herself is responsible for the violence against the woman. Here the inspector wants to unofficially say that if women do not go out alone at night, then such an incident will not happen. That is, if women are always under the protection of men, then nothing bad will happen to them.

In the next scene we see that the next day is Meera's birthday. Both Arjun and Meera are going out somewhere to celebrate their birthday. Doubts arise in the mind while traveling in the car on the highway. In this journey, the effect of law is less and Jungle Raj's dominance is felt increasing. As they move away from Gurgaon. NH10 brings trouble for them. On the way, when Meera and Arjun stop at a Dhaba to eat something, a girl named Pinky comes there. She tells that her and her husband's life is in danger. She demands Arjun and Meera to save her life. By the time Arjun and Meera can understand the whole thing, five-six people come in a car and forcefully load Pinky and her husband into the car after beating them mercilessly. When Arjun asks what is happening, one of them, Satbir, slaps him and says that Pinky is his sister. At the same time, Satbir and others accompanying him leave from there taking Pinky and her husband. Arjun feels very insulted in this matter. He takes Meera's pistol and goes after Satbir and his gang. Where he sees that Satbir is forcing his sister to drink poison and beats the sister's husband so much that he dies. He gets nervous seeing all this and wants to run away from there with Meera but is caught by Satbir's gang. At the same time, with Meera's pistol, Satbir shoots his sister Pinki, who has not yet died even after drinking poison, and burys her body with her husband. In this scene, Meera and Arjun understand that this is a case of Honor killing. Both of them somehow want to escape from there, but Arjun is shot while snatching the key from one of Satbir's members and that member of the group is killed. Arjun and Meera run away on foot.

Now it is night. Both keep wandering in the forests. And once again both of them are caught by Satbir's gang. In the encounter there, again a member of Satbir's gang is killed. But before dying, he stabs Arjun in the leg. Meera somehow reaches under the rail bridge by giving Arjun the support of her shoulder and leaves him there to find help. Somehow she reaches a police post. The constable posted there at first

calls his boss, ready to help her, but after Meera tells him that she is an eyewitness to an honor-killing. He hangs up the phone and forcibly removes her from the police station. As Meera leaves the police station with a bicycle, she sees a police car coming. A police officer gets down from it.

Inspector- Phone par aap hi thi madam?

Meera- Haan

Both of them sit in the Haryana Police vehicle. The inspector calls someone and tells that Madam is with him. He calls the person he talks to towards the railway track.

The inspector tells Meera that the constable you met at the police post is 'Dulichand' That guy isn't bad, you won't complain about him.

Meera- Policewalla hai kuch to madad karni chahiye thi.

Inspector- Police hawa me to rahti nahi. Gaanv me hi rahti hai, baradari me. Uska hukka-paani band ho jaata. Teen teen ladke hain uske byahane laayak. Kaun deta use apni beti? Waise hi ladkiya nahi hai yahan.

Inspector- accha chalo aap apni cast bataao?

Meera- Singh, puri ..wo shaadi ke baad.

Inspector- Intercast marriage. puri to sar name hue n madam. Cast jaise- brahman, baniya, gurjar....

Meera- Nahi maalum.

Inspector- Yahi farq hai madam. Gaanv me aap kisi se bhi puchiyega, wah jaant, gotra turant bata dega. Apni to batayega hi saath hi dusaron kaa bhi. Manu ko to aapne padha hi hoga. Bahut bade gyaani the jaise Ambedkar saheb jinhonen bharaat ka kanoon banaya. Ab Ambedkar saheb ne bola ki bhaai sari gaadi left side par chalegi to chalti hai na. ab koi gaadi right side par chalegi to accident to hoga na. ab apne Mukesh -Pinki ka hi case le lo. Inhone apne hi gotra men byahna hai, galat hai na madam. Aapko sunkar shock lagega madam lekin Gurgaon me na jahan ye aankhiri mall va shopping complex khatm hote hain na wahi samvidhan aur democracy khatm ho jaate hain madam. Yahan Bijli pani nahi pahunchti, constitution kya pahuchega.

On hearing the names of Mukesh and Pinky, Meera realizes that the inspector has also joined Satbir's gang. Meanwhile, she also sees Satbir's car behind in the rear mirror of the car. She hits the inspector in the eyes with a pen and pushes the inspector down from the car and escapes from the car. After going a little distance, that car also meets with an accident. Now she reaches a village hiding on foot. Most of the people of the village have gone to watch the Nautanki by locking the house. From there Meera reaches Sarpanchji's (Deepti Naval) house with a child. The child who brings Meera happens to be the grandson of the Sarpanch i.e. Satbir's son. When the sarpanch ji knows that Meera is an eyewitness to the honor killing, she locks both her daughter-in-law and Meera in a room. And calls son Satbir.

Here Meera knows that Pinky was actually Sarpanchji's daughter who had secretly married Mukesh of same gotra. There she realizes that she is badly trapped. Here it can be said that on the one hand there is Meera who represents the educated and employed women. Lives life on her own terms and does not hesitate to smoke cigarettes openly. For her, India is all about gleaming malls and metro cities. But here in the village there are people like Pinky and her sister-in-law who do not even have the freedom to speak.

Satbir and his goons beat Meera, here Sarpanch ji, who is a woman herself, also beats Meera saying that you have made a spectacle of our private matter. She also asks her son to beat her daughter-in-law. Here the audience watching the film in general may feel that woman is the enemy of woman here. The involvement of the mother in her daughter's honor killing may corroborate this view here. But here following statement of famous feminist Kamla Bhasin should be remembered –

“It is always said in every discussion that women themselves are the biggest enemies of women. Primarily it seems to be true. But there is a need to think deeply on this fact. It is true that a mother serves her daughter less than a son, gives less education, gives less freedom. Many mothers-in-law want to make daughters-in-law their slaves. They are participants in the conspiracy to kill their daughters-in-law. Mother-daughter tensions are also often very complex and painful. The roots of patriarchy are so strong because the women who are exploited by it also contribute fully in running it. But why is it so?

Maybe because women are bound, they don't see any other way. They don't even know that there can be some other way to live."

We see in the society that the father does not directly bind the daughter. They enforce all the rules and regulations through the mother. And then, every mother who is a woman knows very well the pain of being a woman in this society. So, she becomes a Daroga herself to keep her daughter safe. The mother is always afraid that the daughter will not be oppressed, the society will not call her a liar on the test of purity, no one should say that the mother did not teach anything and the entire responsibility of teaching is often taken by the mother alone. She has to convey all the messages of morality to the children. Since the prevailing morality is male-authoritarian, they continue to impose it. Many times, when the mother's heart is twitched, it has also been seen that her mind is filled with the suffocation of the smoke of the fire imposed by the society. When she dares to speak openly, she says that if I was educated, able to stand on my own feet, I would never have suffered so much. On the other hand, many mothers also wish that their daughters should do what they themselves could not do, but they often do not have enough freedom, they do not have enough financial power to make their daughters strong and self-dependent. In fact, women are completely trapped in these structures. There is also a need to deeply understand the relationship between mother-in-law and daughter-in-law. For a mother-in-law, the arrival of a daughter-in-law means the division of the son's love. And then by becoming a mother-in-law, also get a chance to command someone else. There are full possibilities of misusing this power by a woman who has never got any position or power. After all, she is also a human being and also has the same values, the same shortcomings that are there in everyone. She is also a victim of patriarchal ideology.

She also considers it a great thing to be the Mother of a son, considers the daughter-in-law to be subordinate to her son. There is also a danger desire in her mind that the son may not completely belong to the daughter-in-law. On the other hand, the daughter-in-law also wants to run her house on her own. She had dreamed of this since childhood that after marriage she would be able to eat and wear as per her choice. Due to all these reasons there is tension between mother-in-law and daughter-in-law. This tension is the result of the patriarchal structure itself.

Further we see in the film that somehow Meera escapes from there (in Satbir's car) and reaches under the railway bridge. Where she knows that Satbir has killed Arjun by shooting him in the head. 'Rand Saali' is written on the wall of the bridge with Arjun's blood. Meera gets very upset seeing this and she decides to return and face Satbir and his goons. She returns in the car and kills everyone by running them over with the car. We see Meera brutally killing Satbir with an iron rod (Earth-digger), at the same time Sarpanch ji who is Satbir's mother comes there. Her daughter-in-law and grandson also reach there.

Sarpanchji- Beti thi wo mahri. Jo karna tha wo karna tha.

Meera- Jo karna tha ...so karna tha.

Meera leaves from there saying this. The film ends here.

Conclusion-

On the basis of above discussion, it can be said that through 'NH10', the director has tried to break the stereotypical image of women. The way Meera's character has been crafted has not been found in Hindi cinema till date. Save her life from goons at the beginning of the film. Get a gun license for her own safety. While going through the highway, when going to a Dhaba for the toilet, try to erase the 'Randi' written there. In the last scene of the film, before killing Satbir, there is a scenes of leisurely smoking cigarettes by Meera, enough to include this film in a different category.

Reference -

1. *NH10* (2015). Directed by Navdeep Singh, Written by Sudip Sharma, Production companies -Phantom Films, Clean Slate Filmz, Distributed by Eros International
2. Parakh, J. (2006). *Hindi Cinema Ka Samaj Shastra*. Delhi: Granth Shilpi Publication.
3. Bhasin, K. (2013). *What is Feminism?* New Delhi: Jagori Publication.

Swami Vivekananda: Embodiment of Courage and Fearlessness

Dr. Achhiya Begam*

achhiyabegam0904@gmail.com

Abstract

Swami Vivekananda, a luminary among exceptional thinkers, emphasized courage and fearlessness as key tenets of his philosophy. Rejecting weakness and fear, he championed inner strength and empowerment. He believed that perceiving oneself as distinct from the divine bred fear, but realizing unity banished it. According to him, thoughts shaped reality, making spiritual growth demand strength and bravery. He lauded Nishkam Karma, performing duty for its own sake, and advocated facing consequences fearlessly while surrendering to God.

Vivekananda's own encounter with monkeys taught him to confront challenges boldly. He deemed fear the root of misery and urged control over it, with the path to liberation embracing fearlessness. Vivekananda saw fear originating from separateness and called for unity recognition. He maintained that protecting the weak led to true fearlessness. His legacy rests on these ideals, inspiring us to transcend fear's bounds, embrace unity, and embody courage. Vivekananda's teachings continue to illuminate lives with the radiant light of fearless determination.

Keywords: Courage, Fearlessness, Vivekananda's teachings, Philosophy.

Introduction

Human beings, the highest form of rational animals, have left an indelible mark on the fabric of society through their thoughts and actions. These exceptional individuals shine

* Guest lecturer, Department of Philosophy, Swami Vivekananda Mahavidyalaya, Mohanpur, Agartala, Tripura

as beacons of light, illuminating even the darkest corners of the human psyche with their true knowledge and wisdom. Among such luminaries, Swami Vivekananda stands tall. Although his physical presence on Earth was brief, his teachings continue to resonate and guide us, illuminating the path of life. Much like the nourishing fruits that sustain our bodies, his words nurture our minds and souls, transcending time and space. Vivekananda's teachings not only expounded practical Vedanta but also instilled a fervent patriotism that urged people to protect their homeland from oppressive rulers. He was a saint who perceived the divine within humanity rather than in temples, encapsulated by his profound statement, "To serve men is to serve God."

One compelling facet of Swami Vivekananda's philosophy revolves around courage and fearlessness. He was a man of reason and a staunch advocate of truth. Throughout his discourses, courage and empowerment take center stage, while the notion of weakness or fear is vehemently rejected. He believed that anything that weakens an individual is inherently evil, while endeavors that fortify the soul are intrinsically good. The crux of fearlessness, according to Vivekananda, lies in realizing one's true nature and connecting with the inner voice of the soul. In his words, "Never do anything that makes you weak. Fear causes your aura to contract, rendering you vulnerable. Conversely, fearlessness maintains your aura, allowing you to act from a position of strength."

Vivekananda placed great emphasis on karma, urging individuals to uphold faith in both God and virtuous actions. He advocated doing what is right for the sake of righteousness itself, rather than seeking personal gain. He believed that the soul is imperishable and impervious to harm, which should embolden us to confront life's challenges with unwavering courage. "The earth is enjoyed by heroes," he proclaimed, a truth that remains resolute. In his teachings, he constantly reiterated the absence of fear, urging everyone to embody heroism. According to him, fear represents death, sin, unrighteousness, and a life lived in error. He contended that all negativity in the world stems from the malevolent spirit of fear. His words echo the sentiment that thinking oneself weak is the gravest sin.

Vivekananda's concept of Courage and Fearlessness

Fear, Vivekananda asserted, entices individuals into the abyss of wrongdoing. As long as we perceive ourselves as distinct from the divine, fear remains our companion. However, realizing our intrinsic unity banishes fear. He maintained that our thoughts shape our reality: if we see ourselves as weak, we become weak; if we perceive ourselves as strong, we become strong. Spiritual growth demands strength, bravery, and fearlessness. The pursuit of truth requires unwavering confrontation with evil as long as life persists. For Vivekananda, dying for truth is far superior to living a life of cowardice. Indeed, the entire essence of existence is rooted in fearlessness.

Freedom, in his view, is integral to courage. Rejecting dependence on others and relinquishing all forms of assistance culminate in true freedom. Vivekananda extolled the virtues of Nishkam Karma, emphasizing the importance of performing duties for duty's sake, free from ulterior motives. He advocated facing the consequences of actions without fear, surrendering both good and bad deeds to God. "God helps those who help themselves," he pronounced, underscoring the need to undertake actions with conviction.

An exemplar of fearlessness can be found in a story from Swami Vivekananda's life. During a visit to Varanasi, he was attacked by a troop of monkeys near the Durga Temple. Fleeing from the scene, he was advised by a monk to "face the brutes." Vivekananda turned around and met the gaze of the monkeys, causing them to disperse. This incident left an indelible mark on him and later became a powerful allegory in his lectures. He exhorted people to confront life's challenges with bravery, rather than fleeing from them.

Vivekananda's teachings underscored the imperative of mastering fear. He exhorted individuals to gain control over their fears and anxieties, enabling them to navigate life's trials with resilience. His philosophy revolved around realizing one's true self and embracing fearlessness as the cornerstone of existence. "Be bold and fear not," he proclaimed, as fear is the root cause of misery and superstition. Fearlessness, he asserted, ushers in heavenly bliss, transcending momentary hardships.

Vivekananda's teachings found their pinnacle in the concept of "Abhaya" or fearlessness, emphasized in the Upanishads. He urged individuals to discard fear, for it is fear that shackles us and propagates negativity. The path to liberation involves recognizing our unity with the universe and proclaiming our fearlessness. The essence of Vivekananda's message lies in his declaration, "If there is one word that you find coming out like a bomb from the Upanishads, bursting like a bombshell upon masses of ignorance, it is the word 'Abhaya' meaning fearlessness." This fearless disposition eradicates misery and replaces it with boundless love and sympathy.

Vivekananda discerned fear as a pervasive enemy that stems from various sources—fear of others, fear of inadequacy, fear of loss. He believed that these fears emanate from a belief in separateness from the universe and the divine. His teachings advocated breaking free from this dualistic perspective, embracing the realization that we are the eternal, undivided Self. The unity in all forms of life dissipates fear, and this unity can only be recognized when the perception of separation dissolves.

Throughout his teachings, Vivekananda's stance was unequivocal: fear is an impediment to growth and fulfillment. He exhorted individuals to overcome fear and seek courage, emphasizing that those who protect the weak are the ones truly free from fear. In his profound words, "Fear never leaves those who earn their livelihoods by unethical means or cause harm to others." The call for fearlessness is timely, particularly during moments of great apprehension such as facing the fear of death. In such times, Vivekananda implored individuals to abstain from unethical behavior and strive for a life devoid of fear.

Conclusion

Swami Vivekananda's legacy is indelibly woven with threads of courage and fearlessness. His teachings encourage us to transcend the boundaries of fear and weakness, unlocking our potential for heroism and growth. Vivekananda's insights remind us that fear is an illusion born of separation from the divine, and it is only through unity and realization of our true nature that we can conquer fear. As we stand at

the crossroads of life, let us heed his message to be resolute, to be strong, and to embrace fearlessness. By doing so, we embody the essence of his teachings, illuminating our lives and the world around us with the radiant light of courage and unwavering fearlessness.

References:

1. Bank, Barbara J. (ed.) *Gender and education: an encyclopedia*. London: Praeger Publishers, 2007.
2. Pramanik, R.N. & A.K. Adhikary. *Gender Inequality and Women's Empowerment*. Delhi: Abhijeet Publications, 2006.
3. Siddhinathananda, Swami. *Wealth and Wisdom of India*. Bombay: Bharatiya Vidya Bhavan, 1988.
4. Sister Nivedita. *The Master As I Saw Him*. Kolkata: Udbodhan Office, 1962.
5. Vivekananda, Swami. *Letters of Swami Vivekananda*. Kolkata: Advaita Ashrama, 2011.
6. Vivekananda, Swami. *My India, The India Eternal*. Kolkata: Ramkrishna Mission Institute of Culture, 1993.
7. Vivekananda, Swami. *Practical Vedanta*. Kolkata: Advaita Ashrama, 2004.
8. Vivekananda, Swami. *The Complete Works of Swami Vivekananda*. Kolkata: Advaita Ashrama.

नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में स्त्री पात्र 'अंबिका और मल्लिका' की प्रासंगिकता

(The Relevance of the Female Characters 'Ambika and Mallika' in the Play 'Ashadh Ka Ek Din')

रोहित कुमार*

rohithirawalwala@gmail.com

डॉ. विवेक कुमार†

vivekindelhi@gmail.com

सारांश

एक सीमित दायरे में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देने वाली नारियों के हक में विमर्श और विचार खड़ा करने वाली महिलाओं ने जब-जब कोई कदम उठाया है उन्हें कदम-कदम पर विभिन्न अवरोधों से संघर्ष करना पड़ा है। इन महिलाओं द्वारा किया गया या किया जाने वाला संघर्ष कई स्तरों में दिखाई देता है। प्राथमिक स्तर पर जो सबसे प्राथमिक संघर्ष होता है वह पारिवारिक ही होता है अगर ध्यान दिया जाये तो इसके भी अनेक स्तर दिखाई देते हैं। उसके बाद संघर्ष का यह दायरा आर्थिक और फिर बढ़ते-बढ़ते सामाजिक, राजनीतिक, संस्कृति स्तर तक विस्तृत हो जाता है।

विश्व इतिहास के साथ-साथ भारतीय इतिहास में भी इस तरह के महिलाओं के संघर्ष को दर्ज किया गया है। इसके अलावा समय-समय पर साहित्यकारों-कलाकारों ने भी अपनी कृतियों में इस तरह के संघर्ष करने वाली काल्पनिक पात्रों का सृजन कर अपनी रचनाओं में स्थान दिया और इस बहाने से अपने समय के समाज को एक यथार्थ दिखाने का प्रयास किया है। कुछ ऐसा ही कार्य हिंदी के प्रसिद्ध कहानीकार-नाटककार मोहन राकेश ने भी अपनी नाट्यकृति 'आषाढ़ का एक दिन' के माध्यम से किया है।

की वर्ड्स : यथार्थ, आधुनिकता, स्त्री, प्रेम, समाज और संघर्ष

प्रस्तावना

1958 में प्रकाशित मोहन राकेश द्वारा लिखित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' हिन्दी रंगमंच में सबसे अधिक खेले जाने वाले नाटकों की श्रेणी में आता है। कुछ विद्वानों ने हिन्दी नाटक के विकास में इसे एक मिल का पत्थर माना है। समग्रता में विद्वानों ने इस नाटक को सहज स्वाभाविकता, यथार्थपरक नाटकीयता और काव्यात्मकता का एक संतुलित मिश्रण माना है। आषाढ़ का एक दिन नाटक की कथावस्तु 2सरी शताब्दी ईसा पूर्व से 2सरी शताब्दी बाद के आस पास की है। लेकिन इस नाटक में घटित होने वाली घटनाएँ समसामयिक

* रंगकर्मी एवं शिक्षक, गुरुग्राम (हरियाणा)

† रंगकर्मी एवं शिक्षक (नई दिल्ली)

भी हैं और प्रासंगिक भी। इसको अगर आज के सामाजिक संरचना एवं मान्यताओं को सामने रखकर देखा जाये तो यह नाटक एक साथ कई सार्थक आयाम प्रस्तुत करता हुआ प्रतीत होता है। इसमें एक जगह मल्लिका-कालिदास के रूप में प्रेमी-प्रेमिका के बीच का प्रेम संघर्ष है तो दूसरी तरफ अंबिका द्वारा मल्लिका को समाज द्वारा बनाए गए जीवन के कुछ कड़वे यथार्थ का बोध करवाने का जद्दोजहद भी है। समकालीन समाज में जिस तरह से हर कोई अपने स्तर पर एक संघर्ष से जूझ रहा है ठीक उसी तरह के संघर्ष से जूझते हुए इस नाटक के सभी पात्रों भी को देखा जा सकता है।

अगर दिल्ली जैसे मेट्रो शहरों के कुछ सीमित दायरों को छोड़ दें तो आज भी एक महिला जो चाहें किसी भी समय में हो किसी परिवेश में हो या फिर किसी भी वर्ग से हो उसे उसी के मुताबिक एक संघर्ष तय करना पड़ता है। इस बात को मोहन राकेश ने चार स्त्रियों के माध्यम से चार स्तरों पर प्रस्तुत किया है। इस नाटक में उन्होंने अंबिका, मल्लिका, प्रियंगुमंजरी तथा मल्लिका के बेटी के द्वारा बड़े ही तार्किक रूप से महिला संघर्ष के एक बड़े दायरे को यथार्थपरक तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

शोध का उद्देश्य

समाज में स्त्री को देखने के नज़रिये को व्याख्या करना।

प्रेम और दिमाग के अंतर संबंधों को उजागर करना।

नाटक के पात्र के ज़रिये समकालीन स्त्रीवादी समालोचना।

नाटक 'आषाढ का एक दिन' में नाट्य साहित्य का विकास करना।

शोध प्रविधि

स्त्रीवादी विमर्श के अंतर्गत इस शोध विषय को देखने की कोशिश की है। वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। तथ्यों के लिए प्राथमिक स्रोत के लिये साक्षात्कार और 'विमर्श-विश्लेषण' किया गया है।

द्वितीय स्रोत

द्वितीय स्रोत के अंतर्गत संबंधित विषय से पूर्व में किए गए अध्ययन, पत्रिकाएँ, वेबसाइट, अंतरनुशासनिक, सांस्कृतिक अध्ययन और समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है। मनोविज्ञान के स्केलिंग का भी सहारा लिया गया है।

समाज ने स्त्री को हमेशा अपने ही नज़रिये से देखा है। कहा जाता है कि अनुभव इंसान को सब कुछ सीखा देता है। नाटक आषाढ का एक दिन में अंबिका का चरित्र बहुत ही व्यावहारिक स्तर पर बुना गया है। अक्सर जब हम स्त्री विमर्श की बात करते हैं तो हमारे सामने सिर्फ दो ही तस्वीर आती है। पहला यह की एक

औरत भी नौकरी कर सकती है और दूसरा एक शोषित हो रही बहू। जबकि बात सिर्फ इस सीमित दायरे तक ही नहीं है। इसका दायरा बहुत बड़ा है जिसे हम अपनी दिनचर्या में प्रतिदिन अपने आस-पास ही होते देखते हैं। अक्सर इन चीजों को मामूली तक नहीं समझा जाता है और अनदेखा कर दिया जाता है। इन्हीं अनदेखा कर दी गयी घटनाओं को मोहन राकेश ने अपने इस नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में बिना किसी छेड़छाड़ के जस का तस प्रस्तुत कर दिया है। नाटक में अंबिका समाज के उस वृद्ध महिला का प्रतिनिधित्व करती है जो एक समय में चीजों को भावनात्मक दृष्टि से देखती है। धीरे-धीरे जब उसके ऊपर ज़िम्मेदारी बढ़ने लगती है और तमाम कार्य कलापों को अपने नहीं बल्कि सामाजिक संरचनाओं के मुताबिक करना पड़ता है तब उसे मजबूरन भावनात्मक धरातल से ऊपर उठना ही पड़ता है।

परंपरागत रूप से हमेशा से ऐसा माना जाता रहा है कि महिलाओं का काम सिर्फ खाना बनाना और घर देखने भर का है। जबकि सदियों से महिलाओं ने इस अवधारणा को प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रूप से गलत साबित किया है। बात चाहे इतिहास में मौजूद महिलाओं की करें या फिर किंवदन्तियों की महिलाओं की। कभी कहीं युद्ध हो या फिर किसी तरह की महामारी फैले सबसे अधिक ज़िम्मेदारी का दायरा अगर किसी के हिस्से में आता है तो वह एक शादीशुदा औरत के। इस तरह के माहौल में बेहद ही सीमित संसाधन में उसे कम से कम अपने घर का माहौल जितना अधिक संभव हो सके सामान्य बनाये रखना पड़ता है। चाहे सीमित खाद्य सामग्री में ही सबके खाने का इंतजाम करना हो तो सबको खिलाने के बाद ही अंत में वह खाती है या फिर अगर कोई किसी बीमारी की वजह से बिस्तर पर पड़ा हो तो उसके देखभाल की सारी ज़िम्मेदारी उसी को करनी पड़ती है जैसा की दुनिया भर के समाज में हमेशा यही परंपरा रही है।

पहले ही दृश्य में आकृतियों को देखकर अंबिका आगे किसी तरह की होने वाली संकट को भांप लेती है। वह कहती है- "जाने क्या कर रहे हैं !...कभी वर्षों में ये आकृतियाँ यहाँ दिखाई देती हैं। और जब भी दिखाई देती हैं, कोई न कोई अनिष्ट होता... जब तुम्हारे पिता की मृत्यु हुई, तब भी मैंने ये आकृतियाँ यहाँ देखी थीं!"¹ घर से बाहर अपने आस-पास के समाज में हो रही कुछ अस्वाभाविक हलचल को देखकर अंबिका को चिंता होती है कि कहीं कुछ अनहोनी भी हो सकता है। कहना यह गलत नहीं होगा कि अंबिका भी किसी समय में भावनाओं को जीने वाली एक युवती रही होगी। शादी के बाद अपने पति की पत्नी। जिसको कथित रूप से किसी भी तरह की कोई ना कोई चिंता रही होगी और ना किसी तरह की कोई ज़िम्मेदारी। यहाँ इस जगह पर अंबिका समाज में हो रहे हलचल को देखकर कुछ फिक्रमंद दिखाई देती है। उसकी यह चिंता अपनी बेटी के लिए है। दरअसल उसे चिंतित होना पड़ रहा है जबकि सामाजिक मान्यता के अनुसार इस तरह की किसी चिंता-फिक्र का कार्य एक पुरुष को ही करना होता है या करता है। थोड़ा विश्लेषण करने पर इस तरह की चिंतित-फिक्रमंद अंबिकाएं आज बड़ी आसानी से हमारे आस-पास दिखाई दे जाती हैं। 'द वायर' वैंबसाइट ने कुछ इसी तरह की अंबिकाओं के संघर्षों की पड़ताल कर उन्हें सामने रखा है। दिल्ली की रहने वाली मधु टांक अपने संघर्षों का जिक्र करते हुए बताती हैं – "मेरे तीन बच्चे हैं, बड़ी बेटी 21 साल की है, पति ने शराब के लिए बच्चों की पढ़ाई बीच में छुड़वा दी थी लेकिन अब मैंने अपने बच्चों का स्कूल में दुबारा दाखिला करा

दिया है। अब ज़्यादा घरों में काम करने लगी हूँ ताकि बच्चों की अच्छी परवरिश कर सकूँ।”² द वायर ने अपने इसी लेख में मधु की ही तरह सामाजिक अवरोधों से लड़ने वाली सूरत की हर्षिका पांड्या, बागपत की रेखा राणा, केरल की एलिना जोर्ज, और दिल्ली की शन्नो बेगम के संघर्षों को भी सामने रखा है। इन सभी महिलाएं के संघर्षों में कहीं ना कहीं मोहन राकेश द्वारा सृजित अंबिका के संघर्ष की झलक दिखाई दे जाती है जो आज के समाज में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते दिखाई देती हैं।

अब इसी अंबिका को ज़रा एक बार आज के परिप्रेक्ष्य में रखकर विश्लेषित करने की कोशिश कीजिए। मान लीजिए अंबिका एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की एक छोटे से शहर में रहने वाली पारंपरिक संस्कारों वाली पूर्ण रूप से घरेलू स्त्री है जो सामाजिक संरचनाओं का निर्वाह बिना किसी इफ बट के करती है। तथाकथित रूप से तमाम महिलाओं की तरह वह भी सौभाग्यशाली महिलाओं में से ही है। उसे भी किसी तरह की कोई चिंता नहीं है और उसे भी कुछ नहीं करना होता है जैसा कि अब तक सामाजिक मान्यता है। वह भी उन भाग्यशाली महिलाओं की तरह हमेशा घर पर ही रहती है। उसका पति कोई एक सामान्य सा नौकरी कर कमाता है और सभी जिम्मेदारियों को उठाते हुए पारिवारिक और सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह करता है। समाज के मुताबिक अंबिका को करना क्या होता है। वह तो बस दो-एक मामूली सा काम कर देती है। मसलन सुबह-सुबह घर में बाकियों से थोड़ा पहले उठ जाती है। क्योंकि मल्लिका अभी छोटी है इसलिए उसे स्कूल भेजने के लिए उसे ज़रा सा तैयार कर देती है और थोड़ा बहुत लंच बॉक्स बना देती है। हाँ मल्लिका कभी-कभी स्कूल ना जाने के लिए कई तरह के बहाने भी बनाते रहती है इसलिए उसे कुछ एक प्रलोभन देकर स्कूल भेजने लिए राजी करवाती है। उसके पति महोदय अभी सो रहे हैं और अंबिका बड़े ही संस्कारों वाली भी है इसलिए वह इस बात का भी खयाल रखती है कि उसके पति के नींद में किसी तरह का कोई अवरोध ना आ जाए। मल्लिका को स्कूल भेजकर वह फटाफट बर्तन-वर्तन धो देती है, थोड़ा बहुत झाड़ू-वाडु भी लगा देती है। जब तक पतिदेव जगकर उठते हैं उसे एक कप चाय ही तो बनाना होता है सो वह भी कर देती है। और इसी तरह के कुछ एक छोटे-मोटे काम को सम्पन्न कर उनको भी ऑफिस भेज देती है। अब से अंबिका के पास कोई किसी भी तरह का कोई काम नहीं रह गया है दो एक हल्के से काम को छोड़ दें तो। इसलिए वह दिन भर घर पर बैठी आराम करेगी। दोपहर हो चुका है और अंबिका कपड़े धो रही है इतने में मल्लिका भी स्कूल से घर आ जाती है। कपड़े-वपड़े धो लेने के बाद अब वह मल्लिका के साथ बैठती है। कल के होम वर्क अभी पूरे नहीं हुए हैं इसलिए शाम को ट्यूशन वाले सर के आने से पहले वह उसका होम वर्क पूरा करवाती है। होम वर्क की बहुत सी बातें अंबिका के समझ में नहीं आती है जिसे समझने के लिए उसे मल्लिका की किताबों को पढ़ना पड़ता है। अब जाकर उसे थोड़ा आराम मिला। शाम को जब सर पढ़ाने आए तो अंबिका ने चुपचाप सिर झुकाकर एक कप चाय सर के पास रख दिया। चाय देकर वह उस कमरे से जहां मल्लिका बैठी सर के साथ पढ़ाई कर रही है, चली ज़रूर गई है। लेकिन वह रूम के बाहर एक आड़ लेकर चुपचाप बैठी सर की बात को सुन रही है। कहीं ना कहीं उसके मन में मल्लिका को लेकर थोड़ी बहुत असुरक्षा की भावना है जिसे वह प्रकट नहीं करती क्योंकि बात यहाँ संस्कारों की जो है। कल को कहीं कुछ उंच नीच हो गया तो? सर के चले जाने के बाद अब

वह रात के खाने की तैयारी में लग जाती है। रात को वह मल्लिका को खाना खिला ही रही होती है की कुछ देर में उसके पति भी आ जाते हैं। सबको खाना खिलाकर ही वह अंत में खाती है। कुछ इसी तरह रूटीन में उसका सारा दिन एक एक करके गुजरता है।

अब जरा सोचिए इस तरह की संस्कारी, घरेलू महिला अंबिका के जीवन की क्या दशा हुई होगी जब एक दिन अचानक उसके पति का देहांत हुआ होगा ? मोहन राकेश की अंबिका का जीवन बिलकुल यहीं से शुरू होता है। क्या हुआ होगा उस मल्लिका के साथ जिसकी पहचान तक भी उसके पति के बगौर कुछ नहीं। उसे कितनी यंत्रणाओं से गुजरना पड़ा होगा। पति के देहांत के बाद जब पहली बार वह घर से बाहर निकली होगी। उस समाज ने उसके ऊपर कितने लांछन लगाए होंगे जब पहली बार उसने किसी गैरपुरुष से किसी प्रकार की सहायता ली होगी।

मोहन राकेश ने अपने नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में अंबिका को एक पूर्ण रूप से प्रैक्टिकल इंसान को प्रस्तुत किया है। जिसके पास पारिवारिक और सामाजिक दोनों तरह के अनुभव हैं। अंबिका अब भावनाओं से कहीं ऊपर उठ चुकी है। नाटक में एक जगह मल्लिका कहती है- "मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख की बात भी जानती हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भाव का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और सब संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।"³ अंबिका कितना व्यावहारिक हो चुकी है इस बात को उसके जवाब से समझा जा सकता है। वह कहती है- "तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म-प्रवंचना है। भावना में भाव का वरण किया है !...मैं पूछती हूँ भावना में भाव का वरण क्या होता है ? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं ?...भावना में भाव का वरण ! है।"⁴ अंबिका को पता है कि जिस समाज में वह रहती है वहाँ किसी भी तरह के इमोशन का कोई स्थान नहीं होता है। जीवन की भौतिक जरूरतों को पूरा करने के लिए सिर्फ भाव-भावना से कुछ नहीं होगा। इस बात को आज के सन्दर्भ में समझने के लिए एक बार पुनः द वायर द्वारा कवर की स्टोरी को देखा जा सकता है। फूड डिलीवरी का काम करने वाली सूरत की हर्षिका अपने प्रति समाज के नज़रिए के बारे में बताती हैं और कहती हैं- "मुझे याद है जब मेरे आस-पड़ोस के लोगों को पता चला था कि मैं घर-घर जाकर खाना डिलीवर करने का काम करती हूँ तो वे मुझे भौहें चढ़ाकर देखते थे। मेरे बारे में कानाफूसी होती थी। मेरे घर पर आकर लोग मेरी माँ को ताने मारकर जाते थे। यहाँ तक बोला जाता था कि मैं धंधा करती हूँ इसलिए देर रात एक बजे तक घर आती है।"⁵ एक दूसरा उदाहरण मधु टांक का भी देखा जा सकता है। मधु कहती हैं- "मैं रोज सुबह अँधेरे में ही काम के लिए निकलती हूँ और अँधेरा होने पर ही घर पहुँचती हूँ। आस-पड़ोस के लोग बातें तो बनाते हैं लेकिन किसी को मेरा संघर्ष नज़र नहीं आता।"⁶

ऐसा भी नहीं है अंबिका भावनाओं को नहीं समझती है अगर कभी ऐसा होता तो वह निश्चित ही कभी ना कभी ना मल्लिका को कालिदास के साथ बाहर जाने से रोकने के लिए बल का प्रयोग करती है। दरअसल जीवन के अनुभवों ने उसे सावधान कर दिया है। उसने अपने समाज का महिलाओं के प्रति रखने वाले व्यवहार

को महसूस किया है और वह नहीं चाहती की मल्लिका को भी कभी इस तरह के अनुभव से कभी दो चार होना पड़े। कालिदास के संबंध में वह मल्लिका से कहती भी है- “ग्राम के अन्य लोग उसे उतना नहीं जानते जितना मैं जानती हूँ”⁷ एक और जगह वह मल्लिका के एक सवाल के जवाब में कहती है “मेरी वह अवस्था बीत चुकी है जब यथार्थ से आँखें मूँद कर जिया जाता है।”⁸ अंबिका के सामाजिक संघर्ष से आज की भी महिलाओं को भी दो चार होना ही पड़ता है। नाम और सुरत जरूर बदल जाते हैं।

मल्लिका का कालिदास से सिर्फ प्रेम करने में अंबिका को कोई एतराज नहीं है। लेकिन उसको इस बात का भी आभास है कि आज कालिदास जिस तरह से पूरे गाँव वालों के सामने मल्लिका से अपने प्रेम को प्रकट करता रहता है कल जब विवाह करने का समय होगा वह पीछे मुकर जाएगा। वह कहती भी है- “वह व्यक्ति आत्म-सीमित है। संसार में अपने सिवा उसे और किसी से मोह नहीं है।”⁹

अंबिका भलीभाँति जानती है कि कालिदास का तो कुछ भी नुकसान नहीं होगा लेकिन मल्लिका को अपने चरित्र की परीक्षा जरूर देनी होगी। क्योंकि आज भी चरित्र का हनन तो सिर्फ औरतों का ही होता है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा ने 1933 में अपने एक लेख में लिखा है –“अग्नि में बैठकर अपने आपको पतिप्राणा प्रमाणित करने वाली स्फटिक सी स्वच्छ सीता में नारी की अनंत युगों की वेतना साकार हो गई है।”¹⁰

दरअसल मोहन राकेश ने बड़े ही सूक्ष्म तरीके से समाज में मौजूद उस पात्र को अंबिका में आरोपित किया है जिसके अंदर समाज में मौजूद दोहरा चरित्र रखने वाले इंसान को समझ सकने की दृष्टि है। क्या आज भी हमारे आस-पास प्रेम के नाम पर छलावा करने वाले इंसान नहीं हैं? अपने साथी का प्रयोग अपने अंदर की रिक्तता को भरने के लिए करते हैं? अगर आज के शब्दों में कहें तो “टाइम पास करने के लिए ?” यही बात अंबिका मल्लिका से कहती है। “मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह से जानती हूँ तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबंध है कि तुम एक उपादान हो जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है। अपने पर गर्व कर सकता है।”¹¹

प्रेम कोई दिमाग से करने की चीज नहीं है- मोहन राकेश ने अपने इस नाटक ‘आषाढ़ का एक दिन’ में मल्लिका के माध्यम से प्रेम के एक पारंपरिक आदर्श रूप को प्रस्तुत किया है। मल्लिका निस्वार्थ भाव से कालिदास से प्रेम करती है। उसके प्रेम करने का आलम यह कि वह कालिदास को उज्जयिनी भेजती है। क्योंकि वह उससे प्रेम करती है और यह स्वाभाविक भी है कि हम जिससे प्रेम करते हैं उसकी तरक्की भी चाहते हैं। जो मल्लिका में भी दिखाई देता है। जैसा कि ऊपर भी उल्लेख भी किया गया है कि मोहन राकेश ने नाटक की घटनाओं को बिलकुल यथार्थ रूप से पेश किया है। उन्होंने मल्लिका के माध्यम से आज की उन महिलाओं को प्रस्तुत किया है जो प्रेमी के लगातार तिरस्कार के बावजूद लगातार उसका इंतजार करती रहती हैं।

अब एक बार मोहन राकेश की मल्लिका को आज के संदर्भ में रखकर देखते हैं। मान लीजिए आज की मल्लिका किसी छोटे गाँव-शहर से दिल्ली जैसे किसी बड़े शहर में पढ़ाई करने आती है। उसके साथ लड़के

भी पढ़ाई करते हैं। जिसमें आज के कालिदास से उसे और उससे कालिदास को प्रेम हो जाता है। मल्लिका को कालिदास से सच्चा वाला प्रेम हो जाता है और शायद कालिदास को भी शायद इसलिए क्योंकि उसने मल्लिका को कभी नहीं कहा है कि वह उससे विवाह करेगा वो अलग बात है कि उसे मल्लिका को किसी अन्य लड़के के साथ देखना भी गवारा नहीं। कालिदास तो टॉपर भी है और बहुत ही महत्वाकांक्षी भी। वहीं दूसरी तरफ मल्लिका है जिससे और भी लड़के आकर्षित हैं प्रेम करते हैं लेकिन उसे तो सिर्फ कालिदास और कालिदास को मल्लिका ही पसंद है। एक दिन पता चलता है कि कालिदास को किसी दूसरे शहर में एक अच्छी नौकरी लग जाती है। मल्लिका उससे कहती है तुम जाओ नौकरी करो। उधर कालिदास नौकरी करने चला जाता है और इधर मल्लिका दिन-रात कालिदास के इंतजार में वक्त काटती रहती है। एक दिन मल्लिका को पता चलता है कि कालिदास को अपने साथ काम करने वाली किसी अन्य लड़की से प्रेम हो गया है और वह उससे शादी करने की भी चाहत रखता है। इधर मल्लिका जब भी कालिदास से फोन पर बात करने की कोशिश करती है वह उससे कभी सीधे मुंह बात भी नहीं करता। हाँ कभी-कभार उल्टे उसके ऊपर कई तरह के दोष जरूर मढ़ देता है। इन सबके बावजूद मल्लिका कालिदास का इंतजार करती रहती है। उसे अपने प्रेम की ताकत पर पूरा विश्वास है कि एक दिन वह लौटकर जरूर आएगा। मोहन राकेश ने मल्लिका को कितना समसामयिक और यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। देखने पर हमें आज भी हमारे आस-पास कई मल्लिकाएं दिख जाएंगी।

नाटक आषाढ़ का एक दिन में मल्लिका को पता है कि कालिदास ने शादी कर लिया है बावजूद इसके वह कालिदास से ना तो प्रेम करना छोड़ती है और ना ही उसका इंतजार। निक्षेप जब मल्लिका से कालिदास के स्वार्थलोलुपता की बात करता है तब मल्लिका कहती है- “और मुझे प्रसन्नता है कि वे वहाँ रह कर इतने व्यस्त हैं। यहाँ उन्होंने केवल ‘ऋतु-संहार’ की रचना की थी। वहाँ उन्होंने कई नए काव्यों की रचना की है। दो वर्ष पहले जो व्यवसायी आए थे, उन्होंने ‘कुमारसंभव’ और ‘मेघदूत’ की प्रतियाँ मुझे ला दी थीं। बता रहे थे उनके एक और बड़े काव्य की बहुत चर्चा है परंतु उसकी प्रति उन्हें नहीं मिल पाई।”¹²

नाटक के अंत तक एक तरफ मल्लिका अपने जीवन में भौतिक सुख की जगह भावनात्मक सुख को स्थान देती है तो वहीं दूसरी ओर कालिदास के रूप में एक स्वार्थी इंसान भी दिखाई देता है। जब कालिदास अपनी पत्नी और भौतिक सुख का त्याग कर भावनात्मक सुख के लिए दुबारा वापस मल्लिका के पास आता है तब भी मल्लिका का कालिदास के लिए इंतजार दिखाई दे जाता है। कालिदास एक बार पुनः जब वापिस जाता है तब मल्लिका भी उसके पीछे जाने के लिए पाँव बढ़ाती है लेकिन अपनी बच्ची को बाहों में देखकर वह रुक जाती है।

निष्कर्ष

मोहन राकेश ने शायद नाटक को यथार्थ के बेहद करीब ले जाने के लिए ही अंबिका और मल्लिका के चरित्र को जस का तस प्रस्तुत किया है। इस नाटक से शायद वास्तविकता दिखाना चाह रहे हों तभी तो उन्होंने ना ही

अंबिका को तमाम संघर्षों के बाद सफलता हासिल करते दिखाया और ना ही मल्लिका को। हो सकता है कि उनकी सोच दर्शकों को सोचने पर मजबूर करना रहा हो। दर्शक दीर्घा में बैठा इंसान जब मंच पर अपने आस-पास की घटनाओं को घटित होते देखता है तब उसे इस बात का एहसास होता है कि जो हो रहा है उनमें क्या सही है और क्या गलत। इस तरह यह देखा जा सकता है कि आषाढ़ का एक दिन की अंबिका और मल्लिका आज भी हमारे आस-पास समाज से संघर्ष करती हुई दिखाई दे जाती हैं।

संदर्भ :-

- ¹ राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 12-13
- ² तोमर, रीतू. (2019, मार्च 08). महिलाओं के संघर्ष की वो कहानियां जो वीमेंस डे की चकाचौंध में गुम हो जाती हैं. *द्वायर*. Retrieved from <http://thewirehindi.com/74073/stories-of-woman-workers-india-society-womens-day/>
- ³ राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 14-15
- ⁴ राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 15
- ⁵ तोमर, रीतू. (2019, मार्च 08). महिलाओं के संघर्ष की वो कहानियां जो वीमेंस डे की चकाचौंध में गुम हो जाती हैं. *द्वायर*. Retrieved from <http://thewirehindi.com/74073/stories-of-woman-workers-india-society-womens-day/>
- ⁶ तोमर, रीतू. (2019, मार्च 08). महिलाओं के संघर्ष की वो कहानियां जो वीमेंस डे की चकाचौंध में गुम हो जाती हैं. *द्वायर*. Retrieved from <http://thewirehindi.com/74073/stories-of-woman-workers-india-society-womens-day/>
- ⁷ राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 15
- ⁸ राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 25
- ⁹ राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 25
- ¹⁰ सिंह, स्वाति. (2017, मार्च 5). महादेवी वर्मा: नारी-चेतना की 'अद्वितीय विचारक'. *फेमिनिज्म इन इंडिया*. Retrieved from <https://hindi.feminisminindia.com/2017/03/05/mahadevi-varma-essay-hindi/>
- ¹¹ राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 26
- ¹² राकेश, मोहन. (2008). *आषाढ़ का एक दिन*. दिल्ली : राजपाल एंड संस. पृ. 52

किस्से जो बहुत कुछ याद दिलाते हैं : किस्सा किस्सा लखनउवा

दिप्ती कुमारी शर्मा*

1592diptisharma@gmail.com

किस्से लोक संस्कृति का एक अभिन्न अंग है या यूँ कह लें के किस्सों के माध्यम से कुछ लोग संस्कृति के और अधिक निकट हम आते जाते हैं। 'किस्सा किस्सा लखनउवा' में कुल 72 किस्से हैं। हालांकि लेखक ने इन के माध्यम से लखनऊ ऊपरी खोल को हटाकर वास्तविक लखनऊ या लखनऊ की आत्मा को दिखाने की कोशिश की है। लेकिन पढ़ते समय कई सारे किस्सों में हमें अपने अपने शहरों की या गांव की याद आती रहती है इसलिए कभी-कभी यह किस्से बहुत करीब लगते हैं। लेखक ने किस्से लखनवी अंदाज में ही कहे हैं लेकिन वह यह याद दिलाना नहीं भूलते कि लखनऊ अवध का दिल है। इसलिए पढीस (बलभद्र प्रसाद दीक्षित) , बंशीधर शुक्ला और रमई काका की सरलता और लखनऊ में हुई उनकी उपेक्षा को याद कराना नहीं भूलते। "लखनऊ जो अपने आप को अवधी गौरव का सरताज मानता है उसमें हिंदी- उर्दू के मामूली शाइरों पर भी खूब बात होती है लेकिन अवध की सबसे बड़ी भाषा अवधी के आधुनिक कवियों की बृहत्त्रयी (पढीस, बंशीधर शुक्ल,रमई काका) 'लखनवाइट्स' की अदबी संजीदगी के दायरे से प्रायः बाहर ही रहती है। इन कवियों की ' देहाती' ज़बान उनके लखनऊ की तथाकथित नवाबी नफ़ासत पर बटा जो लगाती है।"¹

जो लोग लखनऊ घराने की जानकारी नहीं रखते होंगे उन्हें भी यह छोटे-छोटे किस्से उन गौरवशाली लोगों से रूबरू होने का मौका देते हैं। उस दौर के वह महान कला प्रेमी जिनमें प्रतिद्वंद्विता है किंतु जलन का लेश मात्र भी नहीं है अपितु हमेशा कला के प्रति सम्मान ही प्रकट होता है। अपने प्रतिद्वंद्वी के प्रति सम्मान और प्रेम इतना की नासिख की मृत्यु पर आतिश की गजल छूट जाए। कला का सम्मान ऐसा कि जहां बड़ौदा के नवाब भी पखाने का लौटा मांजने से भी ना कतराए। जहां गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर हारमोनियम जैसे 'बाजे' पर मंत्रमुग्ध हो जाए।

किस्सों में जहां दरबारों का जिक्र आया है या नवाबों की बात की गई है वहां का नायक या तो कला का साधक है या आम जीवन जीने वाला, रोज अपनी गरीबी से अपने परिवार को बचाने वाला योद्धा रहा है कोई नवाब या शासक नहीं।

* लेक्चर, छियांग माई विश्वविद्यालय थाईलैंड

आज के समय में लेखक भांड को याद करता है 'भांड' जिन्हें आज का सभ्य समाज या तो नाच गाना करने वाले यह गाली के रूप में ही अधिक जानता है। भांड दरअसल समाज वह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता था जो सत्ता को उसका आईना दिखाए वह भी हंसते हंसाते। लखनऊ में इस गौरवशाली भांड सभ्यता का जो आत्मसम्मान भरा किंतु दयनीय अंत दिखाया है वह भावुक करने के साथ सोचने पर भी मजबूर कर देता है।

लखनऊ के गंगा जमुनी तहजीब भिन्न भिन्न प्रकार से हमारे सामने आती है और हमें झकझोर भी देते हैं। जब हम वर्तमान की तुलना उस समय से करते हैं आज हम अधिक पिछड़े हुए और मानसिक विकलांग नजर आते हैं। शिवनाथ का मुहर्म्म पर पान में कथा नहीं लगाने का रिवाज हो या नवाबों का होली प्रेम हो। जब सलीम भाई बाबरी मस्जिद कांड के समय बिना किसी जाति और मजहब के भेदभाव के घर घर तक सब्जी पहुंचाने का काम करते हो और मंदिर में नमाज अदा करनी हो। यह सब उदाहरण है और तथ्यात्मक रूप से भी सही है यह सारे किस्से हमें याद दिलाते हैं उस प्रेम को एक दूसरे के प्रति सम्मान और सहानुभूति को जो आज कहीं भुला दी गई है। लखनऊ वह धरती है जहां एक मुस्लिम शासक मंदिर बनवाता है और एक हिंदू अधिकारी इमामबाड़ा।

हिंदी सिनेमा के मशहूर नाम कमाल अमरोही की फिल्म 'शंकर हुसैन नामक चरित्र की सच्चाई के किस्से। नौशाद और कब्बन मिर्जा के किस्से लखनऊ का फिल्मों से संबंध बताते हैं।

इन किस्सों में लखनऊ की उन भूली बिसरी यादों को समाहित करने का प्रयास किया गया है जो या तो कभी सच्चाई हुआ करती थी यहां आज नफरत की धुंध में कहीं खो सी गई है।

लखनऊ के किस्सों की बात हो और वहां के खाने के बाद ना हो ऐसा नामुमकिन सा लगता है। उड़द की दाल का किस्सा, करिश्माई पुलाव का किस्सा आदि लखनऊ में खाने की परंपरा या रवायत को ही नहीं दिखाते बल्कि खाने का सम्मान कैसे किया जाता है उसे भी सिखा जाते हैं।

लेखक ने कलाकार के अफीम से संबंध के बारे में लिखा है कि "बकौल नौशाद साहब यह अफीम बाजी उस उपेक्षा के कारण होती थी जो समाज में उनकी कला के प्रति थी। यह फनकार इस बात को जानते थे कि यह दुनिया उनकी कला को वह सम्मान नहीं देती जो देना चाहिए। सो कलाकार अपनी उपेक्षा से हताश होकर अफीम के सहारे दूसरी दुनिया में मगन रहते थे। जहां वे खुद ही कलाकार भी थे और खुद ही पारखी भी।"² लेखक किस्सों के माध्यम से कलाकार और रोटी के संबंध में भी बात करते हैं। नौशाद के सुनाए हुए एक किस्से के हवाले से लेखक कहता है कि "यहां कला को सिर्फ तारीख मिलती है कलाकार की रोजी-रोटी के बारे में कोई नहीं सोचता।"³

‘किस्सा किस्सा लखनउवा’ के किस्से कहीं गुदगुदा देते हैं कहीं आप की जानकारी बढ़ा देते हैं तो कहीं हमारे मन में हमारी सभ्यता और विरासत के प्रति गौरवान्वित महसूस कराता है और साथ ही हमें भी अपने सच्चाई से रूबरू करा देता है। कुछ किस्सों को छोड़कर अधिकांशतः सारे किस्से सच्चाई के धरातल पर बुने गए हैं। इसलिए हमें बातें काल्पनिक नजर नहीं आती है। कुछ किस्से हमें अपने शहरों में सुने सुनाए भी लगते हैं। लखनऊ के धरातल पर कहे गए इन किस्सों में उर्दू भाषा अधिक है अतः वह पाठक जो उर्दू नहीं जानते हैं उन्हें थोड़ी मुश्किल महसूस हो सकती है लेकिन यही तो लोक से जुड़े साहित्य की खूबसूरती भी होती है जो हमें नए शब्दों से परिचय करवाती है। जाहिर सी बात है कि लखनऊ के बात करने के अंदाज़ का जिक्र लगभग हर किस्से में हुआ है। लेखक ने संदर्भ सूची के साथ इन किस्सों को गढ़ा है यह इसकी खूबसूरती में चार चांद लगा देती है।

संदर्भ :-

- ¹ बाजपेयी, हिमांशु. (2019). *किस्सा किस्सा लखनउवा*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 25
- ² बाजपेयी, हिमांशु. (2019). *किस्सा किस्सा लखनउवा*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 120
- ³ बाजपेयी, हिमांशु. (2019). *किस्सा किस्सा लखनउवा*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 98

भोजपुरी संस्कार गीतों में संप्रेषणीयता

पूजा पाठक¹

pujapathak1747@gmail.com

प्रस्तावना

भारतीय जीवन दर्शन में जन्म से मृत्यु तक संस्कारों का स्वरूप भिन्न-भिन्न है। जन्म से मृत्यु तक सनातन धर्म में 16 संस्कार माने गए हैं। मनुष्य जीवन के सोलह संस्कारों में गाए जाने वाले गीत संस्कार गीत कहलाते हैं। “वेद सम्मत सोलह अति प्राचीनतम संस्कारों में से प्रत्येक अनुष्ठान के रूप में पांच संस्कारों का ही प्रचलन दिखता है। इन्हीं के साथ कुछ अन्य संस्कारों को भी जोड़ दिया गया है। ये पांच संस्कार हैं-

1. गर्भाधान, जन्मोत्सव
2. उपनयन, मुंडन, वेदारम्भ, कर्णभेद
3. विवाह
4. यज्ञ
5. श्राद्ध²

प्रत्येक संस्कार में गीत गायन की परंपरा रही है। इनमें प्रमुख संस्कार गीत जन्म के समय गाए जाने वाले सोहर, खिलाउन, बधइया, उपनयन संस्कार में गाए जाने वाले गीत, विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले विभिन्न गीत शामिल हैं। इसके अलावा मृत्यु संस्कार में मुख्यतः निर्गुण गीत गाने की परंपरा है जिससे मोह माया के बंधन से छुटकारा मिले।

मनुष्य के जन्म के साथ ही उसकी संचार प्रक्रिया शुरू हो जाती है। मनुष्य की सोच, उसकी अनुभूति यह सभी संचार के दायरे में ही आते हैं। यहां मनुष्य स्वयं के साथ संचार कर रहा होता है जिसे अंतः वैयक्तिक संचार कहते हैं। जब दो लोग आपस में संचार करते हैं तो वह अन्तर वैयक्तिक संचार कहलाता है। संचार का सामान्य अर्थ किसी सूचना या संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना या संप्रेषित करना है। दूसरे शब्दों में संचार एक ऐसी कला है जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों, भावनाओं में सहभागी बनता है। संचार जीवन के लिए इतना आवश्यक है कि इसे जीवन का पर्याय कहा जा सकता है। ऐसा कोई क्षण नहीं होता जब हम संचार की प्रक्रिया से न गुजर रहे हों। हमारे शरीर की लाखों कोशिकाएं आपस में लगातार संचार

¹ पीएच. डी. शोध छात्रा, झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, रांची

² सिन्हा अखिलेश्वर, भोजपुरी लोक गीतों में संस्कार, पृ. 202

कर रही होती हैं। जिस क्षण यह प्रक्रिया बंद हो जाती है, उसी क्षण हमारी मृत्यु हो जाती है। संचार की प्रक्रिया केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं है। सृष्टि के सभी प्राणी किसी न किसी सीमा तक अपनी तरह से संचार करते हैं। यह बात अलग है कि हम अन्य जीव धारियों के संचार करने के ढंग को पूरी तरह समझ नहीं पाते। मनुष्य सृष्टि का एक ऐसा प्राणी है जिसने अपनी बौद्धिक क्षमता से संचार को बेहतर बनाया है। उसकी संचार प्रणाली अत्यंत विकसित एवं वैज्ञानिक है। मनुष्य लाखों साल बाद संचार की इस स्थिति में पहुँच सका है। इस शोध पत्र में इन्हीं संस्कारों में गाये जाने वाले भोजपुरी के कुछ संस्कार गीतों में संचार तत्त्व का अध्ययन किया जाएगा जिसके लिए शोध प्रश्न निम्नलिखित हैं-

1. क्या भोजपुरी संस्कार गीतों के माध्यम से संचार संभव है?
2. भोजपुरी संस्कार गीतों में संचार के कौन-कौन से तत्त्व हैं?

इसी संदर्भ में 'पूर्वी उत्तर प्रदेश व पश्चिम बिहार के सांस्कृतिक उत्सवों में गाए जाने वाले लोकगीतों का सामाजिक मूल्यांकन व उनके संरक्षण के प्रति आकाशवाणी एवं दूरदर्शन की भूमिका' के माध्यम से डॉ. शैलेश श्रीवास्तव (2006) ने भोजपुरी लोकगीत के संरक्षण में आकाशवाणी और दूरदर्शन के योगदान का अध्ययन किया है। इसके साथ ही उन्होंने दोनों संचार माध्यमों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। डॉ. विजय कुमार पांडेय (1996) ने भोजपुरी साहित्य के विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का अध्ययन 'भोजपुरी भाषा और साहित्य के विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका' के माध्यम से किया है। इस शोध में उन्होंने भोजपुरी साहित्य व प्रसार माध्यमों के विकास में होने वाली उपलब्धियाँ, त्रुटियाँ और इसके निराकरण की भी बात की है। प्रो. कृपाशंकर चौबे के हिंदी समय में छपे लेख 'संचार माध्यम और भारतीय संस्कृति' में उन्होंने बताया है कि किस प्रकार संचार माध्यम चाहे वह अखबार हो, आकाशवाणी या दूरदर्शन समय-समय पर भारतीय संस्कृति का प्रचार प्रसार करती आयी है। इस लेख में उन्होंने गीत-संगीत, नृत्य के माध्यम से दिखने वाली भारतीय संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति पर आधारित पुस्तकों का विस्तार से वर्णन किया है। 'भोजपुरी संस्कार गीतों में संचार तत्त्व' विषय पर प्रत्यक्ष रूप से कोई शोध कार्य उपलब्ध नहीं है। इस शोध पत्र के माध्यम से इस विषय पर कार्य करने की कोशिश की गयी है।

भोजपुरी संस्कार गीतों का विश्लेषण

सोहर

भोजपुरी लोक में बच्चे के जन्म के बाद सोहर गाने की परंपरा है। सोहर की अनको शैली प्रचलित है। सोहर की खास बात यह भी है कि इसे विभिन्न सामयिक मुद्दों से जोड़कर भी गाने की परंपरा है।

सोहर का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

परथम मास मनाइले, मंगल गाइले हो।

ए ललना, बिधिनिहरन गननायक, मंगलदायक हो॥

परथम मास जब आइल, चित हरखाइल हो।

ए ललना, पुछबो में दिनवा सुदिनवा, तब दो नहाइब हो॥
 दोसर मास जब आइल, रूप बदलाइल हो॥
 ए ललना, अंग पीयर मुख दुरहुर, अगम जनाइल हो॥³

प्रस्तुत गीत में गर्भवती स्त्री के शरीर में होने वाले बदलाव का वर्णन किया गया है। गीत के प्रारम्भ में गणनायक गणेश की वंदना की गयी है जिसके पश्चात प्रथम महीने से लेकर पुत्रोत्पत्ति तक के दस महीनों में गर्भिणी स्त्री के शरीर पर होने वाले विभिन्न लक्षणों का वर्णन है।

सोहर के अलावा जन्म संस्कार में छठी, बरही, खेलवना, बधइया इत्यादि गाने की भी परंपरा है।

जनेव गीत

उपनयन संस्कार, यज्ञोपवीत या जनेव संस्कार में बालक को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जाती है जिसके पश्चात बालक शिक्षा ग्रहण करने गुरुकुल जाता है। जनेव गीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

पूछेली कवन देई कवन बाबू से बात हे,
 कइसे कइसे ए प्रभु बाबू के जनेउआ हे।
 हाँथे परास डंडा अंग मिरिग छाला हे,
 सोने के खड़कंआ चढ़ि बाबू के जनेउआ हे।⁴

इस जनेव गीत में ग्राम परिवेश के जीवन, पति-पत्नी के बीच अनुष्ठानों के लिए विमर्श, संस्कारगत परिधान, लोक प्रचलन हेतु परस्पर परामर्श और दान-उपादान की विधियों का विश्लेषण है। इस गीत की खास बात इसका संवादीपन है। इसमें पति पत्नी के बीच के संवाद को दर्शाया गया है। इसी प्रकार कई ऐसे जनेव के गीत हैं जिनमें पुत्र अपने पिता को अपना उपनयन संस्कार करवाने का आग्रह करता है। इन गीतों में होने वाले संवाद ही इनके सम्प्रेषणीयता के परिचायक हैं।

विवाह

विवाह में होने वाली अलग अलग विधियों के लिए अलग अलग संस्कार गीत हैं। लड़की की शादी में शगुन से लेकर बिदाई तक के अलग अलग रस्मों के लिए लोक में अनेकों गीत गाए जाते हैं। वहीं लड़के के विवाह में होने वाले रस्मों के लिए भी कई गीत लोक में मौजूद हैं।

मइया गीत

नीमिया के डाढ़ मइया, लावेली हिंडोलवा कि झूली झूली।
 मइया मोरी गावेली गीत, कि झूली झूली॥

³ तिवारी, हंस कुमार, भोजपुरी संस्कार गीत, पृ. 5, गीत-1

⁴ सिन्हा, अखिलेश्वर, भोजपुरी लोक गीतों में संस्कार, पृ. 96

झूलत झूलत मइया का लगली पियसिया कि चली भइली।

मलहोरिया अवास, कि चलि भइली।।

सूतल बाडू कि जागल ए मालिन, बून्द एकऽ।

मोहि के पनिआ पिआऊँ, कि बून्द एकऽ।।

भोजपुरी लोक में इस गीत का विशेष महत्व है। विवाह में मइया गीत गाने की परंपरा है। इस गीत के माध्यम से शीतला माता और मालिन के बीच के संवाद को दिखाया गया है।

चुमावन

चूमे बहार भइली अम्मा सुहागिन शिव शंकर हरि

जेतने चूमेली ओतने देली असीस शिव शंकर हरि

जीयऽ सु दूल्हा दुल्हन लाख बरिस शिव शंकर हरि।।

चुमावन के इस गीत के माध्यम से दूल्हा दुल्हन का चुमावन कर उन्हें आशीर्वाद देने की बात कही गयी है।

मंडप

आजु जनकपुर में मइवा, बड़ा सुहावन लागे।

सीता के चढ़ेला हरदिया, मनभावन लागे।।

हरि हरि बाँसवा, कटवलेँ जनक राजा।

मन में सुनयना माई के बाजेला आनंद बाजा।।

शोर भइल सगरी नगरिया, अति पावन लागे

सीता के चढ़ेला हरदिया, मनभावन लागे।।

यह गीत मंडप के रस्म में गायी जाती है। यहां माता सीता और उनके माता पिता का वर्णन है। लोक में यह प्रचलन है कि दुल्हन को सीता या पार्वती और दूल्हे को राम या शिव की तरह देखा जाता है।

मटकोर

कहँवा के पियर माटी, कहाँ के कोदार ए।

कहँवा के सात सोहागिन, माटी कोड़े जास ए।।

पटना के पियर माटी, सोने के कोदार ए।

उन्हवे के सात सोहागिन, माटी कोड़े जास ए।।

इस गीत को मटकोर की रस्म में प्रमुखता से गाया जाता है। इसमें कुदाल लेकर मिट्टी कोड़ने का उल्लेख है। इस मिट्टी का उपयोग विवाह के बाकी रस्मों में भी किया जाता है। इस गीत की विशेषता इसका प्रश्नोत्तर ढंग से प्रस्तुत करना है। गीत में पहले प्रश्न पूछा गया है फिर उसका जवाब भी दिया गया है।

हरदी चढ़ाई

कोइरिन कोइरिन तूहूँ मोरे रानी, कहँवा के हरदी सुबसओ ना जानीं।
 तेलिन तेलिन तूहूँ मोरे रानी, कहँवा के तेलवा सुबसओ ना जानीं॥
 हमरा कवन बाबू बड़ सुकुँवार, सहलो ना जाला हरदिया के झाँका।
 हमरा कवन बाबू बड़ सुकुँवार, सहलो ना जाला तेलवा के झाँका॥

प्रस्तुत गीत में दूल्हे के अत्यंत सुकुमार होने का उल्लेख है। यह हल्दी चढ़ाने की विधि में प्रयुक्त हल्दी और तेल के गन्ध को सहन नहीं कर सकता।

परिछन

उठु उठु अदरइतिन गोतिनी, परिछू दमाद हो।
 नीनिया के भरमल दुल्हा, पलको ना खोले हो॥
 कइसे में परिछिं गोतिनी, दमदा तोहार हो।
 चलनी के चालल दुल्हा, सूप झटकारल हो॥
 चटकन के मारल दुल्हा, मुखहुँ ना बोले हो।
 कइसे में परिछिं गोतिनी, दमदा तोहार हो॥

इस परिछन गीत के माध्यम से हमें जेठानी और देवरानी के बीच का संवाद देखने को मिलता है। दोनों आपस में अपने दामाद को परिछने की बात कर रही हैं और बता रहीं हैं कि उनका दामाद अनमोल है।

पतोह परिछन

सोना के सिन्होरवा लेले, अम्मा मोर ठाढ़ हो।
 खोलऽ बबुआ पालकी के पटरी, मंगिया बहोरीं हो॥
 कइसे में खोलीं अम्माँ, पालकी के पटरी हो।
 मोरा गोदे बाड़ी अम्माँ, धनिया नादान हो॥

विवाह संस्कार संपन्न करा कर दूल्हा लौटा है। दूल्हा-दुल्हन के परिछन के लिए स्त्रियाँ एकत्र हुई हैं। वे दूल्हे से पालकी का दरवाजा खोलने का अनुरोध करती हैं ताकि दुल्हन को पालकी से उतार कर लौकिक विधियों को संपन्न किया जा सके।

विवाह संस्कार के उपरांत मानव जीवन का सोलहवां संस्कार मृत्यु है। इसे अंत्येष्टी भी कहते हैं। इस दौरान गीत गायन की परंपरा बहुत कम ही देखने को मिलती है। हालांकि निर्गुण गाकर आत्मा परमात्मा के मिलन को दर्शाया जाता है। भोजपुरी लोक में कई निर्गुण मौजूद हैं। इनमें कबीर के निर्गुण का गायन काफी प्रचलित है। कबीर का एक निर्गुण द्रष्टव्य है-

भंवरवा के तोहरा संग जाई।

आवे के बेरिया सब केहू जाने, दुअरा पे बाजेला बधाई
जाए के बेरिया केहू न जाने, हँस अकेला चली जाई॥

इस निर्गुण में जीवन की सत्यता का वर्णन है कि कैसे जन्म के समय घर में उत्सव का माहौल होता है, सब लोग खुशी से नवजात के आगमन की खबर देते हैं वहीं मृत्यु पर किसी को पता नहीं चलता। आत्मा रूपी हँस अकेला ही उड़ जाता है।

इन सभी संस्कार गीतों को ध्यान से सुनने, इसका विश्लेषण करने पर इसका महत्व दिखता है। सभी गीत कुछ न कुछ संदेश अवश्य देते हैं। संस्कार गीतों में कितने ऐसे गीत हैं जो संवाद की शैली में हैं। अर्थात् एक व्यक्ति कुछ सवाल पूछ रहा होता है तो दूसरा उसका जवाब दे रहा होता है। इसके साथ ही इन गीतों में संबोधन का प्रयोग भी देखने को मिलता है। जैसे- विवाह के गीतों में पिता अपनी पुत्री को संबोधित कर समझा रहा होता है, पुत्री अपने पिता को संबोधित करती है, पति-पत्नी एक दूसरे को संबोधित करते हैं, मां अपने पुत्र को, अपनी बहु को संबोधित करती है। इस संबोधन से भी कहीं न कहीं यह स्पष्ट होता है कि संचार स्थापित हो रहा है। किसी एक पक्ष का सवाल करना, दूसरे पक्ष का उसका जवाब देना, एक गीत का कहानी के रूप में होना यह सब उसके द्वारा होने वाले संचार के परिचायक हैं।

भोजपुरी संस्कार गीतों में संचार का विश्लेषण

इस शोध पत्र के लिए आंकड़ों का संकलन भोजपुरी क्षेत्र के 100 लोगों द्वारा प्रश्नावली भरवा कर किया गया। आंकड़ों के संकलन के दौरान यह बात सामने आई कि भोजपुरी क्षेत्र के 80% लोग भोजपुरी लोकगीत सुनते हैं और 20% लोगों को इस बारे में कोई जानकारी नहीं है। संस्कार गीतों की जानकारी 78% लोगों को ही है। इन 78% लोगों में 75% लोगों के घरों में विभिन्न अवसरों पर संस्कार गीतों का गायन होता है। संस्कार गीतों के प्रभाव के बारे में बताते हुए कुछ उत्तरदाताओं ने बताया प्ये गीत मधुर लगते है, साथ ही इनको सुनकर कई सारी बातों का भी पता चलता है जैसे इस समाज में महिलाओं, पुरुषों और बच्चों की क्या स्थिति है, हमारी परम्परा कैसी रही है आदि। “यह हमें अपनी संस्कृति से जोड़े रखने का कार्य करती है और समय समय पर उनकी महत्ता से हमें अवगत कराती है। साथ ही कुछ ऐसे विषयों से हमें रूबरू कराती है जो हमारी संस्कृति का हिस्सा होती है, जिनसे हम अनभिज्ञ होते हैं।”

भोजपुरी संस्कार गीत संचार स्थापित करने में कितना सफल है इस प्रश्न का उत्तर 68% लोगों ने दिया और उसमें से अधिकतर लोगों ने यह माना कि भोजपुरी संस्कार गीत संचार स्थापित करने में सफल है। कुछ उत्तरदाताओं के अनुसार-

“इन सांस्कार गीतों के माध्यम से हम कुछ विशेष विषयों पर जानकारी प्राप्त कर पाते हैं और यह एक प्रकार का संवाद होता है जो प्रश्नों और उत्तर के माध्यम से स्थापित हो पाता है। “बिल्कुल सफल है। विवाह आदि में अलग-अलग रस्मों के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों से सारे रस्मों की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। उस

रस्म को नही समझने वाला व्यक्ति भी गीतों के माध्यम से उसकी उपयोगिता को समझ लेता है जिससे गीतों के संचार का उद्देश्य पूरा होता है।”

हाँ, सांस्कार गीतों के माध्यम से मूल्यों, परम्पराओं को बेहतर और प्रभावी तरीके से संप्रेषित किया जा सकता है। संस्कार गीत संचार स्थापित करने में पूर्णतः सक्षम प्रतीत होते हैं।

भोजपुरी संस्कार गीतों में संचार तत्त्व

भोजपुरी संस्कार गीतों में संचार के तत्वों का अध्ययन एक उदाहरण के माध्यम से करते हैं-

एक लड़की के विवाह समारोह में उसके कई मित्र उपस्थित होते हैं। लड़की बिहार राज्य की है जिसकी बोली भोजपुरी है। लड़की के विवाहोत्सव में उसके मित्र अलग-अलग राज्यों से शामिल हुए हैं जिनकी भाषा और बोली अलग हैं वहीं कुछ मित्र ऐसे भी हैं जिनकी बोली भोजपुरी ही है। विवाह के हर रस्म में लड़की के घर की महिलाएं संस्कार गीतों का गायन करती हैं। हास-परिहास का माहौल होता है तो उसके सभी मित्र भी गीतों को सुनकर समझते हैं। कन्यादान या बिदाई के गीत सुनकर उनके भी आंखों में आंसू आते हैं। कुछ मित्र ऐसे भी हैं जिन्हें उन गीतों का अर्थ समझ नहीं आता तो कुछ बिना समझे भी उससे जुड़ा हुआ महसूस करते हैं।

संचार के तत्वों का अध्ययन

प्रेषक- वह व्यक्ति जो अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति को भेजता है।

उदाहरण- संस्कार गीतों का गायन कर रही महिलाएं।

संदेश- विचार, भावना, सुझाव, दिशा-निर्देश, आदेश या कोई भी सामग्री जिसे संप्रेषित करने का इरादा है वह संदेश है। उदाहरण- विवाह गीत।

एन्कोडिंग अथवा संकेतीकरण- यह विचार, सोच या संदेश को किसी अन्य घटक को प्रतीकों, शब्दों, कार्यों, आरेख आदि में परिवर्तित करने की प्रक्रिया है। उदाहरण-भोजपुरी में गाती महिलाएं।

मीडिया अथवा साधन- यह माध्यम या मार्ग है जिससे प्राप्तकर्ता को प्रेषक द्वारा एन्कोडेड संदेश दिया जाता है। उदाहरण-गायन।

डिकोडिंग अथवा समझना या व्याख्या करना- इसका मतलब है प्राप्तकर्ता द्वारा समझे जाने वाली भाषा में एन्कोडेड संदेश को समझना। उदाहरण- वे लोग जो भोजपुरी गीतों को समझ सके।

प्राप्तकर्ता- वह व्यक्ति जिसे संदेश भेजा गया है। उदाहरण- गीत सुनने वाले लोग।

प्रतिक्रिया- प्राप्तकर्ता द्वारा दी गयी प्रतिक्रिया। उदाहरण- गीत सुनकर हँसते या रोते लोग।

शोर अथवा बाधा- यह किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप है जो संदेश भेजे जाने, प्राप्त करने या समझे जाने को प्रभावित करता है। उदाहरण. वे लोग जो इन गीतों के अर्थ को नहीं समझ पा रहे।

निष्कर्ष

इस प्रकार हमने देखा कि भोजपुरी संस्कार गीतों में संचार के सभी तत्त्व मौजूद हैं। एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि चाहे कोई भी भाषा हो, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, बंगाली, संथाली या अन्य कोई भी भाषा या बोली, इन सब में गाए जाने वाले संस्कार गीत या लोक गीत अपने आप में ढेरों अर्थ छुपाये बैठे हैं। इन संस्कार गीतों को सुनकर इनका अर्थ, सामाजिक पृष्ठभूमि और उनके पीछे छुपी कहानी का पता चलता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भोजपुरी संस्कार गीतों के द्वारा सफल संचार होता है।

इन सांस्कार गीतों के अवलोकन पर यह समझ में आया कि इन सभी गीतों में भाव का विशेष महत्त्व है। भाव इन गीतों में संचार का एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। उदारहण के रूप में हम देखते हैं कि जब किसी बच्चे का जन्म होता है तो घर में सोहर गाने की परंपरा है। सोहर, खिलवना, बधईया सनुकर मन में एक उत्साह आता है। उन गीतों को सुनकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्साह का माहौल है। बधइया में हास परिहास का माहौल होता है। ननद अपनी भाभी से अपने भतीजे-भतीजी का नेग मांगती है। यह सब संस्कार गीतों के माध्यम से पता लगता है। इसके अलावा विवाह के गीतों पर ध्यान दिया जाए तो हम देखते हैं कि विवाह में भी हास परिहास का माहौल होता है। जेवनार गीतों के माध्यम से महिलाएं हास परिहास करती हैं, अपने समधी को खाना खिलाते हुए उन्हें गारी देती हैं। यह गारी प्रेम का प्रतीक है। वहीं जब महिलाएं कन्यादान या बिदाई का गीत गाती हैं तो उसे सुनकर लोगों की आँखें भर आती हैं। यही उन गीतों में सम्प्रेषणीयता का प्रतीक है।

संदर्भ :-

- उपाध्याय, कृष्णदेव. *लोक संस्कृति की रूपरेखा*. लोकभारती प्रकाशन. 2009
- उपाध्याय, कृष्णदेव. *लोक साहित्य की भूमिका*. इलाहाबाद: साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड. 2013
- डॉ. नगेन्द्र (सं). *भारतीय नाट्य साहित्य*. दिल्ली: सेठ गोविंद दास हीरेक जयंती समारोह समिति.
- तिवारी, उदयनारायण. *भोजपुरी भाषा और साहित्य*. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्.
- तिवारी, हंस कुमार शर्मा, राधावल्लभ. *भोजपुरी संस्कार गीत*. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्. 2011
- दीक्षित, सूर्यप्रसाद. *अवधी*. साहित्य अकादेमी .2015
- भास्कर, भुनेश्वर. *भोजपुरी लोक संस्कृति और परंपराएं*. प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार. 2016
- मिश्र, विद्यानिवास (सं). *वाचिक कविता: भोजपुरी*. भारतीय ज्ञानपीठ. 2003
- यादव, इंद्र. *लोक साहित्य*. कानपुर: साहित्य रत्नालय. 2004
- सं. गौतम, सुरेश. *भारतीय लोक साहित्य कोश (खण्ड 1)*. संजय प्रकाशन. 2010
- सिंह, दुर्गाप्रसाद. *भोजपुरी के कवि और काव्य*. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्. 2001
- सिंह, नागेंद्र प्रसाद. *भोजपुरी*. साहित्य अकादेमी. 2017
- सिन्हा, अखिलेश्वर. *भोजपुरी लोक गीतों में संस्कार*. पटना: जानकी प्रकाशन. 2008

असहयोग आंदोलन में बुंदेलखंड की भूमिका

विकाश*

vikashagnihotri881@gmail.com

सन् 1919 ई० का वर्ष भारतीय इतिहास में गांधी युग का प्रारंभ एवं राजनीतिक तूफानों का वर्ष माना जाता है। वर्ष 1919 ई० में ब्रिटिश सरकार ने रौलेट एक्ट लागू कर दिया था। इस कानून के तहत ब्रिटिश सरकार किसी भी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाए कारागार में डाल सकती थी। “रौलेट एक्ट से जनसाधारण में रोष की भावना फैल गई। इसी कारण जलियांवाला बाग हत्याकांड हुआ।”¹ दरअसल इस कानून के विरोध में पूरे देश में विरोध प्रदर्शन हो रहे थे। पंजाब में इस विरोध आंदोलन ने विराट रूप धारण कर लिया था। 10 अप्रैल को कांग्रेस पार्टी के दो प्रमुख नेताओं, सत्यपाल एवं सैफुद्दीन किचलू को बंदी बना लिया गया। इन गिरफ्तारियों का विरोध करने के लिए 13 अप्रैल 1919 ई० को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन अमृतसर के जलियांवाला बाग में किया गया। निहत्थे लोगों कि इस आम सभा पर जनरल डायर के नेतृत्व में गोली चलाई गई। इस हत्याकांड में लगभग एक हजार व्यक्ति मारे गए एवं लगभग दो हजार व्यक्ति घायल हुए। “इस हत्याकांड से समस्त सभ्य संसार के लोगों के रोंगटे खड़े हो गए थे। इस हत्याकांड कि समस्त विश्व में निंदा की गई।”² अंग्रेजों के इस अमानवीय कृत्य से देशभर में रोष एवं गुस्से की लहर दौड़ गई।

इन परिस्थितियों के बीच दिसंबर 1919 ई० में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। जिसमें कांग्रेस को जनता की संस्था बनाने तथा स्वराज के लिए ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सीधी कार्रवाई करने के लिए विचार विमर्श किया गया। इसी अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नया संविधान बनाने का निर्णय लिया गया। इस कार्य की जिम्मेदारी गांधीजी को सौंपी गई। “गांधीजी ने कांग्रेस को खिलाफत आंदोलन का साथ देने और सरकार के विरुद्ध उनको सहयोग करने की सलाह दी।”³ ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध असहयोग आंदोलन को पूरे देश में चलाने का निर्णय लिया गया। आंदोलन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कांग्रेस ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किए।

(क) सभी सम्मान, उपाधियां, खिताब एवं अवैतनिक पदों का त्याग किया जाए।

(ख) सरकारी अधिकारियों या उनके सम्मान में आयोजित सभी सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी सम्मेलनों व स्वागत सभाओं का बहिष्कार किया जाए।

(ग) सरकारी नियंत्रण वाली या सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं से धीरे-धीरे समस्त विद्यार्थियों को निकाल लिया जाए और उनके स्थान पर प्रत्येक जिले में राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना की जाए।

* पीएच. डी. शोधार्थी, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

(घ) वकील अदालतों का बहिष्कार करें।

(ङ) विधायिका के लिए होने वाले चुनावों से कांग्रेसी से लोग अपनी उम्मीदवारी वापस लेंगे।

(च) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करें।

“अंतिम शर्त को व्यावहारिक बनाने के लिए प्रस्ताव में राय दी गई थी कि लोग स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग करें और प्रत्येक घर में चरखे एवं खादी का प्रयोग करें।”⁴ असहयोग आंदोलन की इस लहर ने कांग्रेस पार्टी को देशव्यापी संस्था बना दिया। कांग्रेस के आवाहन पर सरकारी स्कूल-कॉलेजों के विद्यार्थी अपने-अपने विद्यालय छोड़ने लगे, अदालतें खाली रहने लगीं एवं विधानसभाओं का बहिष्कार किया गया।

बुंदेलखंड में सर्वप्रथम झांसी में एक “संयुक्त प्रांत राजनैतिक कॉन्फ्रेंस का आयोजन 1916 ई० किया गया था। जिसके स्वगताध्यक्ष सी. वाइ. चिंतामणि बनाए गए थे।”⁵ एवं इसके प्रायोजक हरनारायण गोरहार थे। इस कॉन्फ्रेंस में अन्य जिलों के भी कांग्रेसी विचारधारा के लोग एकत्रित हुए थे। इसमें “झांसी के आत्माराम गोविंद खेर, रघुनाथ विनायक धुलेकर, लक्ष्मण राव कदम, कामरेड अयोध्या प्रसाद, कुंजबिहारी लाल शिवानी, कृष्ण गोपाल शर्मा, रामेश्वर प्रसाद शर्मा आदि ने भाग लिया था। इन सभी कांग्रेसी विचारधारा के लोगों ने 1917-18 ई० में होमरूल आंदोलन में भी भाग लिया था तथा उसकी एक शाखा की स्थापना बुंदेलखंड में की थी।”⁶ दिसंबर 1919 ई० में जब गांधी जी ने असहयोग आंदोलन के लिए देश की जनता का आवाहन किया, तो पूरे देश के साथ साथ बुंदेलखंड में भी इसकी तीव्र प्रतिक्रिया आरंभ हो गई। इस आंदोलन में बुंदेलखंड के सभी जिले गंभीर रूप से प्रभावित हुए। झांसी, हमीरपुर एवं बांदा जिलों की इस आंदोलन में प्रमुख भूमिका रही।

झांसी जिले में शहरी एवं ग्रामीण दोनों स्तरों पर जनता की तीव्र प्रतिक्रिया हुई और असहयोग आंदोलन को भरपूर समर्थन एवं सहयोग प्राप्त हुआ। झांसी जिले के आत्माराम गोविंद खेर, रघुनाथ विनायक धुलेकर, लक्ष्मण राव कदम, कुंज बिहारी लाल शिवानी, कालका प्रसाद अग्रवाल, कृष्ण गोपाल शर्मा तथा स्त्रियों में पिस्ता देवी तथा चंद्रमुखी देवी की प्रमुख भूमिका रही। झांसी में उस समय का प्रमुख शैक्षिक संस्थान “मैकडॉनल हाई स्कूल”⁷ था। असहयोग आंदोलन प्रारंभ होने पर अनेक विद्यार्थियों ने यह स्कूल छोड़ दिया। इन विद्यार्थियों के लिए कुछ प्रमुख गांधीवादी अध्यापकों ने मिलकर एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की। जिसका नाम सरस्वती विद्यालय था। इस स्कूल के संस्थापक तत्कालीन प्रमुख शिक्षाविद हरनारायण गोरहार थे, जो पहले मैकडॉनल हाई स्कूल में अध्यापक थे।⁸ उत्साही एवं राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत होकर हरनारायण गोरहार जी ने मैकडॉनल हाई स्कूल से त्यागपत्र देकर इस संस्था में अध्ययन अध्यापन का कार्य प्रारंभ कर दिया। झांसी जिले के अनेक छात्रों ने इस नए विद्यालय में प्रवेश लिया। उधर अनेक वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार किया इनमें प्रमुख थे कलका प्रसाद अग्रवाल।

हमीरपुर जिले में भी असहयोग आंदोलन की लहर तीव्र वेग से पहुंची। इस जिले की कुलपहाड़ एवं महोबा तहसीलों में इस आंदोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। हमीरपुर जिले में असहयोग आंदोलन के प्रमुख

कार्यकर्ता दीवान शत्रुघ्न सिंह, उनकी पत्नी राजेंद्र कुमारी, कुंवर हरप्रसाद सिंह, महोबा के पंडित बैजनाथ तिवारी, बालेंदु अरजरिया आदि थे। हमीरपुर जिले में असहयोग आंदोलन का प्रमुख केंद्र कुलपहाड़ था बाद में यह आंदोलन महोबा, राठ आदि तहसीलों में भी फैल गया।”⁹

असहयोग आंदोलन को सफल बनाने के लिए बांदा जिले में कुंवर हरप्रसाद के नेतृत्व में आंदोलन की कार्यवाहियों को फैलाया गया। कुंवर हरप्रसाद एवं रमाशंकर रावत आदि ने मिलकर बांदा जिले में वकीलों को अदालत का बहिष्कार करने के लिए तैयार किया। देखते ही देखते असहयोग आंदोलन पूरे बुंदेलखंड में फैल गया। ललितपुर जिले में नंदकिशोर किलेदार, हुकमचंद गुखारिया, शादी लाल दुबे तथा उरई जालौन में चंद्रभान विद्यार्थी, मोतीलाल वर्मा आदि गांधीवादी विचारधारा के व्यक्तियों ने इस आंदोलन की बागडोर संभाली।”¹⁰

ब्रिटिश सरकार के खिलाफ असहयोग आंदोलन सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ बुंदेलखंड में भी फैल गया। इस जनआंदोलन के तहत सब जगह शांतिपूर्ण प्रदर्शन किए जाने लगे। सबसे पहले न्यायालयों का बायकाट किया गया। वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी। सरकार के विरोध में जगह जगह हड़ताल एवं सत्याग्रह चलाए गए। सरकारी शैक्षणिक संस्थानों का बहिष्कार किया गया। शराब बेचने वाली दुकानों पर महिलाओं द्वारा धरना दिया गया। विदेशी वस्तुओं एवं कपड़ों की होली जलाई गई। इस आंदोलन कि खास बात यह रही कि प्रत्येक जगह हिंदुओं और मुसलमानों ने कंधा से कंधा मिलाकर पूरी एकता के साथ इस आंदोलन में भाग लिया।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में यह आंदोलन बुंदेलखंड के गांव-गांव में फैल गया। मऊरानीपुर (झांसी) में सत्याग्रह करते हुए रामनाथ त्रिवेदी, धारीराम व्यास, ठाकुरदास झांसी से कालका प्रसाद अग्रवाल, आत्माराम गोविंद खेर, रघुनाथ विनायक धुलेकर, कुंज बिहारी लाल शिवानी, कामरेड अयोध्या प्रसाद, कामरेड पन्नालाल शर्मा। बरूआसागर से राम सहाय शर्मा, चंद्रमुखी देवी, दीवान शत्रुघ्न सिंह, बालेंदु अरजरिया, किशन देवी (बालेंदु जी की पत्नी) राजेंद्र कुमारी (दीवान जी की पत्नी) तथा बांदा में कुंवर हर प्रसाद आदि ने सत्याग्रह एवं आंदोलन के कार्यक्रमों का नेतृत्व किया।”¹¹

असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव का एक प्रमुख अंग स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना था। इस प्रकार का बहिष्कार बंगाल विभाजन विरोधी आंदोलन में पहले भी किया जा चुका था। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार में यह कार्यक्रम अत्यधिक सहायक हुआ। असहयोग आंदोलन के अंतर्गत स्वयंसेवकों ने घर-घर जाकर इसका प्रचार किया एवं लोगों से विदेशी कपड़ों और वस्तुओं का बहिष्कार करने का आग्रह किया। विदेशी वस्तुएं बेचने वाली दुकानों पर धरना दे दिया गया एवं विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। बुंदेलखंड के शहर एवं कस्बे भी असहयोग आंदोलन के इस कार्यक्रम से अछूते ना रहे। झांसी नगर में स्थित सरस्वती पाठशाला के प्रांगण में स्वरूपनाथ गोरहार जी के नेतृत्व में शहर भर से इकट्ठे

किए गए विदेशी कपड़ों एवं वस्तुओं को होलिका जलाई गई।” 12. बुंदेलखंड में असहयोग आंदोलन में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं ने भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। यहां तक कि इस आंदोलन में सक्रिय रूप से भूमिका निभाने वाली पिस्ता देवी (पुत्री सहित) तथा चंद्रमुखी देवी आदि को पुलिस द्वारा बंदी बना कर उन्हें कारागार में डाल दिया गया था।

इसी क्रम में झांसी जिले की तहसील मऊरानीपुर में पंडित घासीराम व्यास के नेतृत्व में 'दूध-दही चौक' के प्रांगण में विदेशी कपड़ों तथा वस्तुओं की होली जलाई गई। इस कार्यक्रम में पंडित घासीराम व्यास, रामनाथ त्रिवेदी, रामनाथ राव, छौआ पंडा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल एवं पन्नालाल अग्रवाल आदि ने भाग लिया। इन सभी व्यक्तियों को लाल बाजार में सरकारी आदेश पर पुलिस द्वारा बंदी बना लिया गया। झांसी जिले के एक अन्य कस्बे बिरगांव में भी गल्ला मंडी के प्रांगण में इसी तरह विदेशी कपड़ों एवं वस्तुओं की होली जलाई गई थी। हमीरपुर जिले में भी स्वदेशी आंदोलन के तहत कुलपहाड़, महोबा, राठ आदि कस्बों में विदेशी कपड़े की होली जलाई गई थी तथा 'गांधी आश्रम खादी उत्पादन केंद्र' की स्थापना की गई। बाद में दीवान शत्रुघ्न सिंह उनकी पत्नी राजेंद्र कुमारी तथा बालेंदु अरजरिया आदि को पुलिस द्वारा बंदी बना लिया गया।”¹³

इस प्रकार हम पाते हैं कि महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन की लहर ने पूरे भारत देश को उद्वेलित कर दिया। इस आंदोलन को आम जनमानस का इतना व्यापक समर्थन मिला जिसकी इससे पहले की कोई मिशाल नहीं। असहयोग आंदोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार अपंग बनकर रह गई। जनता द्वारा जगह जगह अंग्रेजी राज के विरोध में प्रदर्शन, जुलूस, हड़ताले आदि का आयोजन किया गया। विदेशी वस्तुओं, खिताबों व सरकारी सेवाओं का जनता ने बहिष्कार किया। परिणामस्वरूप अंग्रेजी सरकार ने घबराकर इस जनआंदोलन को बड़ी ही निर्दयता एवं शक्ति से दबाने की नाकाम कोशिश की।

सरकार के पास 1919ई० के प्रारंभ में ही पास किया गया रौलट एक्ट कानून सहारा था। जिसने सरकार को यह छूट दे रखी थी कि सरकार बिना मुकदमे के ही किसी भी व्यक्ति को बंदी बना कर जेल में डाल सकती थी। अंग्रेजी सरकार ने इस काले कानून का सहारा लेकर जनांदोलन के खिलाफ अपना दमन चक्र प्रारंभ कर दिया। देश में ताबड़तोड़ गिरफ्तारियों का दौर चला।

इसी बीच 17 नवंबर सन् 1921 ईस्वी में ब्रिटेन के राजकुमार प्रिंस ऑफ वेल्स का भारत आगमन हुआ। लेकिन भारत की जनता ने उनका स्वागत काले झंडों, विरोध प्रदर्शनों और हड़तालों से किया। सरकार ने जवाबी कार्यवाही करते हुए कई स्थानों पर प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाई। साम्राज्यवादी सरकार का जनता पर दमन चक्र चलता रहा और वर्ष के अंत तक गांधी जी को छोड़कर देश के सभी प्रमुख नेता बंदी बना लिए गए। अली बंधु, मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, जवाहरलाल नेहरू सभी को कैद कर लिया गया। वर्ष 1922 ई० के प्रारंभ तक लगभग तीस हजार लोगों को जेलों में बंद कर दिया गया था।

बुंदेलखंड में भी सरकार ने इन दमनात्मक कार्यवाहियों को आगे बढ़ाया। अंग्रेजी सरकार ने अंधाधुंध गिरफ्तारियां की। असहयोग आंदोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश हुकूमत ने क्रूर तरीके अपनाए। पूरे बुंदेलखंड में लगभग पंद्रह सौ से अधिक व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। इसके अलावा पुलिस ने अनेक स्थानों पर जुलूस और प्रदर्शनों पर लाठी चार्ज किया जिससे सैकड़ों की संख्या में लोग घायल हुए। इसी तरह का एक लाठी चार्ज झांसी नगर के बड़े बाजार में एक जुलूस को तितर बितर करने के लिए किया गया, जिसमें अनेक व्यक्ति हताहत हुए। विदेशी कपड़ों एवं वस्तुओं की होली जलाते हुए “मोतीलाल नेहरू लाइब्रेरी”¹⁴ के सामने अनेक कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को बंदी बनाया गया जिनमें अनेक महिलाएं भी थीं। झांसी जिले की मऊरानीपुर तहसील के लाल बाजार में एक जुलूस पर लाठी चार्ज किया गया तथा अनेक लोगों को बंदी बनाया गया। इसी प्रकार झांसी जनपद के चिरगांव, मोंठ, ललितपुर आदि कई स्थानों पर लोगों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जुलूस निकाला एवं अपनी गिरफ्तारियां दीं।

लेकिन जिस समय देश व्यापी यह जनांदोलन अपने चरम उत्कर्ष पर था और सरकार का दमनचक्र भी अपने पूरे वेग में चल रहा था, उसी समय उत्तर प्रदेश के चौरी चौरा नामक स्थान पर एक जुलूस के दौरान कुछ उग्र प्रदर्शनकारियों ने पुलिस थाने में आग लगा दी, जिससे थाने में मौजूद इक्कीस सिपाहियों एवं एक चौकीदार की मृत्यु हो गई थी। यह समाचार जब गांधीजी के पास पहुंचा तो तो उन्होंने पूरे आंदोलन को स्थगित करने का निश्चय कर लिया। 12 फरवरी 1922 को कांग्रेस की कार्यकारिणी ने इस निश्चय की स्वीकृति दे दी। जब यह बात आम जनता एवं जेलों में बंद उन तमाम लोगों को मिली जिन्होंने इस आंदोलन के लिए सब तरह के कष्ट उठाए थे तो उन्हें बहुत दुख हुआ। अंततः सरकार द्वारा गांधी जी को भी गिरफ्तार का लिया गया और उन्हें 6 वर्ष के कारावास की सजा दी गई।

निष्कर्ष :-

असहयोग आंदोलन ने देश में अभूतपूर्व सफलता अर्जित की। सरकारी विधानमंडलों के चुनाव में लगभग दो तिहाई मतदाताओं ने मतदान नहीं किया। शिक्षा संस्थानों में ना तो विद्यार्थी पहुंचे ना अध्यापक। जामियामिलिया और काशी विद्यापीठ जैसे राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना हुई। वे लोग जो किसी सरकारी नौकरी या पद पर थे उन्होंने उन पदों का त्याग कर दिया। विदेशी वस्तुओं और कपड़ों का बहिष्कार किया गया और देशभर में हड़तालों और प्रदर्शनों के आयोजन हुए।

यह असहयोग आंदोलन की सफलता का ही प्रमाण है कि जब, दिसंबर 1921 ई० में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ¹⁵ तो हकीम अजमल खान के नेतृत्व में कांग्रेस ने निर्णय लिया कि जब तक पंजाब और खिलाफत की शिकायतें दूर नहीं हो जाती और स्वराज की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक असहयोग आंदोलन और इसके सभी कार्यक्रमों को चालू रखा जायेगा। इस आंदोलन के दौरान जनता की भावना का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अधिवेशन में बहुत से व्यक्ति केवल स्वराज की मांग

से संतुष्ट न थे, क्योंकि उस समय तक स्वराज का अर्थ पूर्ण स्वतंत्रता नहीं समझा जाता था। एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नेता और उर्दू के प्रसिद्ध कवि मौलाना हसरत मोहानी ने प्रस्ताव दिया था कि “स्वराज की परिभाषा इस प्रकार की जाए कि उसका अर्थ, प्रत्येक प्रकार के विदेशी नियंत्रण से मुक्त व पूर्ण स्वतंत्रता समझा जाए।”¹⁶ हालांकि इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया लेकिन फिर भी इससे यह बात स्पष्ट है कि भारतीय जनता इस समय तक अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति पूर्णतया जागरूक हो चुकी थी।

बुंदेलखंड में असहयोग आंदोलन का व्यापक असर हुआ। जनता में ब्रिटिश सरकार के प्रति घृणा तथा स्वराज प्राप्ति की नई चेतना का प्रसार हुआ। बुंदेलखंड के सभी जिलों में विदेशी वस्तुओं एवं कपड़ों के प्रति नफरत तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ। खादी, चरखा आदि का व्यापक प्रचार बुंदेलखंड के गांव देहातों तक हो गया। हिंदू मुस्लिम एकता स्थापित हुई। बुंदेलखंड के प्रत्येक नगर एवं कस्बों में कांग्रेस पार्टी की शाखाएं स्थापित हुईं। झांसी जिले में सरस्वती पाठशाला तथा हमीरपुर जिले की राठ तहसील में गांधी राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना हुई। स्वयंसेवकों की भर्ती आरंभ हुई तथा उनकी संख्या में वृद्धि भी हुई। बाद के समय में झांसी नगर तथा बुंदेलखंड के अन्य जिलों में स्वराज दल की स्थापना हुई। जनता में स्वराज के प्रति भावना जागृत हुई। परिणामस्वरूप पूरा बुंदेलखंड स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उत्सुक एवं जागरूक हो गया।

संदर्भ :-

1. पर्सिवल स्पीयर: हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग 2, पेंग्विन प्रकाशन, पृ. 120,121.
2. वहीं, पृ. 120,121.
3. रामगोपाल. (1953). *भारतीय राजनीति*. बनारस : ज्ञान मंडल लिमिटेड. पृ. 284.
4. सीतारमय्या, पट्टाभि. (1948). *दि हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस (3)*. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल. पृ. 54.
5. सरस्वती पाठशाला इंडस्ट्रियल इंटर कॉलेज: अंक 1991-92, पृ. 5.
6. जोशी, ई. वी. (संपा.). (1965). *झांसी गजेटियर*. लखनऊ. पृ. 78.
7. वर्तमान में यह बिपिन बिहारी इंटर कॉलेज के नाम से जाना जाता है।
8. सरस्वती पाठशाला: हीरक जयंती विशेषांक, पृ. 5.
9. मिश्र, द्वारिकेश. (1983). *अनासक्ति मनस्वी*. झांसी : श्री राम प्रेस. पृ. 56-57.
10. कंचन प्रभा. (1975, अप्रैल). मासिक पत्रिका, कानपुर.
11. मिश्र, द्वारिकेश. (1983). *अनासक्ति मनस्वी*. झांसी : श्री राम प्रेस. पृ. 56
12. सरस्वती पाठशाला: हीरक जयंती विशेषांक, पृ. 6.
13. मिश्र, द्वारिकेश. (1983). *अनासक्ति मनस्वी*. झांसी : श्री राम प्रेस. पृ. 180.
14. मोतीलाल नेहरू लाइब्रेरी को उसे समय पब्लिक लाइब्रेरी कहते थे।
15. सीतारमय्या, पट्टाभि. (1948). *दि हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस (भाग 3)*. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल.
16. रामगोपाल. (1953). *भारतीय राजनीति*. बनारस : ज्ञान मंडल लिमिटेड. पृ. 296.

सरायकेला छऊ की परंपरा एवं लोक संस्कृति

जितेंद्र कुमार*

kjitend45@gmail.com

शोध सार

सरायकेला छऊ की परंपरा युद्ध अभ्यास से शुरू होती है, जिसमें तलवार और ढाल के अभ्यास को फरिखण्डा कहा जाता था। इस फरिखण्डा युद्ध ने छावनियों से छऊ नृत्य का रूप लिया और यही से छऊ शब्द की उत्पत्ति हुई। आज के समय में सरायकेला छऊ झारखंड का एक छोटा सा जिला है। यहाँ नृत्य की कई सारी परंपराएँ हैं जिनमें छऊ नृत्य बेहद लोकप्रिय है। कई सालों से यहाँ के लोग छऊ, मोहड़ा या मुखौटा लगाकर छऊ नृत्य की प्रस्तुति करते आ रहे हैं। उड़िया भाषा में छऊ का मतलब मोहड़ा है, जिसे हिन्दी में मुखौटा कहते हैं। छऊ के कलाकारों ने मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी है और मिथ्य कथाओं को नाट्यरूप दिया है। यह नृत्य किसी युद्ध से निकला है जिसमें सैनिक हाथ में तलवार और ढाल लेकर कसरत किया करते थे और युद्ध में जाते समय अपने मुँह को ढककर जाते थे। यह नृत्य वस्तुतः उड़िया संस्कृति की बहुमूल्य भेट है और कलिंग साम्राज्य की परिणति है। सरायकेला छऊ की यह परंपरा कई शताब्दियों से प्रति वर्ष मनाई जाती है और आज भी उसकी महत्वपूर्णता बरकरार है। छऊ नृत्य के तहत बसंत उत्सव के त्यौहार को भी मनाया जाता है और यह उत्सव लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्रस्तुत आलेख में सरायकेला छऊ नृत्य की परंपरा का क्रमिक विकास बताते हुए लोक संस्कृति के महत्व को भी बताया गया।

बीज शब्द - सरायकेला छऊ, फरिखण्डा, अनुष्ठान, अखाड़े, परंपरा, लोक संस्कृति, चैत्र पर्व

शोध विस्तार

सरायकेला छऊ की परंपरा का समय छावनियों में युद्ध अभ्यास से शुरू होता है जिसमें तलवार और ढाल के अभ्यास को फरिखण्डा कहा जाता था अर्थात् फरि (ढाल) खंडा (तलवार) इस फरिखण्डा युद्ध ने छावनियों से छऊ नृत्य का रूप लिया और यही से छऊ शब्द की उत्पत्ति हुई परंतु आज के समय में सरायकेला छऊ झारखंड का एक छोटा सा जिला है। यहाँ नृत्य की कई सारी परंपरा है उस नृत्य में छऊ नृत्य बेहद लोकप्रिय है कई सालों से यहाँ के लोग छऊ, मोहड़ा या मुखौटा लगाकर छऊ नृत्य की प्रस्तुति करते आ रहे। उड़िया भाषा में छऊ का मतलब मोहड़ा जिसे हिन्दी में मुखौटा कहते हैं। इन कलाकारों ने छऊ के माध्यम से कई सालों से मानवीय संवेदना के भिन्न-भिन्न रूपों को अभिव्यक्ति दी है छऊ के कलाकारों ने मिथ्य कथाओं को लेकर उनका नाट्यरूप बना कर समय को दिखाने की कोशिश की है, पर उस समय में यह छऊ नृत्य सैनिकों की छावनियों से निकला है जिसमें सैनिक हाथ में तलवार और ढाल (फरिखण्डा) लेकर कसरत किया करते थे एवं युद्ध में जाते समय अपने मुँह को ढककर जाते होंगे “यह नृत्य वस्तुतः उड़िया संस्कृति की बहुमूल्य भेट है। यह प्राचीन ऐतिहासिक कलिंग साम्राज्य की परिस्थितियों की परिणति है। सम्राट अशोक की विजयाकांक्षा के परिणामस्वरूप जब कलिंग की धरती मानव रक्त में सराबोर हो गई, तब उसने नव अगड़ाई

* पीएच. डी. शोधार्थी, प्रदर्शनकारी कला विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

ली। अपनी जनता को कलिंग के भावी शासकों ने सुरक्षा की दृष्टि से जागृत रखने के लिए गाँव-गाँव में तलवार और ढाल की सैनिक शिक्षा अनिवार्य रूप में अपनाने का आहान किया। कलिंग की जनता ने पदातियों द्वारा प्रदवत इस दीक्षा को इतना हृदयगम किया की वह 'फरिखण्डा' सचालन-कला जब किसी युद्ध में काम न आई, तो फिर शांति काल में इसने मनोरंजक स्वरूप धारण कर लिया।¹ आज के समय का सरायकेला छऊ पहले कलिंग का ही भाग था। सरायकेला छऊ की यह परंपरा कलिंग युद्ध से आज तक चली आ रही है। जिसमें से फरिखण्डा युद्ध ने छावनियों से वर्तमान में छऊ नृत्य का रूप लिया, छऊ एक पारंपरिक नृत्य शैली है। जिसका आरंभ कब और कहा हुआ इसका कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं है किन्तु कुछ दंत कथाएँ जरूर प्रचलित हैं। शिव को छऊ का अधिष्ठाता माना गया है। शिव और शक्ति (आधा पुरुष और आधी महिला) का एक संयोजन, जिसके संघ पूरे ब्रह्मांड के निर्माण के लिए जिम्मेदार है, जानवरों, पशु-पक्षी की आदतों एवं उनकी चाल को इस नृत्य में डाला गया है। छऊ का मूल रूप मार्शल आर्ट है जो फरिखण्डा युद्ध कला से निकला है। यह अपनी ताकत और जीवटता के लिए जाना जाता है और समय के साथ छऊ नृत्य रूपों में प्रकृति के कई रंगों का समायोजन होता गया "छऊ नृत्य चैत्र पर्व नाम से मनाये जाने वाले त्यौहार के अनुष्ठानों का अंग है। ये पर्व कई शताब्दियों से प्रति वर्ष मनाये जाते रहे हैं। रियासत के शासक न केवल इन बसंत उत्सवों से सक्रीय रूप से जुड़े रहे बल्कि उन्होंने छऊ नृत्य की भव्य परंपरा को संरक्षण प्रदान कर इसे उतरोतर विकासशील रखा।"² झारखंड, पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा के सीमावर्ती इलाकों में यह अनुष्ठानिक पर्व छऊ नृत्य नाटक के रूपों का विकास हुआ यह पर्व सही अर्थों में लोक संस्कृति का एक लोक उत्सव है जो तीन रूपों में अपने स्थानीय नामों से जाना जाता है सरायकेला छऊ, मयूरभंज छऊ, तथा पुरुलिया छऊ। छऊ अर्थात् छऊ शब्द क्या है। छऊ शब्द के लिए तीनों रूपों को लेकर विद्वानों में वाद-विवाद की स्थिति है। "कुछ विद्वानों का मत है की 'छऊ' शब्द के व्युत्पत्ति 'छाया' शब्द से है। अनेक कलाकारों की यही धारणा थी जिसमें सेराएकला के राजा भी सम्मिलित है। अन्य विद्वानों ने इससे घोर असहमति प्रकट की है और उन्होंने अन्य उपाख्याएँ प्रस्तुत की है। एक व्याख्या के अनुसार 'छऊ' का संबंध संस्कृत शब्द 'छदम' से जोड़ा गया है। एक और व्याख्या में बोलचाल की ऑडिया भाषा के एक शब्द की ओर संकेत किया गया है जिसके अनुसार 'छऊ' शब्द का अर्थ कोई हथियार या छिपकर शिकार खेलना है। तीसरी व्याख्या के अनुसार 'छऊ' शब्द का संबंध 'छावनी'से जोड़ा गया है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए की तीनों प्रकार के छऊ नृत्यों में समाज के अनेक वर्गों की सहभागिता होती है यह स्वीकार करना युक्तियुक्त होगा कि छिपकर शिकार खेलना या आक्रमण करना ही 'छऊ' शब्द का सबसे अधिक उपयुक्त अर्थ है।"³ इस तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सैनिकों की छावनियों से ही छऊ शब्द की उत्पत्ति हुई है क्योंकि सैनिक छावनियों में फरिखण्डा युद्ध का अभ्यास आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए एवं युद्ध में निपुण होने के लिए किया करते थे और युद्ध में अपने सर, मुँह को छिपाकर, अपने रूप को बदल कर युद्ध में जाते होंगे। जिससे सामने वाला योद्धा उन्हें पहचान ना सके परंतु फरिखण्डा युद्ध में यह छिपाने की कला समय बीतने के साथ ही कई रंगों का रूप ले चुकी है। सरायकेला छऊ, पुरुलिया छऊ में अपने को छिपाकर नृत्य करने की कला आज भी विद्यमान है जबकि

मयूरभंज में अपने को छिपाने की कला आज नहीं है। चेहरे को छिपाकर आक्रमण करना ही 'छऊ' शब्द का सबसे अधिक उपयुक्त अर्थ है क्योंकि इसका दूसरा अर्थ मुखौटा भी है। मुखौटा हिन्दी शब्द है इसे ही उड़िया में छऊ कहते हैं गुरु शशधर आचार्य जी कहते हैं कि "संस्कृत में एक श्लोक है -

छेदनम भेदनम बहुरूपम मुखावली।

छेदना यानी काटना, भेदना यानी अंदर घुसाना - यह जहाँ भी आता है वहाँ इंसान अपने आपको छिपाता है और अपने रूप को बदलता है। जब चोर चोरी करने जाता है तो अपने मुँह को बाँध कर जाता है। हमारे सैनिक जब लड़ाई करने जाते हैं तो अपने सर पर घने पते बाँध लेते हैं ---क्यों बाँधते हैं ताकि दूसरों को दिखे नहीं। छिपाते हैं अपने आपको। यह जो अपने आपको छिपाने की परंपरा है इसी का स्वरूप मुखौटा है।"⁴ छऊ की यह परंपरा छावनियों में फरिखण्डा युद्ध के अभ्यास से चली आ रही है जिसे कलिंग शासकों ने अपनी जनता को युद्ध से बचाने के लिए चलाया था बल्कि छावनियों में पाइको (सैनिकों) द्वारा फरिखण्डा युद्ध का अभ्यास उड़ीसा, सिंहभूम के क्षेत्रों में जगह-जगह चलाया जा रहा था जिससे प्रत्येक नागरिकों को भय मुक्त, शारीरिक और मानसिक रूप से परिपक्व बनाया जा सके परंतु उस समय की फरिखण्डा युद्ध की घटनाओं में लगातार परिवर्तन होने से उड़ीसा, सिंहभूम से एक अलग राज्य बना सरायकेला छऊ जिसमें जनता और राजपरिवार के नरेशों ने बिना किसी जाति भेदभाव के एक समुदाय के रूप में सरायकेला छऊ की परंपरा को आगे बढ़ाया। "सिंहभूम के इतिहास में पोडाहाट राज्य की स्थापना 1205 ई. में हुई। यह भारतीय इतिहास में का सल्तनत -काल था। सराईकेला राज्य की स्थापना 1620 ई. में हुई, जिसके प्रथम शासक कुवर विक्रम सिंह देव थे। पोडाहाट के पूर्वी सीमांत में सरंडा और बंगरीपोसी का पहाड़ियों से घिरी खरकई नदी के तट पर अवस्थित वन्य प्रदेश की हो, संताल और भुइया जनजाति की आबादीवाले भू-भाग को अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार चार मील की वन्य स्थली पर सराईकेला राज्य की स्थापना हुई। परवर्ती वंशधरों ने इसका विस्तार किया। राजा अभिराम सिंह के समय में इस राज्य ने पूर्णता प्राप्त की।"⁵ सरायकेला में निवास करने वाले लोग ज्यादातर कलिंग से बुलाए गए पाइक (पदातिक), उड़िया परिवारों के खंडायत क्षत्रिय जाति के है बाकी लोग आचार्य हिन्दू, सारगी, कवि, महापात्र, धर्मावलंबी आदि गजपति शासक की प्रजा रही है। सरायकेला का नाम पहले सालेकुदू था। जो एक छोटी सी देसी रियासत थी इसके आस -पास साल का जंगल था, जो अब नहीं है। सालेकुदू से "सोडईकोडा" हुई जिसे अंग्रेजी में "सरायकेला" कहा गया। सरायकेला को जहाँ शोड़ष कला यानी सोहल-कलाओं के समूह के अर्थ से नाम लगाया जाता है। सरायकेला राज्य पर ना तो कभी मुगलों का राज रहा ना ही मराठों का यह भूमि बाहरी प्रभाव से सदा स्वतंत्र रही परंतु अंग्रेजों के साथ यहाँ के शासकों ने 1820 ई. में एक सुरक्षा संधि की। जिसके बाद यहाँ का जनजीवन शांत और सुखी रहा, इन्होंने अपने रीति-रिवाज, धर्म, लोक कलाओं देशी नृत्य एवं अनुष्ठानों को सुरक्षित किया। इस फरिखण्डा के खेल को सभी जातियों ने मिलकर सरायकेला छऊ नृत्य का रूप बनाया है। जिसमें भंगिमाओ एवं पदचारियों का समागम है। यहाँ पर कई भाषाएँ बोली जाती है। जैसे - उड़िया, बंगला, हिन्दी, संथाली, कुरमाली, आदि सरायकेला छऊ की

परंपरा को राजपरिवार के सदस्यों ने राजाश्रय देकर अपनी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में संजोया और आठों अखाड़ों के उस्तादों को एक किया जैसे कुश्ती के अखाड़े होते हैं। वैसे ही छऊ नृत्य के अखाड़े होते थे क्योंकि छऊ नृत्य में शरीर की कसरत ही अहम अभ्यास है। जिसे फरिखण्डा या मार्शल आर्ट कला भी कहाँ जाता है। इन आठों अखाड़ों में फरिखण्डा का अभ्यास होता था और राजा आदित्य प्रताप सिंहदेव द्वारा इन अखाड़ों में प्रतियोगिता भी कराई जाती थी जिससे इस कला को बढ़ावा मिला। अखाड़ों से प्रशिक्षण लिए हुए कलाकार सरायकेला राजदरबार में छऊ नृत्य के उत्सव किया करते थे जहाँ राजा द्वारा इन कलाकारों को उपहार देकर सम्मानित किया जाता था फरिखण्डा का अभ्यास प्रातः काल ही आयोजित होता है। यह एक निश्चित स्थान खरकई नदी -जिसे भैरवासल भी कहते हैं - के किनारे होता है। उसे शिव जी का स्थान कहा जाता है वहाँ सात शिवलिंग है। और वही से छऊ नृत्य की शुरुआत हुई ऐसा माना जाता है। यहाँ के राजवंशों के यहाँ पूजा – अनुष्ठान आदि कराने के लिए बाहर से पुजारियों को बुलाया गया था। जो संगीत में भी रुचि रखते थे तथा उनके वंश के लोग भी इस नृत्य परंपरा से जुड़े। छऊ नृत्य में समय-समय पर यहाँ के राजवंश के नर्तकों व छऊ गुरुओं ने इसके विषयवस्तु तथा संगीत आदि में नए-नए प्रयोग करते रहे, जिसकी वजह से विद्वानों के अनुसार यह नृत्य एक ही साथ लोग नृत्य भी है और शास्त्रीय भी लोक नृत्य की परख इससे होती है कि इस नृत्य में भंगिमाओ से अधिक जोर शारीरिक गतियों और आंदोलनों पर है। साथ ही, नाट्यशास्त्र से भंगिमाएँ एव मुद्राएँ भी ली गई है। इन दोनों प्रवृत्तियों के संमिश्रण से छऊ नृत्य में न तो शास्त्रीय दुरुहता है, न लोक-नृत्य की वह प्रवृत्ति जिससे एक ही क्रिया बार-बार दुहराई जाए। छऊ नृत्य का उद्देश्य है सहज प्रदर्शन। इस नृत्य को सहज बनाने में राजा आदित्य प्रताप सिंहदेव के छोटे भाई कुमार विजय प्रताप सिंहदेव का अहम योगदान रहा है इन्होंने अखाड़ों के उस्तादों के साथ मिलकर सरायकेला छऊ नृत्य को सवारने के लिए कई सर्जन कार्य किए। “महाराजा आदित्य प्रताप सिंहदेव ने छऊ नृत्य कला के विकास के लिए उदारतापूर्वक आर्थिक अनुदान देना प्रारंभ किया। इस प्रकार यह कला राजाश्रय प्राप्त कर दिन दूनी चौगुनी आगे बढ़ती गई। तीस के दशक में धार्मिक और पौराणिक विषयों से संबंधित जितनी भी आधारित कर्णप्रिय संगीत से उसे समृद्ध बनाया गया, उसमें कुमार साहब ने फरिखण्डा को शृंगारिक कलात्मक बनाने के लिए फरिखण्डा के आठों अखाड़ों के गुरुओं तथा संगीत के माहिर कलाकारों के साथ विचार-विमर्श किया, फिर उसे अंतिम रूप देकर प्रदर्शन की स्वीकृति दी।”⁶ जिसकी वजह से यह कला अंग्रेजों के शासन काल में भी फलती फूलती रही और कुमार विजय प्रताप सिंहदेव के निर्देशन में 1938 ई. में विदेशों में प्रदर्शन करने गए। जहाँ पर इसे हिन्दू नृत्य के रूप में पहचान मिली। इस कला को सरायकेला स्टेट में तब से आज तक यहाँ का समाज लोक-संस्कृति के रूप में मानते आ रहे है। हर वर्ष चैत्र महा के आगमन पर यहाँ के आस पास के समाज के लोग एक समुदाय के रूप में बिना किसी जाति भेद-भाव के राजपरिवार के साथ धार्मिक अनुष्ठान या चैत्र पर्व के आयोजन का लोकउत्सव शुरू करते हैं। जिसमें हरिजन के ढोल (धमसा)की थाप पर राजपरिवार के नरेश नृत्य करते हैं ऐसा समागम जनता और राजा का एक होना, जहाँ पर सब एक है ऐसा उड़ीसा, सिंहभूम, सरायकेला स्टेट एवं अन्य क्षेत्रों में ही देखने को मिलता है। “क्योंकि सरायकेला छऊ नृत्य महज परिकल्पित नृत्य भर नहीं है बल्कि यह ईश्वर की

आराधना है, धार्मिक अनुष्ठान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें भगवान शिव के स्वरूप अर्धनारीश्वर समेत अन्य देवी-देवताओं की आराधना की जाती है। ईश्वरीय आराधना का संयुक्त स्वरूप चैत्र पर्व के रूप में मनाया जाता है। तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में मनाया जाने वाला यह पर्व समाज के सभी लोगों को जोड़ कर रखता है। सरायकेला चैत्र पर्व जैसा सामाजिक एकता और ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने वाला अनूठा पर्व शायद ही कहीं अन्यत्र देखने को मिले।⁷ सरायकेला छऊ का यह रूप भी दो धरतलों पर गतिशील है। एक धरातल संस्कृत परंपरा का है जिसके अंतर्गत इनकी विषयवस्तु पुराणों और महाकाव्यों से ली जाती है तथा इसमें प्रयोग होने वाले आंगिक अभिनय व आहार्य अभिनय की पृ. भूमि में भरत के द्वारा नाट्यशास्त्र में वर्णित आंगिक व आहार्य अभिनय मजबूती से खड़ा दिखाई पड़ता है, जबकि दूसरा धरातल विशुद्ध रूप से स्थानीय, क्षेत्रीय या देशी है और इसके अंतर्गत बहुत कुछ मौखिक परम्पराओं से ग्रहण किया जाता है। इसका आधार है यहाँ की राजसी सेना के समय से प्रचलित व्यायाम की एक समुन्नत और सुविकसित परंपरा, जिसे फरिखण्डा कहा जाता है। इसका अभ्यास सरायकेला स्टेट के योद्धा वर्ग नियमित व्यायाम में किया करते थे, जिसका उद्देश्य युद्ध कला में पारंगत होना है, क्योंकि फरिखण्डा का मतलब ही है तलवार और ढाल को लेकर किया जाने वाला खेला। सरायकेला के राजवंश के सदस्य सरायकेला छऊ के प्रश्रयदाता है और वे इसकी प्रस्तुति में भी भाग लेते हैं, जनजातीय वर्ग, कृषक वर्ग और सैनिक वर्ग के सभी इसमें भाग लेते हैं। सैनिक वर्ग का विशेष महत्व है, क्योंकि नर्तक इसी वर्ग के होते हैं परंतु अन्य वर्गों की भूमिका भी इसमें समान रूप से रहती है। छऊ नृत्य में कर्मकांड की स्थिति अन्य लोक नाट्यो या नृत्यो के पूर्व रंग कि तरह नहीं है, बल्कि यह स्वयं में एक सम्पूर्ण उत्सव है। जिसे नृत्य कहा जाता है वह चैत्र मास के 26 दिवसीय उत्सव के अंतिम तीन या चार दिनों में खेला जाता है। इसके कर्मकांड में तेली, खनद्र, कंसारी, पात्र, गुदीया, बनिया और बाड़िया आदि जातियाँ कर्मकांड में भाग लेती हैं। खंभा गाड़ने और जुलूस निकालने कि प्रक्रिया पहले दिन से ही शुरू हो जाती है यह जुलूस शिव मंदिर कि ओर जाता है तथा इसमें सभी संप्रदाय के लोग भाग लेते हैं। भगतों का जुलूस राजघाट से निकलता है जुलूस नेत्रित्व करने वाले व्यक्ति के हाथ में एक खंभा होता है जिसे 'जर्जरा' कहा जाता है, इस अनुष्ठान का यह भाग जिसमें जर्जरा का प्रयोग किया जाता है वह भरत के नाट्यशास्त्र में बताए गए 'जर्जरा' (इन्द्र ध्वज) के समान प्रतीति कराता है। अगले दिन 'यात्राघट' का होता है इसमें 'मंगलघट' होता है जिसमें जल भरा होता। जो शिव मंदिर में ले जाकर रख दिया जाता है। एक और संस्कार जिसे कालिकाघट कहा जाता है। इसे 'कामनाघट' भी कहते हैं इस घड़े को शिव मंदिर में गाड़ दिया जाता है। इन स्नानघाटों के बिना सरायकेला छऊ नृत्य की कल्पना भी नहीं कि जी सकती क्योंकि इस नृत्य की शुरुआत स्नानघाटों से कलश में जलभरकर शिव और पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप की पूजा अर्चना में जल चढ़ाया जाता है। इस पूजा का विधान फरिखण्डा युद्ध के समय से चला आ रहा है जहाँ पर सैनिक (पाइक) 'खण्डा' की पूजा करते थे और जब फरिखण्डा युद्ध ने सरायकेला छऊ नृत्य का रूप लिया तो इस पूज विधान को यहाँ के राजा ने समाज के साथ मिलकर चैत्र पर्व में अनुष्ठान के रूप में इस पर्व को मनाना शुरू किया। यह अनुष्ठान पर्व सरायकेला समाज का लोक संस्कृति का रूप है, जिसकी शुरुआत अनुष्ठान के शुभघट से होती है। इस घट में लाल रंग का झण्डा जिसके तीन कौने होते

हैं जिसे शिव और पार्वती का प्रतीक माना जाता है, इसमें 13 जातियों की संख्या में तेरह लोग उपवास करते हैं और प्रतिदिन कुछ धार्मिक संस्कार करते हैं। इस झंडे में 13 आम की वृक्ष की पत्तियाँ लगी होती है जो उड़िया के 13 समुदायों के समाज की संस्कृति के रूप की एकता दर्शाता है साथ ही अनुष्ठान में 13 भक्त या उपासक प्रतिदिन शुभघट की साज सवार करते। भक्त द्वारा पैदा हुए नटराज के ध्वज को जुलूस प्रतिदिन खरकई नदी में डुबकी लगाकर कुछ अनुष्ठानों के बाद उस ध्वज को शिव मंदिर में वापस लाकर रखते हैं इस ध्वज को दंड या जर्जरा कहा जाता है।

पहली यात्राघट जिसकी तैयारी आधी रात को खरकई नदी के तट पर की जाती है इस विशेष घट के आगमन से इस महान नृत्य उत्सव की सम्पूर्ण शुरुआत होती है। इस यात्राघट में भक्त खरकई नदी से कलश में पवित्र जल लेकर चलता है। इस यात्राघट को भक्त कुछ पूजा के बाद एक घाट पूरा किनारे तक पवित्र जल से घाटवाली के सिर पर रखा जाता है और सुरक्षित रूप से कसकर लाल कपड़े से बाँध दिया जाता है। चेहरा, गर्दन, हाथ और पूरे शरीर को लाल कपड़ा या सिंदूर से लाल रंग में रंगा जाता है और घटवाली लगाई जाती है, नर्तक को ऐसे तैयार किया जाता है कि वह अर्धनारीश्वर शिव का रूप लगे। वस्त्र लाल साड़ी, कान के आभूषण जो पूरे कान को ढकते हैं, बाजूबंद, घुंघरू पैरों के चारों ओर बंधे होते हैं और अर्कमाली की माला-फूल को विशेष प्रिय माना जाता है। सिर पर रखा पवित्र जल वाला यात्राघट शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और नर्तक अर्धनारीश्वर का रूप धारण कर शिव-पार्वती के नृत्य करने में मगन हो जाता है, जहाँ रास्ते में इसे रोक के भक्तों द्वारा पूजा और बकरों की बलि दी जाती है। जो स्त्रियाँ उपवास रखती है वह इस यात्रा में नर्तक के मार्ग पर लेट जाती है कि वह उसे लाघ कर जाए जिसे यह लोग शुभ मानते हैं। महारूद्र महादेव काशी विश्वनाथ का जयकारा लगाते हुए नगर के हर क्षेत्र से होते हुए सरायकेला राजमहल पहुँचते हैं और राजा के हाथ से एक 'सिरोपा' प्राप्त करने के बाद अंततः जुलूस और घटवारी को शहर के शिव मंदिर के केंद्र में ले जाया जाता है। इस पारंपरिक लोक उत्सव को यहाँ का समाज और राजपरिवार बड़ी धूम-धाम से मनाता है।

दूसरा अनुष्ठान वृंदावनी से शुरू होता है। जिसमें रामभक्त हनुमान जी की लंका विनाश की कहानी प्रतीकात्मक दृश्यों में दिखाई जाती है। खरकई नदी के पास कुदारसाई शिव मंदिर से नृत्य करते हुए शहर के शिव मंदिर में आता है। इस वृंदावनी नृत्य में हनुमान को लंका-दहन के बाद मन को जो खुशी मिली उसे नृत्य नाटिका से दिखाया जाता है।

तीसरा अनुष्ठान गरियाभार जिसमें श्रीकृष्ण और गोपियों की लीला दिखाई जाती है। इसमें तांबे के दो कलशों में खरकई नदी से जल भरकर मजना घाट से नृत्य करते सरायकेला छऊ नृत्य के मंच के इर्द-गिद कलश रखे जाते हैं और प्रदर्शन समाप्त होने के बाद प्रातः ही कलश के जल को नागरिकों में बाट दिया जाता है।

चौथा अनुष्ठान कालिकाघट जहाँ पर यह नृत्य महोत्सव समाप्त होता है। इसे कामना घट भी कहते। इस घट में शिवलिंग के पास नर्तक लाल कपड़ों की जगह काले कपड़े पहनकर जाता है और कलश भी बाकी

घटों की तरह सजाया नहीं जाता, इस कलश को मंदिर में शिवलिंग के पास ही दबा दिया जाता है। इसे अगले वर्ष इसी समय पर निकाला जाता है। इस कलश के पवित्र जल को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है की फसल कैसी होगी या कामना की जाती है की सुख-संपन्नता बनी रहे। इसको कामना घट भी कहा जाता है इसकी रात्रि कोई प्रस्तुति नहीं होती। इन सब अनुष्ठानों के सम्पन्न हो जाने के बाद नृत्य स्थल को पवित्र करने के पश्चात सरायकेला छऊ नृत्य आरंभ होता है। 'इस संदर्भ में सरायकेला छऊ के गुरु सपन आचार्य जी कहते हैं की चैत्र पर्व का आयोजन 1430 ई. के बाद राजा ने शुरू किया क्योंकि जिन तेरह जातियों को उड़ीसा से लाए थे उन्हें एक छत्रसाए में रखने के लिए, आर्ट को डवलपमेंट करने के लिए उन सबको जनेऊ पहनाया और कहा सब ब्राह्मण हो कोई छोटा बड़ा नहीं है सब एक समान हो और 13 दिनों का अनुष्ठान पर्व बनाया, 13 जातिया, 13 भोक्ता जिन्हें एक ध्वज के नीचे सबको एकत्रित करके पंडित बनाके स्नानघाटों से जल लेकर शिव मंदिर तक मार्च करवाया। चार दिनों का अंतिम उत्सव अहम है। जात्राघट, शोभघट, वृंदावनी एवं कालिकाघट अंत में है। इस अनुष्ठान पर्व के यह सब मुख्य घटना क्रम है।'

सरायकेला छऊ के अनुष्ठानिक पर्व या चैत्र पर्व यहाँ के समाज की लोक-संस्कृति है जिसे यहाँ के समाज ने एवं राजपरिवार ने मिलजुलकर सँजोया है और अपने मन के भावों का इजहार सरायकेला छऊ नृत्य से किया है। जिसका आरंभ खरकई नदी के स्नानघटों से होता है। आज के समय में सरायकेला छऊ की परंपरा का निरंतर गतिमान होने से आठ गुरुओं को पद्मश्री से सम्मानित किया जा चुका है। सुधेदर नारायण सिंहदेव, गुरु केदारनाथ साहू, श्यामाचरण पति, मंगलाचरण मोहंती, गुरु मकरध्वज दारोगा, पंडित गोपाल दुबे, गुरु शशधर आचार्य, छुटनी महतो।

निष्कर्ष

आज के समय में सरायकेला छऊ झारखंड राज्य का भाग है जिसका इतिहास या कुछ दंत कथाएँ बताती है की छऊ फरिखण्डा युद्ध से उपजा है। जिसका आरंभ कलिंग युद्ध से अपने को बचाने के लिए यहाँ के शासकों ने जनता के बीच में फरिखण्डा युद्ध का अभ्यास अनिवार्य रूप से छावनियों में चलाया परंतु शांतिकाल में इस फरिखण्डा युद्ध ने छावनियों में छऊ नृत्य का रूप लिया। जहाँ पर सैनिक (पाईक) और जनता छऊ युद्ध में निपुण हो चुके थे, जो समय बीतने के साथ ही यहाँ के समाज ने इस कला को अपनी लोक-संस्कृति एवं लोकउत्सव के रूप में बनाए रखा। जिसमें यहाँ के राजपरिवारों के नरेशों ने खुद इस छऊ नृत्य को सीखा साथ ही इसमें पशु पक्षियों की चली, उफली, हमारे दैनिक कार्यों को, हमारे महाकाव्यों की कथाओ को छऊ नृत्य में पिरोया जिससे यह नृत्य परिपूर्ण हुआ। छऊ नृत्य की परंपरा का सफर कलिंग, उड़ीसा, सिंहभूम, सरायकेला एवं बाकी अन्य क्षेत्रों से होते हुए आज के समय में छऊ नृत्य की तीन परंपरा विद्यमान है या कहे तो एक माँ के तीन लाल है सरायकेला छऊ, मयूरभंज छऊ, पुरूलिया छऊ। सरायकेला छऊ, पुरूलिया छऊ में मुखौटे का प्रयोग होता है जो इसे बाकी नृत्यों से अलग करता है। क्योंकि इस नृत्य में नर्तक का नृत्य ही विशेष रहता है, जहाँ पर मुखौटा लगाने के बाद स्त्री पुरुष का भेद समाप्त हो जाता है। सरायकेला छऊ बाकी दो नृत्य

की जननी है। सरायकेला छऊ की परंपरा का सफर छावनियों से होते हुए, अखाड़ों में गुरु शिष्य परंपरा से होते हुए, राजपरिवारों के नरेशों को छऊ नृत्य करते हुए एवं राजा द्वारा 1430 ई. में चैत्र महीने में अनुष्ठान पर्व का आयोजन शुरू करने से आज तक चल आ रहा है। हर साल सरायकेला में चैत्र महीने में चैत्र पर्व के नाम से अनुष्ठानों का शुभारंभ होता है, जिसे देखने के लिए देश विदेश से भी लोग आते हैं। सरायकेला छऊ की धरती ने गुरु शिष्य परंपरा में यहाँ के आठ गुरुओं को पद्मश्री दिलाया है। जिनके नाम इस प्रकार हैं - सुधेदर नारायण सिंहदेव, गुरु केदारनाथ साहू, श्यामचरण पति, मंगलाचरण मोहंती, गुरु मकरध्वज दारोगा, पंडित गोपाल दुबे, गुरु शशधर आचार्य, छुटनी महतो। सरायकेला छऊ के कलाकार एवं गुरु आज देश विदेश तक में सरायकेला छऊ नृत्य को सीखा रहे हैं। दिल्ली में मेरे गुरु शशधर आचार्य एवं सपन आचार्य त्रिवेणी कला संगम में सरायकेला छऊ नृत्य का प्रशिक्षण देते हैं और मयूरभंज का प्रशिक्षण श्रीराम भारतीय कला केंद्र में दिया जाता है। सरायकेला छऊ नृत्य आंगिक अभिनय प्रधान है जिसका प्रशिक्षण नाट्यो विद्यालयों में आंगिक अभिनय के लिए, नृत्य चिकित्सा [Dance Therapy], F.T.I आदि में दिया जाता है मुझे ऐसा प्रतीत होता है की नाट्यशास्त्र और सरायकेला छऊ बहुत हद तक सिद्धांत का प्रयोग है और वर्तमान रंगमंच में सरायकेला छऊ के हस्तक्षेप से हम अपने पारंपरिक रंगमंच और रंगमंच की सभी शैलियों को तर्क दे सकते हैं क्योंकि सरायकेला छऊ आंगिक अभिनय को मजबूत बनाता है क्योंकि मानव के पास उसका शरीर ही है जो ता उग्र एक यंत्र के रूप में काम करता है। ऐसा सरायकेला छऊ की परंपरा का निरंतर विकास होने से हुआ है।

संदर्भ :-

- ¹ प्रसाद, डॉ. बदरी. (2000-2001, नवंबर से फरवरी). सराईकेला का छऊ नृत्य और प्रमुख कलाकार. *चौमासा*. (54) पृ. 27-36
- ² कोठारी, डॉ. सुनील. (1983, अक्टूबर). सेराईकेल्ला के छऊ नृत्य. *रंगयोग*. पृ. 49-52
- ³ वात्स्यायन, कपिला. (2015). *पारंपरिक भारतीय रंगमंच*. पृ. 57
- ⁴ आचार्य, शशधर. (2004, अक्टूबर-दिसंबर). जब साथ होते हैं मुखौटा और मूकाभिनय. *रंग प्रसंग*. (16), पृ. 10-16
- ⁵ प्रसाद, बदरी. (2008). *छऊ नृत्य कला*. नई दिल्ली : सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार सूचना भवन. पृ. 4
- ⁶ प्रसाद, योगेंद्र. (2012). *झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर सरायकेला छऊ*. दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृ. 42
- ⁷ प्रसाद, योगेंद्र. (2012). *झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर सरायकेला छऊ*. दिल्ली : किताबघर प्रकाशन. पृ. 54

विकलांग केंद्रित हिंदी उपन्यासों में विकलांगों की आर्थिक दशा

डॉ. शिप्रा शुक्ला*

shiprajji@gmail.com

उपन्यास हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण गद्य विधा है, जिसके माध्यम से मानव जीवन की समस्याओं को विस्तारफ़लक के साथ प्रस्तुत किया जाता है। यदि उपन्यास के शाब्दिक अर्थ की बात की जाए तो उपन्यास शब्द 'उप' उपसर्ग और 'न्यास' पद के मिलन से बना है, जिसका आशय है उप=समीप, न्याय रखना, स्थापित रखना। अर्थात् जिस कृति को पढ़कर पाठक को यह आभास हो कि यह कृति उसी की है, उसी के जीवन की है और उसी की भाषा में रोपित की गई है, इसलिए निःसन्देह कहा जा सकता है कि उपन्यास मानव जीवन की काल्पनिक कथा है। डॉ. राजीव शर्मा के अनुसार "उपन्यास अपेक्षाकृत नई साहित्यिक विधा है। इसमें सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को उभारने का प्रयास किया जाता है। इसमें समान्य जीवन के द्रंढ, फैलाव और गति का समावेश अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में अधिक होता है।"¹ इसी तरह कथा सम्राट प्रेमचंद उपन्यास को मानव जीवन का चित्र बताते हैं।

उपन्यासों की शुरुआत पश्चिम से मानी जाती है। यदि हिंदी साहित्य की बात करें तो इसे एक आधुनिक गद्य विधा के रूप में देखा जाता है, जिस समय हिंदी में गद्य का सूत्रपात हुआ, उस समय देश सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में अनेक तरह से संघर्ष कर रहा था, या यूँ कहें तो इस दौर को नवजागरण काल कहा जा सकता है। भारतेन्दु मण्डल के विभिन्न रचनाकारों ने गद्य की अलग-अलग विधाओं में कलम थामकर देश की सुप्त जनता को राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक उन्मेष का संदेश दिया। इन नवीन गद्य विधाओं में एक विधा हिंदी उपन्यास की है। डॉ. गोपाल राय के कथनानुसार "हिंदी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा संबंध है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिंदी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया कुछ बाद में आरंभ हुई, इसलिए हिंदी में उपन्यास का आरंभ भी, बँगला और मराठी की अपेक्षा, तनिक बाद में हुआ।"² हिंदी उपन्यासों का एक लंबा इतिहास रहा है। हिंदी का पहला उपन्यास कौन सा है इसको लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। यदि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इसकी शुरुआत मानी जाए तब भी इसकी एक लंबी यात्रा जारी है। समय के साथ इसकी विषय-वस्तु एवं शिल्प दोनों रूपों में काफी परिवर्तन होते रहे। समाज, राजनीति, धर्म, अर्थतंत्र, मनोविज्ञान, पूंजीवाद, किसान, स्त्री-पुरुष संबंध, शहरीकरण, पर्यावरण, उपेक्षित वर्ग आदि अनेक विषयों के साथ रचनाकार इस विधा को समृद्ध करते रहे।

बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अनेक मायनों में महत्वपूर्ण है। उत्तर-आधुनिकता की विचारधारा ने विश्व भर में अपने आसपास फैले समाज को देखने और समझने का एक नवीन दृष्टिकोण दिया। इसकी धमक हिंदी

* सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, तेजपुर केंद्रीय विश्वविद्यालय, असम

उपन्यासों पर स्पष्ट लक्षित होती होती है। सदियों से वर्चस्ववादी सत्ता के अधीन रहने वाली उपेक्षित आबादी ने अपनी स्थानीय अस्मिताओं के साथ न केवल सामने आने का साहस किया बल्कि अपने हक की मांग भी पुरजोर ढंग से आरंभ की। इन्हीं वर्गों में एक है विकलांग वर्ग। विकलांगता को लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर अनेक अवधारणाएँ विकसित हुई, किन्तु यदि संक्षेप में इसे परिभाषित किया जाए तो ये कहा जा सकता है कि समाज में विकलांग उसे माना जाता है, जो जन्म से अथवा जन्म के बाद अनेक कारणों से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक रूप से कुछ कार्यों को पूर्णतः अथवा कुछ सीमा तक करने में अक्षम होता है। समय के साथ अलग-अलग देशों के कानूनों में विकलांगता की विभिन्न कोटियों एवं अवस्थाओं का विश्लेषण मिलता है। सदियों से समाज में अनुपयोगी एवं बोझ के समान माने जाने वाले विकलांग वर्ग को भेदभाव एवं अन्याय का सामना अपने घर और घर के बाहर दोनों जगह करना पड़ा। ऐसे में यदि हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त विकलांगजनों पर दृष्टिपात किया जाए तो इन उपन्यासों की संख्या बेहद कम है। या यूँ कहें बहुत कम रचनाकारों का ध्यान विकलांग वर्ग की समस्याओं की ओर गया है। प्रेमचंद का रंगभूमि, राधिकारमण प्रसाद सिंह का सूरदास, रेणु का मैला आँचल, श्रीलाल शुक्ल का रागदरबारी, अमृतलाल नागर का खंजन नयन, मृदुला सिन्हा का ज्यों मेहँदी का रंग, अल्का सरावगी का कोई बात नहीं, मनीषा कुलश्रेष्ठ का स्वप्नपाश जैसे कुछ उपन्यास लिखे गए हैं जिनमें विकलांग पात्रों की सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं लैंगिक समस्याएँ अलग-अलग पात्रों के माध्यम से सामने आती हैं। इस लेख के माध्यम से विकलांग केंद्रित हिंदी उपन्यासों में चित्रित विकलांग की आर्थिक दशा का विश्लेषण किया गया है।

मनुष्य स्वभावतः सुविधाजीवी होता है। औद्योगिक विकास एवं वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव की जीवन स्थिति को दिन-प्रतिदिन सुविधा के तमाम विकल्पों से लैस कर दिया है। जीवन को आसान और सहज बनाके संसाधनों की बहुलता आज हर तरफ व्याप्त है, किन्तु पूंजी की अनिवार्यता एवं बढ़ती आवश्यकता से इन संसाधनों की पहुँच, समाज के हर व्यक्ति तक नहीं है। आज अर्थ मानव समाज की सबसे महत्वपूर्ण जरूरतों में से एक हो गया है। हमेशा से शक्ति सम्पन्न वर्ग अर्थ के संसाधनों पर अपनी सत्ता जमाए रखने का जो प्रयास करता रहा है। उसे मानव की एक बड़ी आबादी आर्थिक पराधीनता का दंश झेलने को विवश होती आई है। आर्थिक सशक्तिकरण जहां समाज में मनुष्य की सम्मानजनक स्थिति का कारण बनता है वहीं आर्थिक अभाव उसे अनेक स्तरों पर तोड़ता है। महादेवी वर्मा अपनी पुस्तक श्रृंखला की कड़ियाँ में अर्थ के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखती हैं कि “विवश आर्थिक पराधीनता अज्ञात रूप में व्यक्ति के मानसिक तथा अन्य विकास पर ऐसा प्रभाव डालती रहती है, जो सूक्ष्म होने पर भी व्यापक तथा परिणामतः आत्मविश्वास के लिए विष के समान है। दीर्घकाल का दासत्व जैसे जीवन की स्फूर्तिमती स्वच्छंदता नष्ट करके उसे बोझिल बना देता है, निरंतर आर्थिक परवशता भी जीवन में उसी प्रकार प्रेरणा-शून्यता उत्पन्न कर देती है। किसी भी सामाजिक प्राणी के लिए ऐसी स्थिति अभिशाप है जिसमें वह स्वावलंबन का भाव भूलने लगे, क्योंकि इसके अभाव में वह अपने सामाजिक व्यक्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता है।”³

समाज में विकलांग वर्ग हमेशा से हाशिए पर ही खड़ा दिखाई देता है। मानव सभ्यता के इतिहास में विकलांगों के जीवन की संघर्षगाथा एक अलिखित चर्चा है, जिस समाज ने विकलांगों को दीनहीन, बेचारा मानकर पूर्ण मानवीय गरिमा से वंचित रखा और जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का कोई भी सहज और सुगम मार्ग उनके लिए नहीं छोड़ा, उस समाज को विकलांगों की आर्थिक दशा की विसंगतियों का भान भला कैसे हो सकता है? शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को जीविकोपार्जन के लिए अनिवार्य ठहराने वाली सामाजिक व्यवस्था ने शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम विकलांग वर्ग को आर्थिक रूप से सशक्त करने की बात को सिरे से नकारा। यही कारण है कि हिंदी उपन्यासों में चित्रित अधिकांश पात्र गरीबी एवं भुखमरी से जूझते दिखाई देते हैं। हिंदी के बहुत कम उपन्यास ऐसे हैं, जिनमें विकलांगों की आर्थिक दशा का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त हो, जाहिर है कि इन रचनाओं में समाज की वही संकीर्ण मानसिकता समाने आती है, जिसके मुताबिक शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक रूप से अक्षम व्यक्ति में उत्पादन शक्ति एवं कार्यक्षमता की संभावना न के बराबर है। अतः बहुत कम उपन्यासों में विकलांगों का आर्थिक जीवन उभरकर सामने आता है। प्रायः समाज में विकलांगजनों की बड़ी आबादी रोजगार के अभाव में भीख मांगते हुए अपना जीवन निर्वहन करती है। पेट की भूख के लिए परिस्थितियाँ उन्हें ऐसा करने पर विवश कर देती हैं। यहाँ यह कहना ज्यादा उचित होगा कि सामाजिक संरचना का असमावेशी होना उन्हें यह करने के लिए लंबे समय से परंपरा के रूप में प्रदान कर रहा है। हिंदी उपन्यासों में भी विकलांग पात्रों की अक्सर यही स्थिति दिखाई देती है। प्रेमचंद रंगभूमि में दृष्टि विकलांग सूरदास का परिचय कराते हुए लिखते हैं “भारत वर्ष में ऐसे लोगों के लिए न नाम की जरूरत होती है न काम की, सूरदास उनका बना बनाया नाम है और भीख मांगना बना बनाया काम”⁴ भीख मांगने की इस मजबूरी को ढोते विकलांग-पात्र हिंदी उपन्यासों में अमूमन दिख जाते हैं। मृदुला सिन्हा के उपन्यास ‘ज्यों मेहंदी को रंग’ का अस्थि विकलांग पात्र दर्शन कृत्रिम पाँव लग जाने के पश्चात् भी भीख मांगता है और इसके लिए रोके जाने पर बड़े सटीक शब्दों में कहता है “फिर कहाँ से खाऊँगा? बाल बच्चों को क्या खिलाऊँगा? भीख न मांगे तो क्या करें पैर बन जाने से क्या मैं कलक्टर बन जाऊँगा? कुर्सी मिल जाएगी मुझे। कुर्सी तोड़ते बैठा रहूँगा। मुझे रोटी तो चाहिए।”⁵ भारतीय समाज में विकलांगों के लिए आर्थिक समावेशन के द्वार सदियों से बंद रहे हैं, ऐसे में धनार्जन के लिए रोजगार की बात सोचना इस वर्ग की खातिर काफी मुश्किल होता है। दर्शन की कही गई निम्न बात को शालिनी सोचती है जहाँ अपनी आर्थिक विवशता की पीड़ा को व्यक्त करते हुए दर्शन कहता है “हाथ-पाँव के अभाव में बेकार बैठे व्यक्ति को अपने लिए रोजगार ढूँढने में समय लगेगा ही। नौकरियों की बात सोचना ही बेकार है। भले चंगे लोग इस देश में लाखों बेरोजगार बैठे हैं। यहाँ कृत्रिम पैर पर चलते अपाहिज को सरकार कहाँ से नौकरियाँ दे देगी।”⁶

समाज में विकलांगों के लिए कुछ सीमित कार्यों को ही निर्धारित माना गया है, जैसे भीख मांगना, संगीत के माध्यम से भजन गाना बजाना, लोगों के मनोरंजन हेतु खेल तमाशा दिखाना, ईश्वर की भक्ति करना, दृष्टि विकलांगों के लिए मोमबत्ती आदि बनाना। हिंदी उपन्यासों में अधिकांश विकलांग चरित्र इन्हीं कार्यों के इर्द-गिर्द अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करते और अपने जीवन को जैसे-तैसे संभालते सहजते

दिखाई देते हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास भगवत् भक्ति के साथ भीख मांगता है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास 'सूरदास' में दोनों विकलांग पात्र भगवत् भक्ति के साथ कभी-कभी ग्रीष्म काल में पंखा खींचने के काम में लगे दिखते हैं। 'मैला आँचल' का बामनदास लोगों का मनोरंजन करता है और इसी उपन्यास का सेवाददास अपना जीवनयापन करने के लिए धार्मिक मठ में रहता है। 'खंजन नयन' का सूरज गाने-बजाने के साथ-साथ ज्योतिष ज्ञान के क्षेत्र में भी अपने हाथ आजमाता है। तरुण भटनागर के उपन्यास 'बेदावा एक प्रेमकथा' में सुधीर मोमबत्ती बनाता और उन्हें बेचकर पैसे कमाता है। खेल, मनोरंजन आदि क्षेत्र में बेहतर करने के बावजूद विकलांगों को कई स्तरों पर भेदभाव एवं उपेक्षा झेलनी पड़ती है। ब्लाईंड क्रिकेट टीम द्वारा ऐसे ही भेदभाव का सामना करने की घटना का जिक्र प्रदीप सौरभ अपने उपन्यास 'ब्लाईंड स्ट्रीट' में करते हैं। वे बताते हैं कि "ब्लाईंड क्रिकेट टीम को दर्शक देखने नहीं आते, न ही उन्हें सामान्य क्रिकेटर्स की तरह पैसे ही मिलते हैं।"⁷ परिवार में विकलांगजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं उनकी देख-रेख में अधिक समय व्यय होने के कारण उनके माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों का आर्थिक जीवन भी यदाकदा प्रभावित होता दिखाई पड़ता है। 'वे वहाँ कैद हैं' प्रियंवद का महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें जीवन नामक बहु-विकलांग बच्चे की कथा है। यहाँ जीवन की माँ प्रातु अपने बच्चे के लिए दिन-रात काम करती है, जिससे उसका आर्थिक जीवन प्रभावित होता है।

चित्रा मुद्गल अपने उपन्यास 'आँवा' में एक लकवाग्रस्त पात्र की आर्थिक चिंताओं को स्वर देती हैं। देवीशंकर पाण्डेय विकलांगता के कारण चल-फिर नहीं पाता उसे उपचार के लिए अस्पताल में भर्ती तो किया जाता है लेकिन वहाँ का इलाज बेहद महंगा होता है। इस प्रकार देवीशंकर निर्धनता की वजह से अपना इलाज अच्छे अस्पताल में नहीं करा पाता है। कैलाशनाथ पाण्डेय अपने उपन्यास 'अपनी जमीन देखो' में महदेई नामक विकलांग स्त्री पात्र की आर्थिक दुर्दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण करते हैं। महदेई अपनी विकलांगता के कारण मायके में रहती है। उन लोगों पर वह बोझ न बने इसके लिए अपने पति से विवशतापूर्वक वह कहती है की "आप हमका दस रुपया दिया करो और आप दूसर शादी कई लेवा"⁸ 'आगामी अतीत' उपन्यास में कमलेश्वर ने गरीबी से जूझते हरचरण हरकारा की उस मजबूरी को रेखांकित किया है जहाँ अपना और अपने परिवार का पेट भरने की परिस्थिति उसे अपने प्रतिकूल कार्य करने के लिए विवश करती है और उसका जीवन ही समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'रंगभूमि' में सूरदास की आर्थिक दशा के माध्यम से भारतवर्ष में विकलांगों के कठिन जीवन संघर्षों एवं रोजगार के अभाव को प्रस्तुत किया है। उपन्यास में एक स्थान पर भीख मांगने वाला सूरदास अपनी आर्थिक दुर्दशा से हताश होकर मन ही मन विचार करता है कि "भीख न मांगू तो खाऊँ क्या? और फिर जिंदगी पेट ही पालने के लिए थोड़े ही है। कुछ आगे के लिए भी तो करना है। नहीं इस जनम में तो अंधा हूँ ही, उस जनम में इससे भी बड़ी दुर्दशा होगी। पितरों का रिन सिर सवार है, गयाजी में उनका सराध न किया, तो वे भी क्या समझेंगे कि मेरे वंश में कोई है! मेरे साथ तो कुल का अंत ही है। मैं यह रिन न चुकाऊंगा, तो और कौन लड़का बैठा हुआ है, जो चुका देगा? कौन उद्दम करूँ? किसी बड़े आदमी के घर पंखा खींच सकता हूँ, लेकिन यह काम भी तो साल भर में चार ही महीने रहता है, बाकी महीने

क्या करूंगा? सुनता हूँ अंधे कुर्सी, मोढ़े, दरी, टाट बुन सकते हैं, पर यह काम किससे सीखूँ? कुछ भी हो, अब भीख न मांगूंगा।”⁹

शिक्षा मनुष्य के जीवन का एक ऐसा सहायक माध्यम है जिसके बल पर वह रोजगार की संभावनाओं को तलाश सकता है अथवा उद्यम के नए मार्ग अपने ज्ञान के माध्यम से निर्मित कर सकता है लेकिन उसे यदि शिक्षा के ही उचित अवसर प्रदान न किए जाएँ तो उसका आर्थिक सशक्तिकरण संभव नहीं दिखता। शिवकुमार शिव के उपन्यास ‘तुम्हारे हिस्से का चाँद’ की अस्थि बाधित पात्र सावित्री अपने पति के द्वारा अनेक स्तरों पर अत्याचार एवं उत्पीड़न झेलती है किन्तु उसका साक्षर होना उसे उस नारकीय जीवन से बाहर लाकर एक सम्मानजनक एवं आत्मनिर्भर जीवन प्रदान करता है। सावित्री उन विकलांगों की तरह यथास्थिति में जीवन नहीं बिताती जो शोषण एवं अन्याय को ही अपनी नियति मान बैठते हैं। वह अपनी सूझबूझ से अपने पति को संपत्ति से बेदखल कर उसे अपने नाम करवा लेती है और अपने साथ हो रहे अन्याय को हमेशा के लिए खत्म कर देती है। यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विकलांगों के लिए शिक्षा ही वह साधन है जिससे आर्थिक पराधीनता की जंजीरें शिथिल हो पाएँगी और वे आर्थिक समावेशन की दिशा में आगे बढ़ पाएँगे।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी उपन्यासों में विकलांगजनों की आर्थिक दशा बेहद गंभीर एवं विचारणीय है। उपन्यासों में चित्रित ये पात्र समाज के उस कड़वे सच को उद्घाटित करते हैं जिसके मुताबिक विकलांगों का आर्थिक जीवन अनेक अवरोधों एवं विसंगतियों का शिकार है। इस विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि आर्थिक पराधीनता से मुक्ति पाने और सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए विकलांगों की शिक्षा नितांत अनिवार्य शर्त है। शिक्षित विकलांग व्यक्ति आत्मनिर्णय लेने में सक्षम होता है, साथ ही अर्थोपार्जन की तमाम संभावनाएं उसके सामने होती हैं। इस अनुकूल परिस्थिति में वह खुद पर हो रहे अमानवीय कृत्यों के खिलाफ प्रतिरोध करने की क्षमता हासिल कर लेता है, साथ ही परावलंबन के घातक परिणामों से सुरक्षित भी रह सकता है।

संदर्भ :-

1. शर्मा, डॉ राजीव. (2017, जुलाई). हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा. *जर्नल ऑफ अडवांस एंड स्कोलर्ली रिसर्चर्स इन अलाइड एजुकेशन*. Retrieved from <https://ignited.in/p/221626>.
2. राय, गोपाल. (2016). *हिंदी उपन्यास का इतिहास*. सातवाँ संस्करण, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 23.
3. वर्मा, महादेवी. (2017). *शृंखला की कड़ियाँ*. चतुर्थ संस्करण, इलाहाबाद: लोकभरती प्रकाशन. पृ. 89.
4. प्रेमचंद. (2016). *रंगभूमि*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. पृ. 05.
5. सिन्हा, मृदुला. (2016). *ज्यों मेहंदी को रंग*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. पृ. 106.
6. वही, पृ. 107.
7. सौरभ, प्रदीप. (2020). *ब्लाइंड स्ट्रीट*. दिल्ली: नई किताब प्रकाशन. पृ. 15.
8. पाण्डेय, कैलाशनाथ. (2003). *अपनी जमीन देखो*. इलाहाबाद : ऋतिका प्रकाशन. पृ. 33.
9. प्रेमचंद. (2019). *रंगभूमि*. नोयडा उत्तर प्रदेश : मापले प्रकाशन. पृ. 65.

उपन्यास मैला आँचल का नाट्य-मंचन स्वरूप

कंचन*

aryakanchan18@gmail.com

सारांश :

उपन्यासों को मंच पर नाटक के रूप में लाना एक जटिल प्रक्रिया है। 'मैला आँचल को भी मंच की दृष्टि से देखा जाएगा' यह सोचना भी अचंभित कर देता है किन्तु ऐसे निर्देशक हुए जिन्होंने ये जोखिम उठाया। निर्देशक सुरेश शर्मा ने ये असम्भव सा कार्य संभव किया और मैला आँचल का नाट्य-रूपांतरण कर एक सफल प्रस्तुति की है। उनकी प्रस्तुति की साक्षी मैं स्वयं रही हूँ और इस आलेख में मैला आँचल जो कि एक आंचलिक उपन्यास है, नाटक के रूप में मैला आँचल कैसा रहा इसे समझने का प्रयास करेंगे।

बीज शब्द : उपन्यास, नाटक, आंचलिक, रंगमंच, प्रयोग, प्रस्तुति

शोध-विस्तार

हिन्दी रंगमंच के रंगकर्मी, नाटकों को मंच पर उतारने का प्रस्तुति-प्रयोग सदैव करते रहे हैं। हिन्दी में कुछ गिने-चुने नाटकों को ही मंच पर जीवित किया जाता है, जो कई वर्षों से मंच पर लगभग सभी चर्चित निर्देशकों द्वारा खेले जा चुके हैं। ऐसे में निर्देशक सदैव नवीन कथावस्तु के लिए कहानी, कविता या उपन्यास की ओर अपनी रुचि दिखाते हुए नाटकों से इतर रचनाओं का नाट्य-रूपांतरण करते हैं। जो लगभग बहुत वर्षों से हो भी रहा है जिसमें देवेन्द्रराज अंकुर जी ने तो लगभग साहित्य जगत की बहुत सी कहानियों को मंच पर साधारण व्यवस्था में ही उतार दिया। "आज कथामंचन अपने आप में एक सशक्त नाट्यशैली के रूप में खड़ा है। उपन्यास और कहानी का नाट्य-रूपांतरण हो अथवा उसकी यथावत मंचीय प्रस्तुति की प्रक्रिया-दोनों ही स्थितियों में उसका माध्यम बदलता है। पाठक को दर्शक में बदलने की इस प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण चीज होती है कथा में निहित नाटकीयता की तलाश, अर्थात् स्थितियों, घटनाओं, भावाभिव्यक्तियों, मनःस्थितियों के उन बिन्दुओं और पहलुओं की तलाश जो दर्शक के सामने प्रत्यक्ष होकर उसे प्रभावित कर सके। कथामंचन की इस पूरी प्रक्रिया में रूपांतरकार, निर्देशक और अभिनेतागण की पूरी-पूरी साझेदारी होती है। दोनों या तीनों मिलकर प्रस्तुति को संभव और सफल बनाते हैं। मन्नू भंडारी के 'महाभोज', भीष्म सहानी के 'कबीरा खड़ा बाजार में', प्रेमचंद के 'गोदान', 'रंगभूमि', तथा 'मंगलसूत्र' और अनेक उपन्यास, हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा', मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु कुरु स्वाहा', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', तथा

* पीएच. डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

‘जुलूस’ श्रीलाल शुक्ल के ‘राग दरबादी’, अमृतलाल नागर के ‘सुहाग के नुपूर’ आदि अनेक उपन्यासों की नाट्य रूपांतर प्रस्तुतियों ने हिन्दी रंगमंच को वैविध्यपरक बनाया।¹ उपन्यास को नाट्य-रूपांतरित करके मंच पर उतारना कहानी, कविता या एक बने-बनाये नाटक की नाट्य-प्रस्तुति करने से कहीं अधिक कठिन कार्य है चूँकि उपन्यास एक विस्तृत फलक की रचना है। इसमें विवरण अधिक होता है जिसे मंचीय रूप में लाने के लिए रूपांतरकार द्वारा एक लम्बी प्रक्रिया अपनाई जाती है।

हिन्दी उपन्यास ‘मैला आँचल’ एक कालजयी रचना है। वर्ष 1954 में इसे फणीश्वरनाथ रेणु ने लिखा। इसे आंचलिक उपन्यास कहा जाता है, स्वयं रेणु जी ने इस उपन्यास की भूमिका में कहा “यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है; इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुक्कमल हो जाती है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पच्छिम में मिथिला की सीमा-रेखाएँ खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को-पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर-इस उपन्यास-कथा का क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।”² जिस प्रकार रेणु ने इस उपन्यास में आंचलिकता के सभी पक्षों को समेटा है और एक अंचल को सुगन्धित गुलदस्ते के रूप में मैला आँचल का स्वरूप दिया तो क्या नाट्य-रूपांतरकार भी इस उपन्यास के विभिन्न पहलुओं को अपनी नाट्य प्रस्तुति में समेट पाते हैं या नहीं आगे देखते हैं।

मैला आँचल उपन्यास का नाट्य-रूपांतरण लगभग 1987 में निर्देशक सतीश आनंद जी ने बिहार में किया था। यह वह समय था जिसकी नाट्य-प्रस्तुति की कोई विडियो रिकॉर्डिंग नहीं मिल पाई क्योंकि जब मैं सतीश आनंद जी से साक्षात्कार हेतु मिली तो उन्होंने मुझे बताया कि उस समय रिकॉर्डिंग नहीं हुए थी या हुई थी तो उनकी स्मृति में नहीं है। इस कारण से उनके द्वारा कि गई नाट्य-प्रस्तुति का अध्ययन नहीं कर पाई, किन्तु प्रस्तुति पर उनसे हुयी चर्चा को मैं अवश्य बताना चाहती हूँ कि उन्होंने मैला आँचल की नाट्य-प्रस्तुति विदेशिया शैली में की थी और ये विदेशिया शैली का फॉर्मेट उनके द्वारा स्वयं बनाया गया था। लगभग दो दशक के बाद मैला आँचल को मंच पर प्रसिद्ध निर्देशक सुरेन्द्र शर्मा द्वारा फिर लाया गया। इनके समूह ‘रंगसप्तक’ द्वारा 27 जून 2016 में मैला आँचल की प्रथम प्रस्तुति हिंदी साहित्य अकादमी के सौजन्य के द्वारा कराये गये ग्रीष्म कालीन समारोह में की गई, जो प्रस्तुति दर्शकों द्वारा खूब सराही गई थी। प्रथम प्रस्तुति सफल होने के पश्चात् राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा आयोजित भारतीय रंग महोत्सव (भारंगम) में 17 फरवरी 2017 में इसकी दूसरी नाट्य-प्रस्तुति हुयी जिसे प्रथम प्रस्तुति से भी अधिक सराहा गया। उपन्यास शिल्प का नाट्य-शिल्प में जब अवतरण हुआ तो मैला आँचल में फणीश्वरनाथ रेणु ने उसमें जो विस्तार दिया गया है, उन्होंने उसे दृश्यों में परिवर्तित किया तथा प्रस्तुति की शैली उन्होंने यथार्थवादी रखी है। रेणु ने जिस प्रकार इस उपन्यास की कथावस्तु एक अंचल की कहानी दी है, सुरेन्द्र शर्मा जी ने भी इसे इसकी सम्पूर्णता में पकड़ने का भरपूर प्रयास किया है। इस नाट्य प्रस्तुति की अवधि लगभग 2 घंटे 15 मिनट की थी जिसमें 7-10 मिनट का मध्यांतर भी

रहा। 23 दृश्यों में उन्होंने उपन्यास की कथावस्तु में दी गई प्रत्येक कथा, प्रत्येक उपकथा, प्रत्येक समस्या को बखूबी दिखाने का प्रयास किया है, बल्कि अभिनय, गीत-संगीत, मंचसज्जा, वस्त्रसज्जा, रूपा सज्जा आदि में भी रंगमंचीय-प्रस्तुति उम्दा थी। मैं स्वयं उस रंगमंचीय-प्रस्तुति की साक्षी हूँ।

दृश्य संयोजन :

मैला आँचल की नाट्य-प्रस्तुति में कुल 23 दृश्यों में कथा का प्रदर्शन हुआ है। प्रथम दृश्य होली के गीत पर गाँव के सभी लोग नाच रहे हैं। तभी मोटा साहब आकर मलेरिया सेंटर खुलने की खबर दे कर जाते हैं। उसी से जुड़ा हुआ अगला दृश्य है, जहाँ खेलावन यादव के द्वार पर मीटिंग रखी गई है कि मलेरिया सेंटर के लिए किस-किस प्रकार से सब को मदद करनी है। कथा को आगे बढ़ाते हुए तीसरा दृश्य जिसमें हरगौरी बालदेव को खरी-खोटी सुनाता है। तभी उसी दृश्य में ज्योतखी जी का प्रवेश होता है जो गाँव में मलेरिया सेंटर खुलने के विरोधी हैं और विलायती दवाओं को बुरा बताता है, चौथे दृश्य में कालीचरण के अखाड़े में उसके अखाड़े के लोग बात-चीत कर रहे हैं। बालदेव गांधी के विचार प्रस्तुत करता है तथा अखाड़े के लोग हरगौरी की बुराई करते हैं, बालदेव चला जाता है और अखाड़े का ढोल बजता है सभी कसरत करने लगते हैं दृश्य समाप्त। अगला दृश्य कड़ी को जोड़ते हुए मठ पर होने वाला व्यभिचार को दिखता है अंधा महंत गाँव में मलेरिया सेंटर खुलने पर गाँव में भंडारा कराना चाहता है। जाति के कारण ब्राहमण टोले के लोग अपने से नीचे जाति के साथ एक पंगत में खाने का विरोध करते हैं। इस प्रकार अन्य टोले के लोग भी अपने से नीचे माने जाने वाले टोलो के साथ एक पंगती में नहीं खाएँगे उनका आटा, चीनी, घी अलग से दे दें वे स्वयं बना कर खा लेंगे। इस समस्या के हल के लिए गाँव वालों के साथ एक मीटिंग रखी जाती है और लक्ष्मी दासिन निवेदन करती है कि यह परमार्थ कारज में सब सहयोग कर एक ही पंगत में भंडारा करें, बालदेव के गाँव छोड़कर जाने की बात से सभी भंडारे में एक साथ शामिल हो जाते हैं और इसी दृश्य में प्यारु और डॉक्टर का प्रवेश होता है। जो इस गाँव की आबादी तथा यहाँ के लोगों का व्यवहार जानने के लिए बिरंची से कुछ प्रश्न करते हैं और इस दृश्य की समाप्ति होती है। अगले दृश्य में मठ पर अंधा महंत और लक्ष्मी सोए हैं तभी महंत अपने चित्त को संभाल नहीं पाता और माया में पड़ कर लक्ष्मी के साथ संभोग करने की कोशिश करता है और तभी उसके प्राण पखेरू हो जाते हैं। अगले दृश्य में अर्थाँ उठा कर ले जाते हैं और लक्ष्मी अकेले में अपने आप को कोसती है कि दासिन होकर गुरु की अंतिम समय में इच्छा पूरी न कर सकी उसी दृश्य में बालदेव का प्रवेश होता है दोनों के बीच संवाद दृश्य समाप्त।

आगे का दृश्य डॉक्टर के क्लिनिक पर जहाँ परखनलियों में कुछ टेस्ट कर रहा है, तभी तहसीलदार अपनी बेटी की बेहोशी की खबर लेकर आता है। आगे के दृश्य में कमली बेहोश है और डॉक्टर उसे जांचता है और सुई देने को कहता है तभी वह झट से उठकर बच्चों की तरह कहती है मैं सुई नहीं लुंगी। इसी तरह दूसरी बार बेहोशी का नाटक करती है तो वह रेडिओ बजाता है जिसमें शादी का गीत बजता है वह सभी नाचने लगते हैं सीन समाप्त। अगले दृश्य में स्थानीय मठ में रामदास महंत की चौकी पर बैठा बीजक उलटला-पलटता है।

अब वह एक मात्र चेला होने के कारण मठ का महंत बनने का सपना देखता है तभी लरसिंह दास आकर सूचना देता है कि काशी से अचारज गुरु आ रहे हैं, महंत की गद्दी सँभालने और लक्ष्मी तथा मठ की संपत्ति के प्रति लालच भाव दिखाता है, दृश्य समाप्त।

यादव टोला है, कालीचरण कहता है छोड़ दिया है बालदेव की पार्टी को, 2 गज कपड़ा मांगे, कैसे अकड़ के दिखाए। अब सोशलिस्ट पार्टी अपना लिया है इसमें कोनो लीडर नाही सब साथ है सीन एंड। आगे के दृश्य में मठ पर अचारज गुरु लक्ष्मी, रामदास को गालियाँ देता है और कालीचरण उसे मार पीटकर वहां से भगा देता है और रामदास को महंत घोषित कर देता है। इस प्रकार अगला दृश्य इस कथा को जोड़ता हुआ डॉ. प्रशांत और कमली का प्रेम प्रसंग दर्शाता है उधर हरगौरी को पुलिस पकड़ कर ले जाती है साथ ही कालीचरण और डॉ. प्रशांत को भी पकड़ लेते हैं सथालो को भड़काने के जुर्म में। जैसा कि उपन्यास की कथा है अंतिम दृश्य में तहसीलदार और उसकी पत्नी अपनी बेटी के गर्भ धारण करने पर विलाप करते हैं और तहसीलदार डॉक्टर को कोसता है किन्तु बेटी को बेटा होने पर तथा डॉक्टर द्वारा कमली को अपनाने पर वह खुश होता है और गाँव वालों को उनकी जमीन वापस कर मानवीयता को दर्शाता है। रंगमंचीय दृष्टि की सीमाओं के भीतर उपन्यास से सम्पादित दृश्य संयोजन ठीक-ढंग से, सतर्कता के साथ किया गया और दर्शकों को आनंद भी आया।

मैला आँचल में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, अन्धविश्वास, आडम्बर, हास्य-व्यंग्य-विनोद, प्रेम-आकर्षण, नाच-गीत-संगीत सब कुछ विद्यमान है। उपन्यासकार ने स्वयं इन क्षेत्रों में रहकर इन्हें समझा और बारीकी से परख कर वर्णित किया है। “रेणु के उपन्यासों में अंचल का सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण अपने सम्पूर्ण आंतरिक और बाह्य पक्षों तथा पहलुओं के साथ भाविक सृजनात्मकता के नये आयामों के रूप में चित्रित तथा रूपायित हुआ है। वातावरण चित्रण के बिम्ब, सादृश्य मूलक बिंब अनुभव मूलक बिंब आदि अनेक प्रकार के बिंबों तथा ध्वन्यात्मकता, सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता के द्वारा आज की समकालीन जिंदगी एवं उसके परिवेश का रूपायन जिस रूप में रेणु के उपन्यासों में हुआ है, उस रूप में अन्य आंचलिक उपन्यासों में नहीं है।”³ इस प्रकार मैला आँचल में ये सभी पक्षों को देखा जा सकता है।

मैला आँचल को मंच पर उतारने अर्थात् रेणु के उस विचार को पाठकों से अलग हजारों दर्शकों के बीच ला कर खड़ा कर दिया है और निर्देशक ने मंचीय-व्यवस्था, वस्त्र सज्जा, रूप सज्जा आदि से दर्शकों का भरपूर मनोरंजन भी किया। सबसे अधिक प्रभावी कलाकारों का अभिनय व संगीत-संयोजन रहा। ग्रामीण अंचल में जिस प्रकार से रेणु ने मेरीगंज अंचल के समस्त जीवन शैली में होने वाली घटनाएँ देखी जाती हैं, उनको नाटक के रूप में कुछ झलकियों में देखा जाता है। परन्तु निष्कर्ष रूप में कहें तो मैला आँचल एक उपन्यास है और आंचलिकता की दृष्टि से यह बहुत-ही सशक्त उपन्यास है। नाटक के रूप में इसे मंच पर जीवंत कर देने का सुरेश शर्मा जी ने अच्छा प्रयास किया। मंचीय सीमाओं और नियमों की दृष्टि से देखा जाए तो रंगमंच के माध्यम से दर्शक को 2 घंटे की इस प्रस्तुति में 400 पृष्ठों का जो संक्षिप्त स्वरूप प्रकट किया गया वह

सराहनीय है किन्तु जैसा कि मैला आँचल एक विस्तृत फलक की रचना है और नाटक के रूप में उसकी सम्पूर्णता को पकड़ना असंभव ही प्रतीत होता है।



संदर्भ :-

1. पालीवाल, रीतारानी. (2018). *रंगमंच नया परिदृश्य*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 271
2. रेणु, फणीश्वरनाथ. (2017). *मैला आँचल*. (चवालीसवां संस्करण), नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, भूमिका से
3. सिंह, जवाहर. (1986). *हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि*. शोध-प्रबंध बिहार. पृ. 193

WHO IS NOT IN MY EXPERIENCE YET!!

Niraj Kumar*

nirajroybe@gmail.com

An offering to one!
Who is not in my experience yet!!

I am totally yours!
Please embrace me!!

I know the obstacle, you are not doing so,
Otherwise, I would have experienced,
The vastness of this cosmos!
Please embrace me!!

I want to experience you in this lifetime!
Please embrace me!!

If, I experience you in this lifetime,
Then the next life will be boon for me,
Otherwise, burden!
Please embrace me!!

Please, let me experience the vastness of this cosmos.
I am totally yours!
Please embrace me!!

A seeker

* A seeker from Pachpokhari, Rohtas (Sasaram), Bihar

तकनीकी हिंदी की विकास यात्रा

प्रो. सुधाकर शेंडगे*

dr.sudhakarshenles@gmail.com

हिंदी एक समय केवल बोलचाल की भाषा थी। फिर धीरे-धीरे वह साहित्य की भाषा बनी लेकिन कई दिनों तक उसका भाषा तक ही आदान-प्रदान होता रहा। स्वातंत्र्य प्राप्ति से पहले यदि हिंदी का महत्व किसी ने जाना हो तो वे थे स्वामी दयानंद सरस्वती। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने अपने स्कूलों में हिंदी प्रथम भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी और इन स्कूलों में हिंदी माध्यम से अन्य विषयों की शिक्षा दी जाती थी। हिंदी के हिमायती 'लल्लू लाल ने सन 1810 में साढ़े तीन हजार शब्दों की एक सूची तयार की थी और उन शब्दों के फ़ारसी और अंग्रेजी प्रतिरूप भी दिए थे। सभी शब्द पारिभाषिक न थे, किंतु नये विषयों पर पुस्तक लिखने के लिए उपयोगी अवश्य थे।

आगे चलकर आगरा में एक स्कूल बुक सोसायटी ने 1847 में 'रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की थी। भारतेन्दु हरिश्चंद्र अपनी पत्रिका 'कविवचन सुधा' में लिखते हैं कि, "कायस्थ राजकीय पाठशाला के गणित विद्या के मुख्य अध्यापक पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र एम. ए. ने हिंदी भाषा में गणित विद्या की पूरी श्रेणी (Mathematical series) बनाने का संकल्प किया है। उक्त महाशय ने सरल त्रिकोणमिती (plane trigonometry) हिंदी में प्रस्तुत कर ली है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लक्ष्मीशंकर मिश्र जैसे कई विद्वानों ने विज्ञान, भूगोल, गणित, इतिहास आदि विषयों से संबंधित शब्दों का निर्माण किया था। सन 1862 में अलीगढ़ में 'साइंटिफिक सोसायटी' के नाम से एक विज्ञान समिति बनायी गयी थी। इस समितीने युरोप के वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद करने का प्रयास किया। इस समिति ने मौलिक ग्रंथ लिखने की भी एक योजना बनायी थी जिसमें युरोपीय विज्ञान, भाप इंजिन, कृषि के औजार, भूगर्भशास्त्र, भौतिकी की पाठ्यपुस्तक, आधुनिक औषधि, ज्योतिष शास्त्र, पर्वतों का इतिहास आदि पर पुस्तकें लिखीं थीं। सन 1962 में बनारस में एक वाद-विवाद क्लब के माध्यम से हिंदी में वैज्ञानिक शिक्षा देने का आंदोलन चलाया गया था, जिसके मंत्री बाबू शिवप्रसाद थे।

इस दिशा में काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। इस संस्था द्वारा सन 1898 में गणित, भूगोल, अर्थशास्त्र, भौतिक, रसायन विज्ञान, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र आदि विषयों के पारिभाषिक शब्द बनाने में अपनी अहं भूमिका निभायी। इस शब्दावली की आवश्यकता के संदर्भ में डॉ.

* प्रोफेसर, हिंदी विभाग, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद. (महाराष्ट्र) 431004

श्यामसुंदर दास लिखते हैं- “जब कभी किसी व्यक्ति से किसी वैज्ञानिक विषय की पुस्तक लिखने या अनुवाद करने के लिए कहा जाता है तो वह इसके लिए तभी तैयार होता है यदि सभा उन वैज्ञानिक शब्दों के पर्यायवाची शब्द हिंदी में बनाकर उन्हें दे दे जिनकी उस पुस्तक या लेख को लिखने में जरूरत पड़ेगी।” स्पष्ट है, समय की मांग ने उन्हें यह कार्य करने पर बाध्य किया। आगे चलकर सन 1900 में गुरुकुल कांगड़ी ने एक ऐतिहासिक कदम रखते हुए विज्ञान सहित सभी प्रकार की शिक्षा का माध्यम हिंदी को बनाया। सन 1913 में इलहाबाद में विज्ञान परिषद की स्थापना हुई और इसी वर्ष इस संस्था ने 'विज्ञान प्रवेशिका' नामक पुस्तक प्रकाशित की। सन 1916 में श्री नगेंद्रनाथ बसु ने विश्वकोश का कार्य आरंभ किया जो 1932 में संपन्न हुआ। सन् 1925 में बनारस से हिंदी विद्युत शब्दावली प्रकाशित हुई। इसी समय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कतिपय प्राध्यापकों के प्रयास से एक वैज्ञानिक शब्दकोश तैयार किया गया जिसमें पदार्थ विज्ञान, रसायन शास्त्र, गणित और ज्योतिष संबंधी कई नूतन शब्दों की उदभावना की गयी।

सन 1930 में विज्ञान परिषद, प्रयाग ने 4821 वैज्ञानिक शब्दों का शब्दकोश तैयार किया। 1939 में कृष्णवल्लभ द्विवेदी के संपादन में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में 'विश्वभारती' नाम से एक विश्वकोश का निर्माण किया। 1950 में डॉ. रघुवीर द्वारा तैयार किए गए शब्दावली 'Consolidated great English Indian dictionary of technical terms' में एक लाख से भी अधिक वैज्ञानिक - तकनीकी शब्दों का समावेश है। सन 1950 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली मंडल की नियुक्ति की गयी जिनमें डॉ. शांतिस्वरूप भटनागर, दौलतसिंह कोठारी, बैनी प्रसाद आदि वैज्ञानिकों के साथ- साथ डॉ. सुनितिकुमार चटर्जी, आचार्य नरेंद्र देव, श्री काका कालेलकर आदि भाषा विदों का समावेश था। इस समिति की बैठक में तत्कालिन शिक्षा मंत्री मौलाना आझाद ने कहा था कि, 'हम यहाँ हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के माध्यम के योग्य बनाने के लिए इकट्ठे हुए हैं।'

शिक्षा मंत्रालय ने 1952 में हिंदी अनुभाग की स्थापना की जिसके फलस्वरूप स्कूली पाठ्यपुस्तकों की पारिभाषिक शब्दावली बनायी गयी। सन 1961 में भारत सरकार ने वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इस आयोग के प्रयास से आज तक कई पाठ्यपुस्तकें, शब्दकोश, परिभाषा कोश, विभिन्न पत्रिकाएं, पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। आयोग ने विज्ञान, मानविकी, वानिकी, कृषि, कानून, तकनीकी शाखाओं की कई पुस्तकों का निर्माण किया है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में अब तक आयोग ने सौ से भी अधिक पुस्तकें तैयार की है। इस दृष्टि से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने भी अच्छा काम किया है। इस संस्था द्वारा कृषि विज्ञान क्षेत्र की दो सौ से भी अधिक बहुमोल पुस्तकों का निर्माण किया गया है। गणित तथा सांख्यिकी के क्षेत्र में भी आयोग ने सौ के आस-पास अनूदित और मौलिक पुस्तकें निर्माण करने का काम किया है। आयोग के लिए विज्ञान, समाजविज्ञान, गणित, सांख्यिकी, इतिहास, भूगोल, मानसशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, कृषि, अभियांत्रिकी, तकनीकी, रसायन, भौतिकी, रेल अभियांत्रिकी, वैमानिकी औषधिनिर्माण से लेकर ग्रह-उपग्रह तक कोई भी विषय अछूता नहीं रह

गया है। परंतु नई शिक्षा नीति ने हिंदी तथा भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने का निर्णय लिया है। अतः इस दिशा में और अधिक काम होने की आवश्यकता है।

वर्तमान युग कम्प्यूटर का युग है। दूसरे शब्दों में यह सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। समूचे संसार में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विशाल परिवर्तन हुए हैं। प्रौद्योगिकी का बृहत्तर उपयोग जनसंचार माध्यमों में ही हो रहा है। कम्प्यूटर और इंटरनेट ने मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं को उजागर करने का काम किया है। कम्प्यूटर के लिए जितना काम हिंदी ने किया है, उतना किसी भी भारतीय भाषा ने नहीं किया है। यह अलग बात है कि बाजारवाद के प्रभाव ने और हिंदी के दबाव ने हिंदी को कम्प्यूटर की भाषा बनाने के लिए बाध्य किया है। कम्प्यूटर के जनक 'बिल गेट्स' को भी हिंदी कम्प्यूटर के लिए एक सशक्त भाषा है, यह प्रमाणपत्र देना पड़ा।

सूचना प्रौद्योगिकी एक शास्त्रीय, तकनीकी एवं अभियांत्रिकीय शाखा है, जो सूचनाओं के तंत्र को विकसित करके उसका प्रयोग कम्प्यूटर के माध्यम से करते हुए मानव और मशीन के बीच सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को सुदृढ़ और सक्षम बनाने का काम करती है। औद्योगिक क्रांति में मशीनों के सहारे उत्पादकता बढ़ी है और गुणवत्ता में वृद्धि हुई है। कम्प्यूटर में हिंदी के प्रयोग की बढ़ती संभावनाओं को ध्यान में रखकर ही इलेक्ट्रॉनिक विभाग ने भारतीय भाषाओं के 'टेक्नॉलॉजी विकास' नामक परियोजना के अंतर्गत कई नये प्रोजेक्ट शुरू किये हैं जो तकनीकी हिंदी के विकास में सहायक हैं। इंटरनेट प्रणाली के महाशक्तिशाली तंत्र में भाषा का अपना एक विशिष्ट स्थान होता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जापानी, अरबी, स्पॅनिश, इटालियन, चीनी आदि भाषाएँ कम्प्यूटर के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ गयी है। हिंदी ने भी नये तकनीक में ढालते हुए अपने आपको सिद्ध कर दिया है। कम्प्यूटर संबंधित तकनीकी हिंदी की नयी शब्दावली तैयार की गयी है। अब तो संविधान द्वारा प्रदत्त 22 भाषाओं के लिए तकनीकी शब्दावली निर्माण करने का कार्य आयोग द्वारा किया जा रहा है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सूचना प्रौद्योगिकी के तहत मशीनी अनुवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है, उसके लिए कई सॉफ्टवेयर विकसित किये जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप अनुवाद एवं लिप्यंतरण अत्यंत सहज और सरल बन गया है। इस दिशा में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, सी-डैक, सी.ई.टी.टी.आई, आय.आय. टी, सूचना एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय आदि संस्थाओं ने भरसक प्रयास किये हैं। सी-डैक पुणे ने सरकारी कार्यालयों के लिए अंग्रेजी-हिंदी में पारस्परिक कार्यालयीन सामग्री का अनुवाद करने हेतु मशीन असिस्टेड ट्रांसलेशन 'मंत्रा' पैकेज विकसित किया है। आज की तारीख में वेबसाइट पर हिंदी इलेक्ट्रॉनिक शब्दकोश उपलब्ध है। इसी तरह अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद की सुविधा उपलब्ध है। अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद हेतु एम. सी. टी. ने समाचारपत्रों के लिए तथा सी-डैक पुणे ने प्रशासनिक सामग्री के लिए विशेष सॉफ्टवेयर विकसित किए हैं। सी-डैक द्वारा निर्मित लीप-ऑफिससॉफ्टवेयर में अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश, अनुवाद, समानार्थी शब्दकोश, हिंदी में ई-मेल आदि अंग्रेजी के समकक्ष सभी सुविधाओं को

उपलब्ध कराया गया है। भारतीय भाषाओं के लिए सी-डैक ने एक ऐसा सॉफ्टवेयर तैयार किया है जिसका नाम है- 'लीप ऑफिस'। इसमें वर्तनी की जांच, समानार्थी शब्दकोश, प्रशासनिक हिंदी शब्दकोश आदि बातों का समावेश है। आई. आई. टी कानपुर आर. आई. एस. आई. कोलकाता ने (OCR) तकनीकी विकसित किया है जो हिंदी पाठ का संकलन, पठन में सहायता करता है। राजभाषा विभाग, भारत सरकार तथा सी-डैक पुणे ने मिलकर आधुनिक मल्टी मीडिया तकनीकी पर आधारित 'लीला' हिंदी सॉफ्टवेयर तैयार किया है जिसमें आधुनिक मल्टी मीडिया तकनीकी और भाषा-शिक्षण के क्षेत्रों में विकसित अद्यतन तकनीकी का उपयोग किया गया है। सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय और सी.ई. टी.टी.आई, मोहाली ने मिलकर 'सारथी-2' सॉफ्टवेयर तैयार किया है जो एक साथ हिंदी तथा पंजाबी भाषा के लिए काम करता है।

इसी तरह मशीनी अनुवाद के लिए 'मात्रा' और 'अनुसारका' जैसे सॉफ्टवेयर तैयार किये गये हैं। 'वार्तालाप' नामक सॉफ्टवेयर के माध्यम से कोई भी व्यक्ति किसी भी भारतीय भाषाओं में तथा भारत के अलावा चीनी, जापानी, कोरियन आदि भाषाओं में 'वार्तालाप' कर सकता है। इसके अलावा 'आंग्ल-भारती', 'लीप्स', 'इंडिक्स' आदि सॉफ्टवेयर तैयार किये गये हैं जो भाषा के परस्पर आदान-प्रदान में सहायक सिद्ध हुए हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ने एक ऐसा शब्दकोश तैयार किया है जो 12 खंडों में है। यह कोश किसी एक विषय के लिए नहीं बल्कि 150 विषयों के लिए काम करता है। अनुवादक, भाषाविद् तथा शिक्षकों के लिए यह कोश अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। हिंदी के लिए आज कई वेबसाइट बनायी गयी हैं जो हिंदी की तकनीकी मांग को पूर्ण करती हैं। राजभाषा विभाग ने rajbhasha.nic.in वेबसाइट तैयार की है जो राजभाषा हिंदी के नियम, अधिनियम की जानकारी देती है। indianlanguages.com इस वेबसाइट पर हिंदी तथा सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य, समाचारपत्र, ई-मेल आदि की जानकारी उपलब्ध करायी गयी है। सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा निरंतर नये सॉफ्टवेयर, शब्दकोश, पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में अत्यंत सराहनीय काम किया जा रहा है। कुल मिलाकर तकनीकी हिंदी की यह विकासयात्रा न केवल भाषा तक सीमित रही है बल्कि अनगिनत विषयों की माध्यम भाषा के रूप में लोकल से ग्लोबल उड़ान भरने में सहायक है।

संदर्भ

<https://cstt.education.gov.in/en>

www.education.gov.in

<https://rajbhasha.gov.in/>

<https://www.ciil.org/>